मेघदूत की प्रमुख टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन

मेघदूत की प्रमुख टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन

लेखिका :

डॉ० (श्रीमती) कुमकुम जिन्दल

संस्कृत विभाग,
कालिन्दी महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली



नाग प्रकाशक

११ . यू. ए जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७

नाग प्रकाशक

(१) ११ ए.यू.ए., जवाहर नगर, पोस्ट ऑफिस बिल्डिंग
दिल्ली - ११०००७

(२) संस्कृत भवन, १२, १५ संस्कृत नगर, प्लाट न० ३,
सैक्टर १४, रोहिणी, नई दिल्ली - ११००८५

(३) जलालपुर माफी, चुनार, जिला मिरजापुर, उत्तर प्रदेश

ISBN : 81-7081-274-7

प्रथम संस्करण १९९३

मूल्य : [redacted]
NAG PRAKASHAN
Price Rs. 80.00

भारत में मुद्रित

श्री नाग शरण सिंह द्वारा नाग प्रकाशक, ११ ए, यू. ए, जवाहर नगर, दिल्ली - ११०००७ के लिये प्रकाशित तथा जी. प्रीन्ट प्रासेस, ३०८/२, शहजादाबाग, दयाबस्ती, दिल्ली - ११००३५ द्वारा मुद्रित ।

Laser Typesetting :
Compu-Media-The D.T.P.. People,
43, Bunglow Road, Kamla Nagar, Delhi-110007
Ph : 2911869

समर्पण

मान्यवर

प्रेम राज चौधरी

मेरे जनक, जिनके मौन मूक त्याग और निःस्पृह सेवाभाव ने हमारे समस्त परिवार को अविराम गति एवं अपरिमित साधना प्रदान की, के पावन चरणों में श्रद्धेय समर्पित यह ग्रन्थ ।

कुतो वा नूतनं वस्तु वयमुत्प्रेक्षितुं क्षमाः ।
वचो विन्यासवैचित्र्यमात्रमेव विचार्यताम् ।।

-- जयन्त भट्ट (न्यायमञ्जरी)

प्राक्कथन

संस्कृत साहित्य को अपनी अनुपम कृतिरत्नो से देदीप्यमान कर देने वाले निखिलकविचक्रचूड़ामणि कालिदास की अपूर्व कलाकृति मेघदूत चिर पुरातन होते हुए भी चिर नवीन है। इसकी महिमा 'मेघे माघे गतं वयः' उक्ति से सुतरां सिद्ध है। इस लघु गीतिकाव्य में निहित अगाध सूक्ष्म भावों की मनीषियों ने अनेकशः विवेचना कर अपनी लेखनी को कृत-कृत्य किया है, फिर भी मेघदूत के कलेवर में आज भी अनेक ऐसे पटल अन्तर्निहित हैं जिनका अनुसंधान अपेक्षित है।इस गीतिकाव्य पर साठ से भी अधिक संस्कृत टीकाओं का उल्लेख मिलता है। उनमें से कुछेक ही प्रकाशित हुई हैं। इस ग्रन्थ में प्रमुख रूप से स्थिरदेक, वल्लभदेक, दक्षिणावर्तनाथ, चारित्रवर्द्धन, सारोद्धारिणी, सुमतिविजय. भरतमल्लिक, कृष्णपति एवं चरणतीर्थ महाराज कृत टीकाओं के वैशिष्ट्य का ऊहापोह किया गया है। इनके अतिरिक्त महिमासिंह गणि, हरगोविन्द वाचस्पति, कल्याणमल्ल, रामनाथतर्कालंकार परमेश्वर आदि टीकाकारों के जो थोड़े वहुत उद्धरण यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं उन्हे भी उद्धृत किया गया है।

इस ग्रन्थ को ६ अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय के दो खण्ड हैं, प्रथम खण्ड में मेघदूत का संक्षिप्त परिचय देते हुए उसके स्रोत, विभाजन, काव्यत्व, रस, छन्द एवं अलंकार का निरूपण किया गया है। द्वितीय खण्ड में एक तालिका रूप में सभी टीकाओं व टीकाकारों का नामरूपेण उल्लेख करते हुए उन स्थलों का निर्देश कर दिया गया है जहाँ-जहां उन टीकाकारों का थोड़ा-बहुत विवरण उयलव्ध होता है। इसी खण्ड में टीकाओं के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता को स्पष्ट कर दिया गया है। द्वितीय अध्याय में प्रमुख टीकाकारों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके काल, स्थान, कृतित्व, टीकावैशिष्ट्य आदि का विवेचन किया गया है। तृतीय अध्याय में अर्थ-भेद की दृष्टि के टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि कवि प्रयुक्त प्रत्येक शब्द अपने में किस अथाह ज्ञान को समेटे हुए है और टीकाकारों ने अपनी सूक्ष्मेक्षिका से कितने अनन्त नूतन अर्थों की परिकल्पना की है। लिंग, वचन, विभक्ति, समास एवं अर्थ आदि को ध्यान में रखते हुए टीकाकार एक ही स्थल पर भिन्न-भिन्न पाठ दे जाते हैं अतः चतुर्थ अध्याय में पाठ-भेद का निरूपण किया गया है। पूर्वमेघ में यक्ष मुख से अलकापुरी के मार्ग का बोध कराते हुए कवि ने अनेक भौगोलिक स्थलों का वर्णन किया है। टीकाकारों एवं आधुनिक अन्वेषणकर्त्ताओं ने उनका किरा रूप में निर्धारण किया है, इसका विवरण पंचम अध्याय में है। मेघदूत के मूलश्लोक संख्यानुक्रम के सन्दर्भ में अत्यन्त वैमत्य है। आधुनिक विद्वानों ने १११ श्लोक मूल रूप में स्वीकार किये हैं जबकि टीकाओं में १३० तक श्लोक उपलब्ध

होते हैं। अतः षष्ठ अध्याय में १९ प्रक्षिप्त श्लोकों को देते हुए अर्थ व पाठ की दृष्टि से टीकाओं का परिशीलन किया गया है।

सर्व प्रथम मैं मान्यवर पिता श्री व माताश्री के चरणों में नमन करती हूं जिन्होने निरन्तर तमस से प्रकाश की ओर प्रेरित किया। प्राच्य प्रतीच्योमय विद्यानिष्णात आदरणीय डॉ. सत्यव्रत शास्त्री एवं कालिदास काव्यों के मर्मज्ञ एवं मेघदूत निष्णात डॉ. नित्यानन्द शर्मा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मेरे अल्प भाषा ज्ञान में उपयुक्त शव्दों का अभाव है। जिन्होने मेरा मार्ग निर्देश करते हुए अनवरत साधना की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। स्व. परमपूज्या मां तारावती के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिन्होने पारिवारिक उत्तरदायित्व से मुझे स्वतन्त्र रख कर इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग दिया। मैं श्री नागशरण सिंह, नाग प्रकाशक जवाहरनगर, दिल्ली के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होने अल्प समय में उत्साह पूर्वक प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन को अङ्गीकार किया।

डॉ० (श्रीमती) कुमकुम जिन्दल

संकेत-सूची

अभि.ज्ञा.	-	अभिज्ञानशाकुन्तलम्
कु.सं.	-	कुमारसम्भवम्
कृष्ण.	-	कृष्णपति
चारि.	-	चारित्रवर्द्धिनी
दक्षि.	-	दक्षिणावर्तनाथ
पु.	-	पुराण
पूर्ण.	-	पूर्णसरस्वती
ब्रा.	-	ब्राह्मण
भरत.	-	भरतमल्लिक
मल्लि.	-	मल्लिनाथ
महा.भा.	-	महाभारत
मार्क.पु.	-	मार्कण्डेय पुराण
मेघ.	-	मेघदूतम्
रघु.	-	रघुवंशम्
रामा.	-	रामायण
विक्रमो.	-	विक्रमोर्वशीयम्
शिशु.	-	शिशुपालवधम्
सं.सा.परि.	-	संस्कृत साहित्य परिषद्
सना.	-	सनातन गोस्वामी
सारो.	-	सारोद्धारिणी
सुमति.	-	सुमतिविजय
स्थिर.	-	स्थिरदेव
ABORI	-	Annals of Bhandarkar Research Institute
Cal. Ori. Journal	-	Calcutta Oriental Journal
IA	-	Indian Antiquary
IHQ	-	Indian Historical Quarterly
JIH	-	Journal of Indian History
NUJ	-	Nagpur University Journal
OH	-	Our Heritage
Proc. AIOC	-	Proceedings and Transactions, All India Oriental Conference
Proc. ASB	-	Proceedings, Asiatic Society of Bengal
SPAIOC	-	Summary of Papers, All India Oriental Conference

श्लोकसंख्यानुक्रम

६७- यत्र स्त्रीणां
६८- नेत्रा नीताः
६९- नीवीबन्धो.
७०- गत्युत्कम्पा.
७१- मत्वादेवं
७२- तत्रागारं
७३- वापी चास्मिन्
७४- यस्यास्तीरे
७५- रक्ताशोक.
७६- तन्मध्ये च
७७- एभिः साधो
७८- गत्वा सद्यः
७९- तन्वी श्यामा
८०- तां जानीयाः
८१- नूनं तस्याः
८२- आलोके ते
८३- उत्सङ्गे वा
८४- शेपान्मासान्
८५- आद्ये बद्धा
८६- साव्यापारमहनि
८७- आधिक्षामां
८८- निःश्वासेना.
८९- पादानिन्दो
९०- जाने सख्या.
९१- सा संन्यस्ता.
९२- रुद्धापाङ्ग.
९३- वामो वास्याः
९४- तस्मिन् काले
९५- तामुत्थाप्य
९६- भर्तुर्मित्रं
९७- इत्याख्याते
९८- तामायुष्मान्
९९- अङ्गेनाङ्गं
१००- शब्दाख्येयं
१०१- श्यामास्वङ्गं
१०२- त्वामालिख्य
१०३- मामाकाश.
१०४- भित्वा सद्यः
१०५- संक्षिप्येरन्
१०६- नन्वात्मानं
१०७- शापान्तो मे
१०८- भूयश्चाह
१०९- एतस्मान्मा
११०- कच्चित्सौम्य
१११- एतत्कृत्वा

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

मेघदूत एक संक्षिप्त परिचय

महाकवि कालिदास की अमर कृति मेघदूत न केवल भारतीय साहित्य में अपितु विश्व-साहित्य में अपना अमूल्य स्थान रखती है। यों तो कवि की सभी कृतियां भाव प्रवणता एवं चिन्तन की मसृणता से ओत-प्रोत हैं तथापि कवि की लोकप्रियता का सर्वाधिक ज्वलन्त व सुदृढ़ स्तम्भ मेघदूत ही है। सभी विदेशी व भारतीय भाषाओं में मेघदूत का अनुवाद होना कवि की गरिमा का प्रत्यक्ष निदर्शन है। इसमें कवि की काव्यमयी प्रतिभा एवं, मौलिकता, कमनीय कल्पना, परिष्कृत व विपुल शब्द सम्पत्ति प्रवाहमयी एवं माधुर्य मंडिता भाषा शैली, कौशलपूर्ण अलंकार योजना, विदग्ध छन्द विधान, प्रकृति चित्रण एवं विरही व्यथा का पूर्ण पर्यवेक्षण परिलक्षित होता है। सन्देश काव्य की अभिनव व मौलिक सर्जना कर एक नवीन काव्य विधा व परम्परा का श्रेय मेघदूत को ही प्राप्त है। श्री सीताराम सहगल ने इसे ताजमहल से उत्कृष्ट रचना कहा है।[१] मेघदूत पर "क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः"[२] पूर्ण सार्थक है।

कथा

मेघदूत में कवि ने कुबेर के शापवश प्रिया से वियुक्त हुए यक्ष को कर्तव्य में प्रमाद के कारण एक वर्ष के लिए अलकापुरी से निर्वासित कर देते हैं। यक्ष रामगिरि पर आठ मास व्यतीत कर आषाढ़ में मेघ-दर्शन करता है और तब अपनी विरह-वेदना के तीव्र ज्वर से पीड़ित हो प्रिया के पास सन्देश भेजने के लिए मेघ को दूत बनाने का विचार करता है। इन्द्र के प्रधान पुरुष मेघ का यक्ष कुटज पुष्पों से स्वागत कर उससे अलका स्थित प्रिया को सन्देश देने की प्रार्थना करता है। तदनन्तर कवि ने यक्ष मुख से मेघ को मार्ग बताने के माध्यम द्वारा अपने भौगोलिक ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है। मार्ग में मन्द-मन्द पवन का समीप बहना, चातकों का वाम-भाग में स्थित होकर मधुर ध्वनि करना व बलाकाओं का आकाश में पंक्तिबद्ध हो उड़ना मेघ के लिए शुभ शकुन है। रामगिरि से अलका के मध्य में पड़ने वाले माल, आम्रकूट, नर्मदा, दशार्ण, विदिशा, वेत्रवती, उज्जयिनी, महाकाल, गम्भीरा, देवगिरि, चर्मण्वती, दशपुर, कुरुक्षेत्र, सरस्वती, कनखल, क्रौंचरन्ध्र व कैलास पर्वत के प्राकृतिक सौन्दर्य का कवि ने इतना सजीव चित्र

१. राष्ट्रकवि कालिदास - पृ.७६
२. शिशु.- ४/१७

अंकित किया है कि कई बार पाठक उन दृश्यो में रमण करते हुए यह भूल जाता है कि वह मेघदूत का अध्ययन कर रहा है या प्रत्यक्ष रूपेण उन स्थलों की सुषमा का अवलोकन कर रहा है। कवि की प्रकृति कोई जड़ पदार्थ न होकर वही सौन्दर्य व गति लिए हुए है जो अनेक विचारग्रस्त मानवों में परिलक्षित होती है।

उतरार्द्ध में अतुल वैभव मण्डिता अलका के सौन्दर्य एवं विरह व्याकुल प्रिया के प्रति सन्देश में यक्ष की करुण दशा का चित्रण किया गया है। आकाश से प्रतिस्पर्धा करने वाले ऊंचे एवं मणिजटित प्रासाद, अतुल वैभव सम्पन्न नागरिक एवं षड्ऋतुओं के सौन्दर्य का एक दृष्टि में दिग्दर्शन अलका की अपूर्व एवं अनन्त सुषमा के परिचायक हैं। वहीं कुबेर गृह के उत्तर में इन्द्र-धनुषीय आभा से देदीप्यमान यक्ष गृह है जो बावड़ी वृक्षों व शंख पद्मादि के चिह्नो से युक्त होते हुए भी यक्ष वियोग के कारण श्री विहीन सी है। वहीं ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि सी अपूर्व सुन्दरी, विरह विधुरा, कृशकाया यक्ष पत्नी को यह सन्देश देना कि सर्वप्रथम यक्ष तुम्हारी कुशल पूछता हुआ विरह वेदना से प्रताड़ित प्रत्येक वस्तु में तुम्हारा अवलोकन करना चाहता है पर किसी भी वस्तु में उसे तुम्हारा साम्य दृष्टिगत नहीं होता। शापावधि के शेष चार मासों को तुम जैसे-तैसे व्यतीत कर लो, तदनन्तर शरद् की चांदनी रात्रियों में विरह के कारण अत्यन्त प्रवृद्ध हम अपनी कामनाओं को पूर्ण करेंगे। अन्त में मेघ यक्ष के प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुए कहता है कि तुम्हारा कभी भी अपनी प्रिया विद्युत् से वियोग न हो और तुम इच्छित स्थलों पर विहार करो।

इस संक्षिप्त कथावस्तु को कवि ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा एवं अद्भुत कल्पना शक्ति के बल पर बहुरंगी वर्णों से सजाकर जिस आकर्षक रूप में प्रस्तुत किया है, वैसा शब्द-चित्र संस्कृत साहित्य में तो क्या विश्व के काव्यजगत् में दुष्प्राप्य है। पूर्वमेघ में जहां वाह्य प्रकृति का प्राधान्य है वहीं उत्तरमेघ में अन्तः प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म पटलों का अत्यन्त मर्मस्पर्शी रूप अभिव्यक्त हुआ है।

विभाजन

मेघदूत के पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध विभाजन के सन्दर्भ में टीकाकार एकमत नहीं हैं। स्थिर. वल्लभ, शाश्वत सुमति. रविकर, दिवाकर, कृष्ण, एवं चरणतीर्थ आदि ने कोई विभाजन नहीं दिया है। पर दक्षि० ने इसे मेघसन्देश नाम से विभूषित कर पूर्वसन्देश एवं उत्तर सन्देश रूप में विभक्त किया है। पूर्ण० ने मेघसन्देश नाम देकर प्रथम आश्वास व द्वितीय आश्वास रूप में कहा है। मल्लि., एवं भरत. ने इसे पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ रूप में दिया है।

आर.सी. हजरा ने इस प्रकार के विभाजन को अमान्य बताते हुए ये तर्क दिये हैं कि पूर्वमेघ का अन्तिम श्लोक उत्तरमेघ के प्रथम श्लोक से सीधा सम्बन्धित है। और इतने सारे टीकाकारों द्वारा कोई विभाजन न करना भी इस बात का द्योतक है कि कवि ने मेघदूत का कोई विभाजन न किया होगा। इसके अतिरिक्त दक्षि०,

पूर्ण० व मल्लि० आदि द्वारा दिये गये विभाजन के नामों की भिन्नता भी मेघदूत की एकबद्धता को ही सिद्ध करती है ।[१] पर सम्भवतः वे इस तथ्य को ध्यान में नहीं रखते कि मेघदूत में स्वयं कवि ने – "मार्ग तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुकूलं सन्देशं में तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्[२]" ..कह विभाजन को स्पष्ट कर दिया है । अतः चाहे उस विभाजन को किसी भी नाम से कहा जाय निर्विवाद रूपेण वह दो भागों में विभक्त है ।

कथा का मूलस्त्रोत

मेघदूत की कथा के मूलस्रोत के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है–

(क) कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद (५.६१) बृहद्देवता (५–५०–८०) में प्राप्त रात्रि रूप अचेतन पदार्थ को दूत बनाकर भेजने की रमणीय कल्पना को ही मेघदूत का मूल प्रेरणा स्रोत कहा है । उस श्यावाश्व उपाख्यान में रात्रि अचेतन है ओर उधर मेघ । दोनों में ही प्रगाढ़ प्रेम की उत्कण्ठाएं अभिव्यक्त हुई हैं, दोनों में अभिज्ञान रूप में रहस्य प्रेषण किया गया है । यक्ष ने सन्देश पत्नी के पास भेजा है तो श्यावाश्व ने प्रेमिका के पास । यह समताएं मेघदूत के मूल आधार की परिचायक हैं ।[३]

(ख) दक्षि.[४] व मल्लि.[५] ने रामायण को मूल आधार माना है । टीकाकारों के मतों के आधार पर वी. परांजपे ने मेघदूत में वर्णित राम व सीता सम्वन्धी उल्लेखों का रामायण से अति साम्य प्रदर्शित करते हुए रामायण को ही उसका मूल कहा है ।[६] हरीन्द्रभूषण जैन इसी मत के समर्थकों में से हैं।[७] इस मत को और अधिक पुष्टि प्रदान करते हुए वैंकटाचलम् ने रामायण (अर. का. सर्ग ४,१६.१९) में प्राप्त उस कथा की ओर भी संकेत किया है जहां विराध राम को अपने पूर्व जीवन की कथा सुनाते हुए कहता है कि वह पूर्व समय में तुम्बरु नासक गन्धर्व था । अपनी पत्नी रम्भा में अत्यधिक आसक्ति के कारण उसने अपने कर्त्तव्य में प्रमाद किया जिसके फलस्वरूप कुबेर ने उसे राक्षस होने का शाप दिया । वे इस कथा को ही मेघदूत का प्रमुख आधार मानते हैं ।[८]

---

१. IHQ -25-1949,p-275-76
२. मेघ. १३
३. परिषद् पत्रिका –वर्ष ४, अंक ३ (अक्टूबर, १९६४), पृ. ८९–९२
४. इह खलु कविः सीतां प्रति हनूमता सन्देशं हृदयेन समुद्वहन् तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन सन्देशं करोति । ..दक्षि. टीका–पृ.१
५. सीतां प्रति रामस्य हनूमत्संदेशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कृतवानित्याहुः –मल्लि. टीका –पृ.२
६. Fresh light on Kalidasa,s Meghduta,p. 187-193.
७. The Vikarm (Ka.vi), vol.VII, 1964,p. 59-67.
८. SPAICO-1961,p.49-50.

(ग) गौतम वी. पटेल ने महाभारत को मूल आधार मानते हुए पूर्ण० की टीका के आधार पर मेघदूत में वर्णित उन कथाओं व स्थलों को स्पष्ट किया है जिनका विशद् विवरण महाभारत में प्राप्त होता है ।[१]

(घ) कुछ विद्वानों ने मेघदूत की कथा को कवि के जीवन की ही एक घटना कहा है। राजा विक्रम को कवि ने कुबेर रुप में वर्णित किया है यक्ष स्वयं कालिदास हैं और यक्ष पत्नी कालिदास की नवविवाहिता पत्नी । राजा विक्रम ने किसी कार्य में असावधानीवश कालिदास को राज्य से निर्वासित कर दिया, तब प्रवासकाल में कालिदास ने मेघनाद नामक दूत द्वारा अपनी पत्नी को यह सन्देश काव्य भिजवाया ।[२]

(ड) कतिपय विद्वानों के अनुसार घटकर्पर कवि का सन्देश काव्य सम्भवतः मेघदूत का प्रेरणा स्रोत रहा हो । दोनों की कथावस्तु पर्याप्त समानता लिए हुए है । प्रमुख अन्तर यह है कि घटकर्पर के काव्य में पत्नी पति के पास मेघ को दूत बनाकर भेंजती है ।[३]

(च) इसके अतिरिक्त बृहत्कथा में वर्णित यक्षों के शापों की कथाओं एवं श्रीमद्भागवत को भी मेघदूत का आधार कहा गया है ।[४]

यद्यपि उपर्युक्त कथानकों की यत्र-तत्र झलक मेघदूत में दृष्टिगत होती है तथापि किसी एक ग्रन्थ अथवा कथा को मेघदूत का मूल आधार नहीं कहा जा सकता है । पुरातन ग्रंथों व कथावृत्तों से प्रेरणा लेने पर भी मेघदूत कवि की अन्तर्व्यापिनी सूक्ष्म दृष्टि एवं नवीन कल्पना शक्ति का अपूर्व परिचायक है ।

काव्यत्व

मेघदूत के काव्यत्व के विषय में टीकाकार एकमत नहीं हैं स्थिर.[५] लक्ष्मीनिवास, मल्लि.[६] मोंटजित, क्षेमहंसगणि व कल्पलता के टीकाकार ने इसे महाकाव्य कहा है । कल्याणमल्ल ने भी "इह यद्यपि गिरि-नगर -सागर-सरोवर -कमलाकर -वसन्तोत्सव-मलयानिल जलक्रीड़ा-पुष्पावचयोदयास्तगमन-वर्णनानां सर्गवन्धादीनांचमहाकाव्यलक्षणानामभावस्तथापि महाकविकालिदास-विरचितत्वात् इदं महाकाव्यमुच्यते[७] कहते हुए इसे महाकाव्यों की कोटि में ही रखा है ।

The Vikram (ka.vi) Vol. X, 1967,p 31-38.
२. मघ -सम्पा. चरणतीर्थ महाराज, पृ.५६
३. सस्कृत के सन्देश काव्य-पृ५७-५८
४. ही-पृ९४
५. स्थिर टीका-पृ.१-२
६. मल्लि टीका -पृ. २
७ ed. J.B. Chaudhry (intro), p. 30 .

पर साहित्याचार्यों ने सर्गबद्धता महाकाव्य का प्रमुख लक्षण कहा है ।[१] जिसका मेघदूत में अभाव है। अतः यह महाकाव्य नहीं कहा जा सकता है ।

पुरातन टीकाकार स्थिर. ने इसे क्रीड़ाकाव्य[२] एवं बल्लभ ने केलिकाव्य[३] नाम दिया है । यद्यपि मेघदूत में कवि ने कई स्थलों पर रमणियों की रतिक्रीड़ा का चित्रण किया है पर प्रमुख विषय प्रवास में यक्ष-यक्षिणी की विरह वेदना व्यक्त करना ही है । अतः ऐसे काव्य को केलिकाव्य कदापि नहीं कहा जा सकता है । और साहित्यशास्त्र में भी काव्य के लिए इस प्रकार के नामों का उल्लेख नहीं मिलता ।

भरत.,[४] सना०[५] व हरगोविन्द[६] ने इसे खण्डकाव्य कहा है । खण्डकाव्य का लक्षण साहित्याचार्यों ने "खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च"[७] किया है । महाकाव्य की अपेक्षा यह आकार में काफी लघु एवं विषय की दृष्टि से भी व्यापक नहीं होता । मेघदूत एक ऐसा ही काव्य है । आकार-प्रकार, विषय-वस्तु व शिल्प-विधान की दृष्टि से काव्य-शास्त्रियों ने इसे खण्डकाव्य की कोटि में रखा है । इन काव्यो में कल्पना की प्रधानता, लालित्य एवं माधुर्य की विशेष योजना होती है । रागात्मक अनुभूति एवं कल्पना की तूलिकाओं से रंजित मोहक चित्र खण्डकाव्य का प्रतिपाद्य है । इस दृष्टि से मेघदूत समस्त खण्डकाव्यो में अग्रगण्य है । रसानुभूति का इससे बढ़कर पोषक अन्य कोई खण्डकाव्य संस्कृत साहित्य में तो क्या विश्व-साहित्य में दुर्लभ है । शास्त्रीय दृष्टि से भी सन्देश काव्यो को खण्डकाव्य कहा गया है । मेघदूत तो सन्देश काव्यो की परम्परा का जन्मदाता है, अतः निर्विवाद यह खण्डकाव्य ही है ।

खण्डकाव्य को ही पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण गीतिकाव्य रुप में भी अभिहित किया गया है । मैक्डानल्ड आदि विद्वानों ने संस्कृत काव्यों की आलोचना में मेघदूत आदि खण्डकाव्यो को गीतकाव्य की कोटि में रखा । इसका कारण इसमें निहित भावप्रवणता, रससान्द्रता, छन्दों की लयबद्धता तथा पद्यों की गीतिमयता है । सभी खण्डकाव्य इन दृष्टियों से परिपूर्ण नहीं हैं किन्तु मेघदूत आदि कतिपय प्रमुख खण्डकाव्यो में विद्यमान उपर्युक्त गुणों के अतिरेक से प्रायः सभी खण्डकाव्यों को गीतिकाव्यों की कोटि में रख लिया गया है । वर्तमान समय में गीतिकाव्य शव्द खण्डकाव्य का पर्यायवाची ही हो गया है । मेघदूत खण्डकाव्यों अथवा गीतिकाव्यों का सुमेरू है ।

---

१. काव्यादर्श-१-१४-१८, साहित्यदर्पण-६- ३१५-२५
२. तदसौ श्रृंगाररसप्रधानं क्रीड़ाकाव्यमेतदुपनिबद्धवान् । -स्थिर . टीका. पृ.१
३. केलिकाव्यमित्येतत्सर्व स्वस्थम् ।--वल्लभ.टीका -पृ.१
४. भरत टीका. पृ.३
५. सनातन टीका० - पृ २
६. ed.J.B. Chaudhry (intro),p.25.
७. साहित्य दर्पण -३-१८६

रस

नव-रसों के होते हुए भी श्रृंगारैक रसःद्वारा श्रृंगार रस की श्रेष्ठता सर्वविदित है। श्रृंगार में ओत-प्रोत मेघदूत इस रस की उत्कृष्टता का ज्वलन्त निदर्शन है श्रृंगार रस के दो भेद संयोग एवं विप्रलम्भ हैं। विप्रलम्भ से तात्पर्य-

भावो यदा रतिनाम प्रकर्षमधिगच्छति।
नाधिगच्छति चाभीष्टं विप्रलम्भस्तदोच्यते ॥[१]

संयोग व विप्रलम्भ में विप्रलम्भ को ही प्रधानता दी गई है-

न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागोऽनुषज्यते ॥[२]

मेघदूत भी विप्रलम्भ श्रृंगार रस प्रधान काव्य है। इसमें विरह-व्याकुल यक्ष-यक्षिणी की कामदशाओं का जो सजीव मनोवेधक चित्र चित्रित किया गया है वह अन्यत्र दुष्प्राप्य है। इसमें प्रवास का पोषण इतना मर्मस्पर्शी है कि सहृदय संयोग की अपेक्षा वियोग को ही श्रेष्ठ कहता है--

संगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न संगमस्तस्याः।
अविरहकाले सैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥[३]

प्रवासकाल में विरह वेदना की ऊष्मता के कारण नायक-नायिका में १० काम दशाओं का चित्रण किया गया है--

अङ्गेष्वसौष्ठवं तापः पाण्डुता कृशता रुचिः
अरतिः स्यादनालम्वस्तन्मयोन्मादमूर्च्छनाः ॥[४]

कवि ने उपरोक्त अवस्थाओं से यक्ष यक्षिणी को आप्लावित करते हुए विप्रलम्भ श्रृंगार का जो स्पन्दनमय व हृदयद्रावक रुप प्रस्तुत किया है, वह चेतन को तो क्या प्रस्तर को भी द्रवित कर देता है। उत्तरमेघ का एक-एक शब्द अपने में अपरिसीम वेदना, कंपन व करुणा को संजोये हुए है। स्वयं कवि ने विप्रलम्भ श्रृंगार की महत्ता को इन शब्दो में कहा है--

स्नेहानाहुः किमपि विरहह्रासिनस्ते ह्यभोगा-
दिष्टे वस्तून्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति ॥[५]

अलंकार

कवि ने मेघदूत कविता कामिनी को अनेक अलंकारों से अलंकृत किया है।

---

१. सरस्वती कण्ठाभरण-५-४५
२. वही-५-५२
३. कालिदास ग्रन्थावली (समीक्षा निबन्ध), पृ.७५
४. साहित्यदर्पण -तृतीय परिच्छेद
५. मेघ. १०९

शव्दालंकारों का कवि ने विरल प्रयोग ही किया है, क्योकि शव्दालंकारों का विपुल प्रयोग अधिकांशतः सप्रयास एवं शव्द चित्रों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ही किया जाता है अतः रस प्रधान सहज सुन्दर काव्यो में इनकी अल्पता स्वाभाविक है। पुनरुक्तवदाभास, अनुप्रास अथवा यमक आदि जो शव्दालंकार मेघदूत में दृष्टिगत होते भी हैं, उनके लिए भी कवि की लेखनी को कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ा प्रत्युत ये अलंकार आयासहीन एवं नैसर्गिक रुप में उनकी वाणी के सौन्दर्य को वृद्धि प्रदान करते हैं।

कवि ने मेघदूत में पदे-पदे प्रायः सभी अर्थालंकारों का मंजुल सन्निवेश किया है। उनमें भी उपमा, अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुत प्रशंसा एवं स्वाभावोक्ति आदि के प्रति कवि का विशेष आग्रह परिलक्षित होता है। यत्र-तत्र काव्यलिंग, समासोक्ति, दृष्टान्त, अनुमान, उदात्त, अपह्नुति, रूपक, स्मरण, निदर्शना, विषम, विशेषोक्ति, परिकर, सन्देह, अतिशयोक्ति आदि अलंकार भी अपनी छटा बिखेरे हुए हैं। कवि का यह अलंकार प्रयोग इतना सहज, नैसर्गिक एवं चातुर्यपूर्ण है कि कहीं भी ये अलंकार भाषा की गति को आक्रान्त नहीं करते, अपितु उनके काव्यात्मभूत रस की पुष्टि एवं वृद्धि के कारण बनते हैं। मेघदूत में इन अलंकारों के प्रयोग की अनन्त सुषमा काव्यं ग्राह्यमलंकारात् उक्ति को सार्थक करती है।

छन्द

काव्य में रस सिद्धि के लिए सुन्दर शव्दार्थ योजना ही पर्याप्त नहीं है अपितु उपयुक्त छन्द योजना भी अत्यन्त अपेक्षित है। कवि ने वस्तु भाव एवं रस के अनुकूल छंदों का प्रयोग कर अपनी छन्द योजना शक्ति का भी सुचारु परिचय दिया है। कवि ने मेघदूत में सर्वत्र मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया है। इसका लक्षण है-- " मन्दक्रान्ता जलधिषड्मैम्रभ नतौ ताद् गुँरुचेत् है।[१] क्षेमेन्द्र ने इस छन्द प्रयोग के विषय में लिखा है -

प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते।[२]

मेंघदूत में प्रावृटकाल, प्रवास व विरह रूप विपत्ति का वर्णन होने से कवि ने इस काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द ग्रहण कर सन्देश काव्यो के लिए विषय के साथ-साथ छन्द का भी निर्देश कर दिया है। यद्यपि कुछ कवियों ने दूतकाव्यो में इससे विपरीत छन्द भी अपनाये हैं यथा घटकर्पर ने यमक काव्य में उपजाति, पुष्पिताग्रा, वसन्ततिलका आदि छन्दो का प्रयोग किया है। रूपगोस्वामी ने हंसदूत में सर्वत्र शिखरिणी छन्द लिया है। पर अधिकांश सन्देश काव्यो पवनदूत, शीलदूत, नेमिदूत, मयूर सन्देश, हंस-सन्देश, भृंग-सन्देश, कोकिल -सन्देश, हंसदूत, उद्धवदूत, भ्रमरदूत, शुकसन्देश- में एकमात्र मन्दाक्रान्ता छन्द को अपनाया गया

---

१. वृत्तरत्नाकर - ३/१८२

२. सुवृत्त तिलक - ३/२१

है।

कवि ने विशेष उद्देश्य से इस छन्द का प्रयोग किया है यह छन्द न तो अधिक वड़ा है और न अत्यन्त लघु। प्रेम व करुणापूर्ण सन्देश को कहने वाले नायक को कभी उच्च व कभी मन्द स्वर का अवलन्वन लेना पड़ता है। इसी स्वर के माध्यम से वह अपने हृदय के उद्गारों को व्यक्त करने समर्थ हो सकता है। इसीलिए कवि ने नामानुगुण इस छन्द को अपनाया है। मेघदूत में इसके सौन्दर्य को दृष्टिगत कर कहा गया है--

सुवशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता विराजते।
सदश्वमकस्यैव काम्बोजतुरगाङ्गना॥[१]

टीका परिचय

"टीक्यते गम्यते ग्रन्थार्थोऽनया"[२] ग्रन्थार्थ के अवगमन के उपाय अथवा साधन को टीका कहा गया है। व्याख्या शव्द भी टीका का ही पयार्यवाची है। आलोचनात्मक समीक्षा की विभिन्न पद्धतियों में व्याख्यात्मक पद्धति का महत्वपूर्ण स्थान कहा गया है जब कवि वर्ग अपनी प्रतिभा, विवेकशीलता, अथवा ज्ञान के अथाह सागर द्वारा किसी ग्रन्थ,काव्य या शास्त्र आदि की रचना करते हैं तो विद्धत्समाज अपनी ज्ञान-रूपी चक्षु, द्वारा उसका सूक्ष्म परीक्षण कर अपने नवीन विचारों व कल्पनाओं के साथ कृति का भी स्पष्टार्थाअभिव्यक्ति के लिए टीका की रचना करते हैं। किसी भी काव्य ग्रन्थ एवं शास्त्र के पूर्ण अर्थावबोध के लिए टीकाएं नितान्त उपादेय एवं आवश्यक हैं। काव्यरूपी सागर के अगाध ज्ञान का मन्थन टीकाओं के विना दुरूह ही नहीं अपितु असम्भव ही प्रतीत होता है। अनमोल तथ्य रूपी रत्नो को टीकाकार व्याख्या रूपी मणिमाला में पिरो देते हैं। अतः टीकाएं कृतियों के लिये प्रकाश स्तम्भ ही हैं जिनके बिना काव्य के आलोक का आनन्द नहीं लिया जा सकता।

टीकाओं के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता

काव्य के एक होने पर भी उस पर अनन्त टीकाएं लिखी जाती हैं। यहां यह प्रश्न स्वभावतः अन्तःस्थल में जागृत है कि किसी काव्य पर जब एक टीका लिख दी जाती है और उसके माध्यम से ही काव्य का अर्थ बुद्धिगोचर हो जाता है तब एक के वाद अन्य टीकाओं की रचना क्यो होती है? इसका यही उत्तर है प्रत्येक टीकाकार काव्य को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखता है। किसी को उस काव्य में साहित्य की झलक मिलती है तो अन्य को दर्शन की, कोई व्याकरण का प्रतिबिम्ब देखता है तो दूसरा अलंकारों की छटा। कोई शव्द को महत्व देता है तो अन्य

---

१. सुवृत्त तिलक-३/३४
२. संस्कृत हिन्दी कोष- वामन शिवराम आप्टे, पृ ४१३

अर्थपरिपाक को, अतः जब टीकाकार अपने से पूर्ववर्ती टीका में उस विशिष्ट दृष्टिकोण का अवलोकन नहीं कर पाता तो उसी काव्य पर स्वयं टीका लिख अपने नवीन दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है। यह भी कहा जा सकता है कि कवि अपनी अनन्त प्रतिभा के कारण काव्य में इतने विशद् सुन्दर सूक्ष्म भावों का समावेश कर देता है कि एक टीकाकार उन सभी भावों एवं कल्पनाअपं को अपनी टीका में चित्रित नहीं कर पाता अतः एक के बाद एक टीकाकार काव्य के उन विभिन्न पहलुओं का का निरीक्षण करते हुए उस टीका परम्परा में एक-एक नवीन टीका की कड़ी जोड़ते रहते हैं। अतः काव्य रूपी अगाध जल की गहराई तक पहुंचने के लिए टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन परमावश्यक हो जाता है। जिस प्रकार भ्रमर विभिन्न पुष्पो से उनका रस ग्रहण कर लेता है, उसी प्रकार पाठक विभिन्न टीकाओं के तुलनात्मक अध्ययन से कवि के काव्यरूपी अन्तःस्थल में प्रवेश कर जाता है। "हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा"[१] काव्य की उत्कृष्टता की परख टीकाओं द्वारा होती है। अतः काव्यज्ञान रूपी गुफा में प्रवेश करते हुए टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त उपादेय है।

टीकाओं व टीकाकारों की नामावली एवं विवरण

महान् कवि के काव्य पर कोई भी टीकाकार टीका लिखने में गौरव का अनुभव करता है। इससे न केवल टीकाकार ही प्रसिद्धि को प्राप्त करता है अपितु वे अनन्त टीकाएं उस काव्य कर्त्ता की भी सूक्ष्मेक्षिका का दिग्दर्शन करा उसे समस्त संसार में अद्वितीय स्थान प्राप्त करवा देती है। दिग्-दिगन्त विश्रुत कालिदास की कृतियों में जितनी टीकाएं मेघदूत पर उपलब्ध होती हैं, उतनी शायद संस्कृत साहित्य में किसी ग्रन्थ पर उपलब्ध नहीं होतीं। यद्यपि अनेक यूरोपीय एवं भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद व टीकाएं हैं पर यहां केवल संस्कृत टीकाओं व टीकाकारों की नामावली दी जा रही है। इनमें से अनेक टीकाएं अप्रकाशित हैं। इन टीकाओं को जो थोड़ा बहुत विवरण जहां-तहां प्राप्त होता है, उसका उल्लेख भी तालिका में किया जा रहा है -

तालिका

क्र० सं.	टीका	टीकाकार	विवरण
१	बालप्रबोधिनी	स्थिरदेव	
२	पञ्जिका	वल्लभदेव	
३	प्रदीप	दक्षिणावर्त्तनाथ	प्रारम्भिक तेरह टीकाकारों को
४	चारित्रवर्द्धिनी	चारित्रवर्द्धन	प्रमुक रूप से इस प्रबन्ध
५	कविप्रिया	शाश्वत	में लिया गया है अतः इनका

---

१. रघु. १।१०

क्र० सं	टीका	टीकाकार	विवरण
६	संजीवनी	मल्लिनाथ	विवरण द्वितीय अध्याय में है।
७	विद्युल्लता	पूर्णसरस्वती	
८	सारोद्धारिणी		
९	तात्पर्यदीपिका	सनातनशर्म अथवा गोस्वामी	
१०	सुगमान्वयावृत्ति	सुमतिविजय	
११	सुबोधा	भरतमल्लिक	
१२	मेघदूत टीका	चरणतीर्थ महाराज	
१३	कात्यायनी	चरणतीर्थ महाराज	
१४	अन्वयबोधिनी		
१५	टीका	आसह	(i) S.K. Belvalkar Fel. Vol. 1957, p.155. (ii) Jain Granthavali 1909, p.188 (iii) Meghduta V.G. Paranjpe (Intro) p.xxxi
१६	अवचूरी	कनककीर्तिगणि	OH.Vol.III., Part-I 1955, p.24-25
१७	श्रृंगाररसदीपिका	कमलाकर	S.K.Belvalkar. Fel. Vol. 1957, p.155.
१८	कल्पलता	----	वही
१९	मालती	कल्याणमल्ल	(i) OH. Vol III, part I, 1955. p.20. (ii) The Vikram (Ka vi) sam. 2018 *1961), p.89-90. (iii) Meghduta Lal Mohan vidyanidhi (Intro)
२०	मनोरमा	कविचन्द्र	S.K.Belvalkar Fel.Vol. 1957 p.155
२१	अर्थबोधिनी	कविरत्न चक्रवर्तिन्	(i) OH. Vol.iii, part I 1955, p.22 (ii) The Vikram (ka.vi) sam 2018 (१९६१) p:89-90.
२२	मुकुर टीका	कृष्णदासविद्यावागीश	(i) Meghduta-Lal Mohan vidyanidhi (Intro) (ii) S.K.Belvalkar Fel. Vol. 1957, p. 156

क्र० सं	टीका	टीकाकार	विवरण
२३	कौमुदी	तीर्थकीर्ति	(i) Meghduta-Lal Mohan vidyanidhi (intro) (ii) S.K.Belvalkar Fel. Vol. 1957, p.156.
२४	टीका	क्षेमहंसगणि	OH. vol. III, Part I, 1955, p.26.
२५	चिन्तामणि	चिन्तामणि	(i) Meghduta Lal Mohan vidyanidhi (intro) (ii) S.K. Belvalkar. Fel. vol.1957, p.156.
२६	रसीदीपिका	जगद्धर	(i) वही (ii) OH. vol.III, part I 1955, p.22-23
२७	टीका	जनार्दन	वही
२८	टीका	जैनेन्द्र	S.K. Belvalkar. Fel. Vol. 1957, p.23.
२९	टीका	जिनहंस	वही
३०	टीका	दिनकर मिश्र	OH. vol. III, part I 1955, p.23.
३१	मेघदूतद्योतिका	दिवाकर उपाध्याय	वही
३२	टीका	निरुक्तकार	(i) S.K.Belvalkar Fel. vol. 1957, p. 157 (ii) The vikram (Ka. vi) Vol. XI 1968, p.47-52.
३३	सुमनोरमणी	परमेश्वर	(i) OH. vol. III, part I, 1955, p. 17-18. (ii) Adyar Library Bulletin. Feb. 1945. (iii) C. Kunhon Raja prensentation vol. Madras 1946, p.353-357.
३४	टीका	बृहस्पतिमिश्र	S.K. Belvakar. Fel. vol. 1957, p. 158
३५	टीका	भगीरथमिश्र	OH. vol. III, part I, p. 23.
३६	मेघसौदामिनी	मकरन्दमिश्र	(i) वही (ii) Mehhduta-Lal Mohan

क्र० सं	टीका	टीकाकार	विवरण
			Vidyanidhi (Intro)
३७	टीका	महिमसिंहगणि	OH. vol. III, part I 1955, p.25.
३८	वालावबोधवृत्ति	महीमेरु	S.K. Belvalkar. Fel. Vol. p. 159
३९	मेघदूतस्थूलतात्पर्य	–	वही
४०	सुखबोधिका	मेघराज	OH. vol. III, part I p.25 (ii) Poona orientalist I, No.3, p.50-51.
४१	मेघलता	--	OH. vol. III, part I 1955, p.26
४२	टीका	मोंटजिल	S.K. Belvalkar Fel. vol. 1957, p.159.
४३	टीका	रविकर	वही
४४	रसिकरंजिनी	--	वही
४५	टीका	रामउपाध्याय	वही
४६	मुक्तावली	रामनाथर्कालंकार	OH. vol. III, part I 1955, p.21 (ii) Meghduta- J.B. Chaudhry 1951, (intro) p.31-33.
४७	शिष्यहितैषिणी	लक्ष्मीनिवास	OH. vol. III, part I 1955, p.25
४८	शिशुहितैषिणी	वत्सव्यास	S.K. Belvalkar Fel. Vol. 1957, p.159.
४९	टीका	विजयसूरि अथवा गणि	OH. vol. III part I 1955, p.26 .
५०	दुर्बोधपदभंजिका	विश्वनाथ	S.K. Belvalkar Fel. vol. 1957, p.160.
५१	मेघदूतार्थमुक्तावली	विश्वनाथ मिश्र	वही
५२	टीका	शर्व	द्रष्टव्य, भरत टीका का श्लोक ८८
५३	टीका	श्रीकण्ठ व उसका शिष्य	S.K. Belvalkar Fel. vol. 1957, p.160.
५४	टीका	समयसुन्दरगणि	OH. Vol. III, part I 1955, p.25

क्र० सं	टीका	टीकाकार	विवरण
५५	विद्वज्जनानुरंजिनी	सरस्वतीर्थ	वही
५६	संगता	हरगोविन्द वाचस्पति	(i) वही (ii) Meghduta J.B.Chaudhry 1951, (Intro), p.33-34
५७	टीका	हरिदास	
५८	चंचला	हरिदास सिद्धा-न्तवागीश	मेघदूतः एक अनुचिन्तन, श्रीरंजन सूरिदेव, पृ. १६४
५९	पंजरिका	मल्लिनाथ सुतविरचित	मेघदूत-सं. रामेश्वर प्रसाद मिश्र (प्रकाशित)
६०	ज्योत्स्ना	हरिदास	Meghduta Lal Mohan vidyanidhi (Intro)
६१	दीप अथवा प्रदीप	वाचस्पति	वही
६२	रसदीपिका	गदाधर	वही
६३	माधुरी	राधामाधव	वही
६४	ब्रह्मप्रकाशिका	पं.नरहरि	The vikram (Ka. vi) 1961, p. 61-63.

इतनी अधिक टीकाओं के होते हुए भी आज भी मेघदूत के विषय में यह उद्घोषणा की जाती है--इस विराट् प्रकृति में जब तक मेघ गरजते बरसते रहेंगे, तब तक कवि संकेतित वर्णनों की नई-नई व्याख्याएं होती रहेंगी । मेघदूत के सम्पूर्ण रहस्य को व्याख्याओं द्वारा अभिव्यक्त कर देना व्याख्याताओं के बस की वात नहीं[१] ।

---

१. श्रीरंजन सूरिदेव मेघदूत एक अनुचिन्तन

द्वितीय अध्याय

प्रमुख टीकाकार

(परिचय, स्थितिकाल, रचनाएं, टीका-वैशिष्टय, परिमाण, विभाजन)

संस्कृति साहित्यकारों ने अपना जीवन-परिचय एवं रचनाकाल प्रस्तुत करने में सदा कृपणता दिखाई है। संस्कृत के टीकाकार भी इस परम्परा के अपवाद नहीं हैं। मेघदूत पर प्राप्त अनेक टीकाकारों का रचनाकाल अज्ञातप्राय है तथापि कतिपय प्राप्त प्रमाणों एवं अनुमानों के आधार पर कालक्रमानुसार प्रमुख टीकाकारों का संक्षिप्त परिचय यहां प्रस्तुत है।

स्थिरदेव

परिचय--प्राचीनता की दृष्टि से मेघदूत, के टीकाकारों में सर्वप्रथम नाम स्थिरदेव का है। इनकी मेघदूत पर लिखी गई टीका बालप्रबोधिनी नाम से विख्यात है। यह टीका वी.जी. परांजपे ने १९३५ में फर्ग्यूसन कालेज के माण्डलिक संग्रहालय से प्राप्त एक हस्तलिखित प्रति के आधार पर पूना से प्रकाशित की।[१] यह हस्तिलिखित प्रति सम्वत् १५२१ में (१४६५ ए.डी.) लिखी गई होने पर भी काफी अच्छी हालत में है। प्रति २८ पृष्ठों में है और प्रत्येक पृष्ठ पर १७ पंक्तियां हैं। कहीं-कहीं पत्रों में दीमक लग गई है तथापि पढ़ने योग्य है। वीरामगांव के कीका के पुत्र ललका ने अपने छोटे भाइयों को संस्कृत की शिक्षा देने के लिए यह प्रति लिखी थी, सम्भवतः ललका को संस्कृत के नियमों का पूर्ण बोध न होने से प्रति में कई स्थलों पर आवश्यक अक्षरों को छोड़ दिया गया है। कुछ स्थलों पर अक्षरों में पुनरावृत्ति दोष भी दृष्टिगत होता है फिर भी परांजपे ने उनकी प्रतिलिपि के प्रति आभार व्यक्त किया है।[२]

स्थितिकाल--इनके काल व स्थान के विषय में कोई विश्वस्त प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। परांजपे के मत में स्थिर की व्याख्या का प्रारम्भिक भाग जनार्दन ने अपनी मेघदूत व्याख्या में दिया है।[३] जनार्दन का समय ११९५-१३८४

---

१. S.K. Belvalkar Fel. vol. 1957,p.151
२. Meghduta V. G. Paranjpe. (intro) p. xxx.
३. Meghduta Ed. V.G. Paranjpe. (intro) p. xxx.

ई. के मध्य ठहराता है।[१] जनार्दन ने एक श्लोक में स्थिरदेव के नाम का उल्लेख किया है--

स्थिरदेववल्लभासहकृतानि भाष्याण्यनेकरचनानि।
अवलोक्य सद्विशेषं विरच्यते बालावबोधाय॥[२]

यहां जनार्दन ने स्थिर. वल्लभ. व आसह का उल्लेख किया है आसह का समय ११९२ ई. ठहरता है।[३] यह तो निश्चित है कि तीनों विद्वान् जनार्दन से पूर्ववर्ती हैं, तीनों ने ही मेघदूत पर टीकाएं लिखी हैं।[४] उपर्युक्त श्लोक में तीनों के क्रम को दृष्टिगत कर ऐसा प्रतीत होता है कि जनार्दन की दृष्टि में स्थिरदेव सबसे पूर्ववर्ती तत्पश्चात् वल्लभ. व उसके बाद आसह आते हैं। स्थिर. व वल्लभ. की टीकाओं में पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है श्लोकों की संख्या व क्रम में भी (८६ से ९० तक को छोड़कर) पर्याप्त समानता है। दोनों ने ही मेघदूत को महाकाव्य कहा है फर्क इतना है कि स्थिर ने उसे क्रीड़ाकाव्य नाम दिया है[५] तो वल्लभ ने केलिकाव्य कहा है।[६] महाकाव्य की इस नवीनता का अन्य किसी टीकाकार ने उल्लेख नहीं किया।

श्लोकों की व्याख्या में भी शब्दार्थ की स्पष्टाभिव्यक्ति के लिए दोनों ने कई स्थलों पर समान उद्धरणों को दिया है। उदाहरणतया प्रथम श्लोक में तीर्थ की व्याख्या में दोनों ने ही कुमारसम्भव ६।५६ को, षष्ठ श्लोक में महाभारत के "वरं कूपशताद्वापी" को, बयालीसवें श्लोक में माघ के उद्धरण को, एक सौ चार में नीतिशतक को व एक सौ छः में महाभारत का उद्धरण दिया है।

अतः यह तो निर्विवाद है दोनों में से किसी एक के समक्ष दूसरे की टीका विद्यमान थी पर दोनों में से कौन पूर्ववर्ती है, इस विषय में एक तो उपर्युक्त ठोस प्रमाण है जनार्दन द्वारा स्थिर. का पूर्व प्रयोग स्थिरदेव को वल्लभ. से पूर्ववर्ती सिद्ध करता है। दूसरा तर्क यह है इक्कीसवें श्लोक में स्थिर. ने सारंग का अर्थ चातक देते हुए अन्य टीकाकारों के मतों का खण्डन करते हुए लिखा है--न च गजमृगभृङ्गाणां सारङ्गाभिधानं प्रसिद्धमिति[७]। किन्तु वल्लभ ने सारंग को मयूर का वाचक कहा है अतः यदि वल्लभ. स्थिर. से पूर्ववर्ती होते तो जहां स्थिर ने अन्य मतों को दिया है वहां वल्लभ. के मत का भी अवश्य उल्लेख करते, जिससे स्पष्ट है कि स्थिर. वल्लभ से पूर्ववर्ती ही हैं।

---

१. Cal. ori. Journal-Ip.199.
२. Meghduta ed. V.G. paranjpe (intro) p. xxx.
३. Jain Granthavali-1909,p.188.
४. Meghduta-ed. S.K. De. (Select Bibliography) p. 7-13.
५. स्थिर.टीका-श्लोक सं. १
६. वल्लभ.टीका-श्लोक सं.१
७. स्थिर. टीका-पृ.२९

इसके अतिरिक्त अट्ठानवे श्लोक में स्थिर ने आयुष्मन् शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु वल्लभ. ने ब्रूयात् के साथ आयुष्मन् का खण्डन आयुष्मान् शब्द को उचित कहा है-- आयुष्मानिति वचने कर्तृपदं त्वामन्त्रणम्। ब्रूयादिति प्रथमपुरुष प्रयोगात्[१] यह प्रमाण भी वल्लभ. को परवर्ती सिद्ध करता है।[२]

स्थिर. उस समय हुए जब अलंकार स्कूल का प्रभाव था। उन्होने अपनी व्याख्या में स्थान-स्थान पर दण्डी, भामह, रुद्रट व उद्भट को उद्धृत किया है। इनमें उद्भट सबसे परवर्ती हैं जो काश्मीर के राजा जयापीड के समय में (७७९-८१३ ई.) वहां के सभापति थे। अतः स्थिर इसके बाद के सिद्ध होते हैं एवं वल्लभ. से पूर्ववर्ती। वल्लभ. का समय दसवीं शती का पूर्वार्द्ध माना गया है,[३] अतः स्थिर. का समय नवम शती का उत्तरार्द्ध कहा जा सकता है।[४]

टीका वैशिष्ट्य-- अगाध ज्ञान युक्त यह टीका साहित्य जगत् में प्रसिद्ध है। व्याख्या के प्रारम्भ में प्रत्येक श्लोक के सार को एक वाक्य में कह देना इनका प्रमुख वैशिष्ट्य है। उस समय अलंकार स्कूल का प्रभाव होने से स्थल-स्थल पर उद्भट, रुद्रट व दण्डी आदि की अलंकारिक सम्बन्धी परिभाषाओं को देते हुए स्थिर ने अपने अलंकार सम्बन्धी ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है। प्रश्नोत्तर शैली को अपनाते हुए शव्दार्थ के स्पष्टीकरण के लिए अनेक विद्वानों के मतों को उद्धृत किया है। कुछ स्थलों पर भिन्न-भिन्न पाठों को देते हुए उनके अर्थ को स्पष्ट किया है। शव्दव्युत्पत्ति द्वारा स्थिर ने व्याकरणिक ज्ञान का भी पूर्णतया बोध कराया है।

परिमाण - यद्यपि इनकी टीका ११२ श्लोकों पर प्राप्त होती है पर उनमें से "हारांस्तारां" श्लोक पर व्याख्या करते हुए "केचित् प्रक्षेपकमिदमिति वदन्ति" कहा है, न ही यह श्लोक संख्यानुक्रम में लिया गया है। इस दृष्टि से स्थिर. ने १११ श्लोक ही मूल रूप में माने हैं। आधुनिक विद्वान् इन्ही १११ श्लोकों को मूल रूप में स्वीकार करते हैं।

विभाजन - स्थिर. ने पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध रूप में मेघदूत का कोई विभाजन नहीं किया है।

वंल्लभदेव

परिचय - इनकी मेघदूत पर लिखी गई टीका "पञ्चिका" नाम से प्रसिद्ध है। इस टीका की सर्वप्रथम आवृत्ति ई. हुल्श ने १९१९ में लन्दन से प्रकाशित की। अपने वंश-परिचय के सम्बन्ध में वल्लभ ने टीका के अन्त में लिखा है-इति राजानकानन्ददेवात्मजपरमात्मचिन्हपरनामवल्लभदेवविरचिता मेघदूतविवृत्तिः

---

१. वल्ल्भ. टीका-श्लोक सं. ९८
२. Meghduta- ed. V.G. paranjpe (intro) p.p xxxi-xxxiv.
३. (क) काव्यमाला -प्रथम खण्ड, पृ. १०१
(ख) Meghdutta - ed. E. Hultzsch, p. ix.
४. Meghduta ed. V.G. paranjpe (intro) p.xxxiv.

समाप्ता।[१]

इससे स्पष्ट है कि इनके पिता राजानक आनन्द देव थे व इनका उपनाम परमात्मचिन्ह था। यही वंश-परिचय काव्यमाला में भी दिया गया है--

सुनुरानन्ददेवस्य रणभूव्योम्नि भास्वतः।
वक्रोतिवर्णने राल्ते टिप्पणं वल्लभो व्यघात्॥[२]

दुर्गाप्रसाद ने आनन्दवर्धन के देवीशतक के व्याख्याता चन्द्रादित्य केपुत्र कैय्यट को वल्लभदेव का पोता सिद्ध किया है।[३]

स्थितिकाल--वल्लभ. के समय के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं है, काव्यमाला में वल्लभ. का समय दशम शती का पूर्वार्द्ध निश्चित किया गया है--मल्लिनाथाद्बहुतरप्राचीनौ वल्लभदेवस्तु ख्रिस्तसंवत्सरीयदशमशतकस्य पूर्वार्द्ध बभूव।[४] यही समय ई. हुल्श ने भी दिया है।[५]

इसके अतिरिक्त काव्यमाला के नवम् खण्ड में आनन्दवर्धनाचार्य कृत देवीशतक पर कैय्यट की टीका दी गई है। टीका के अन्त में कैय्यट ने यह उल्लेख किया है कि उन्होने इस टीका को भीमगुप्त के राज्यकाल में लिखा था।[६] भीमगुप्त का समय दशम शती का उत्तरार्द्ध है और कैय्यट को यदि भीमगुप्त का समकालीन मानते हैं तो कैय्यट के दादा वल्लभ. का समय स्वतः ही दशम शती का पूर्वार्द्ध सिद्ध हो जाता है।

हुल्श ने वल्लभ द्वारा माघ कृत शिशुपाल-वध पर लिखी गई शारदा पाण्हुलिपि का उल्लेख किया है।[७] यह पाण्डुलिपि १९४६-४८ में लिखी गई थी। उस पाण्डुलिपि में वल्लभदेवीय टीका का समय इस प्रकार है--श्रीसप्तर्षिसम्वत् ४७२२ आषाढ़वती अष्टभ्या भौमे इयं टीका समाप्तिं नीता।

हुल्श ने प्रो. कीलहार्न के मत का उल्लेख करते हुए ज्योतिष गणना के आधार पर इस तिथि को भ्रमपूर्ण कहकर असत्य सिद्ध कर दिया है एवं उपरोक्त प्रमाणों के आधार पर वल्लभ को दशम शती के पूर्वार्द्ध में ही सिद्ध किया है।

किन्तु काशीनाथ बाबू पाठक ने निम्न प्रमाणों के आधार पर वल्लभ को १२

---

१. Meghduta -ed.E. Hultzsch, p. 58.
२. काव्यमाला-प्रथम खण्ड, पृ.११४
३. वही -पृ.१०१
४. काव्यमाला - प्रथम खण्ड, पृ. १०१
५. Meghduta ed.E.Hultzsch-preface.
६. वल्लभदेवायनितश्चन्द्रादित्यादवाप्य जन्मेमाम्। कैय्यट नामारचय द्विवृत्ति देवीशतस्तोत्रे॥ एवं वागीश्वर्याः स्वरूपमाख्यायमन्मयावाप्तम्। पुण्यं तेन जगत्स्यात्प्रति- जन्मावाप्तपरबोधम्॥ वसुमुनि गगनोदधि (४०७८) समकाले जाते कलेस्तथालोके। द्वपञ्चाशे वर्षे रचितेयं भीमगुप्तनृपे॥ काव्यमाला-नवम खण्ड, पृ. ३१
७. Meghduta ed. E. Hultzsch.preface ix.

वीं शती का सिद्ध किया है--

(१) प्रथम प्रमाण ये 'आस' शब्द का देते हैं। इस शब्द के बारे में हेमचन्द्र ने अपनी बृहद् वृत्ति (IV) में लिखा है --असतेरपं प्रयोगः । ईक्षामासेत्यादौ णवन्तानुप्रयोग प्रतिरूपकनिपातस्य वा इस विचार का खण्डन वल्लभ ने अपनी कुमार सम्भव टीका में दिया है--आसेति कवीनां प्रमादजः प्रयोगो भूभावप्रसङ्गात्। यत्वन्ये तिङ्न्तप्रतिरूपको निपात इति तदसत्। तादृशस्य तिडन्तस्येवाभावात् (कु.स. १।३५)।

हेमचन्द्र ने शब्दानुशासन सिद्धाराज जयसिंह के समय में समाप्त किया था। सिद्धराज जयसिंह का समय ई. पू. १०९४ से ११४३ तक का है. एवं वल्लभ ने कुमारसम्भव पर टीका ११२० से ११४१ के मध्य लिखी है।

(२) 'महीध्र' शब्द को लेकर पाठक जी दूसरा तर्क यह देते हैं कि वल्लभ ने शिशुपालवध की टीका में महीध्र की व्याख्या में कहा है--धैतृप्तो, महीं धारयन्तीति महीध्राः आतोनुपसर्गे कः । अथवा महीं धारयन्तीति महीध्राः मूलविभुजादित्वात्कः। महीध्रे की यह व्याख्या अमरकोश की क्षीरस्वामी टीका में है, यह टीका ११ वीं शती के उत्तरार्द्ध में लिखी गई है।

(३) वल्लभ. ने मेघदूत के द्वितीय श्लोक में परिणत की व्याख्या में कहा है- "तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः" परिणत शब्द की यह परिभाषा हलायुध कोष में दी गई है जिसका समय ११ वीं शती है। [१]

उपरोक्त तीन प्रमाणों के आधार पर काशीनाथ वल्लभ को १२ वीं शती का सिद्ध करते हैं दुर्गाप्रसाद शास्त्री के मत का खण्डन करते हुए कहते हैं कि दुर्गाप्रसाद जी ने अपने माघ के प्रकाशन में वल्लभ की कविवंश वर्णन पर जो टीका है, उसे भी दिया है। उसमें वल्लभ ने विल्हण का उल्लेख किया है। सम्भवतः दुर्गाप्रसाद ने इस वल्लभ को जो कालिदास के काव्यो का टीकाकर्त्ता है, उस वल्लभ से मिला दिया है जिसका पोता कैय्यट है एवं जिसने आनन्दवर्धन के देवी शतक पर ९७७-७८ ई. में टीका लिखी थी। [२]

काशीनाथ जी के उपरोक्त प्रमाणों को वल्लभ का समय निश्चित करने की अन्तिम व पूर्ण कसौटी नहीं कहा जा सकता। यह सत्य है कि वल्लभ ने उपरोक्त महीध्र आदि शब्दो की उसी रूप में व्याख्या की है, पर वल्लभ ने कहीं पर भी हलायुध कोष, बृहद्वृत्ति या क्षीरस्वामी को नामतः उल्लिखित नहीं किया है अतः केवल उद्धरणों की समता के आधार पर वल्लभ. को उनसे परवर्ती नहीं कहा जा सकता। दुर्गाप्रसाद शास्त्री के मत के खण्डन में काशीनाथ जी ने जो तर्क दिया है वह भी निराधार है। यह सत्य है कि कवि वंश वर्णन में वल्लभ कृत व्याख्या में विल्हण का उल्लेख है जिसका समय ११ वीं शती का सिद्ध हुआ हो चुका है।

१. Kalidasa's Meghduta or the cloud Messenger-ed K.B. Pathak (intro) p. xiv.

२. ed.K.B.Pathak, (intro) p.xv.

किन्तु यह वल्लभ दसवीं शती वाला वल्लभ नहीं । यह वह वल्लभ है जो कि सुभाषितावली का संग्रहकर्ता है । इस द्वितीय वल्लभ का उल्लेख दुर्गाप्रसाद ने स्वयं किया सुभाषितावली संग्रहकर्त्ता वल्लभदेवस्त्वन्यः सच ख्रिस्तसंवत्सरीयपञ्चदशशतकपूर्वार्धतो न प्राचीनः ।[१] इसी वल्लभ द्वारा कविवंश वर्णन पर टीका लिखी गई है । आधुनिक विद्वानों ने वल्लभ को दशम श. का ही सिद्ध किया है ।[२]

रचनाएं -- जहां तक वल्लभ की रचनाओं का प्रश्न है, इस सन्दर्भ में विद्वान् एकमत हैं कि कालिदास कृत मेघदूत कुमारसम्भव व रघुवंश पर टीका लिखने वाला वल्लभ एक ही है । मयूर कवि के सूर्यशतक व रत्नाकर की वक्रोक्ति पंचाशिका को भी उन्होने अपनी व्याख्या से विभूषित किया । दुर्गाप्रसाद ने आनन्दवर्धन कृत देवीशतक पर वल्लभ द्वारा दी गई संक्षिप्त टिप्पणी का उल्लेख किया है । कैय्यट ने भी देवीशतक की टीका के प्रारम्भ में वल्लभकृत टीका का उल्लेख किया है संचिक्षिप्सुरलं स्वबुद्धिरचितैः पर्यायशव्दर्व्यधाट्टीकां वल्लभदेव उत्तममतिस्मृत्यै भवानी स्तुतौ ।[३]

इसके अतिरिक्त वल्लभकृत शिशुपालवध टीका से यह ज्ञात होता है कि इन्होने रुद्रट के अलंकार ग्रन्थ पर टीका लिखी है । किरातार्जुनीयम् के भी यह व्याख्याकार माने जाते हैं ।

टीका वैशिष्ट्य--प्राचीनता की दृष्टि से यह टीका अत्यन्त उपादेय है । भाषा सरल व स्पष्ट है । प्रश्नोत्तर द्वारा अत्यन्त संक्षिप्त वाक्यो में शव्दार्थ को स्पष्ट किया है । शव्द व्युत्पत्ति द्वारा व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है । अन्य ग्रन्थो के उद्धरणों का यत्र- तत्र निर्देश किया है पर कहीं पर भी ग्रन्थ का नाम निर्देश नहीं किया है । यह टीका संक्षिप्तता लिए हुए सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत करती है ।

परिमाण--स्थिर के समान इनकी व्याख्या भी ११२ श्लोकों पर प्राप्त होती है । पर त्वामासार...(श्लोक सं.१७) के अनन्तर "एतदनुकारी क्वचिदयमपि श्लोको विद्यते" कहते हुए अध्वक्लान्तं...श्लोक की व्याख्या दी है जिससे स्पष्ट है कि वे अध्वक्लान्तं..श्लोक को मूल रूप में ग्रहण कर १७ वें श्लोक की नकल मात्र कहते हैं न ही अध्ववलान्तं ..को श्लोक संख्यानुक्रम में लिखा गया है । अतः वल्लभ ने १११ श्लोक ही मूल रूप में स्वीकार किये हैं ।

विभाजन--इन्होने पूर्वाद्ध व उत्तराद्ध रूप में मेघदूत का कोई विभाग नहीं किया है ।

---

१. काव्यमाला - प्रथम खण्ड, पृ. १०२.
२. OH. vol. III, part I, 1955, p. 15.
३. काव्यमाला - नवम खण्ड, पृ.१

दक्षिणावर्त्तनाथ

परिचय--इनकी मेघदूत पर लिखी गई प्रदीप नामक टीका १९१९ ई. में त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज से त. गणपति शास्त्री द्वारा प्रकाशित की गई। जैसा कि इनके नाम से ज्ञात होता है कि यह सम्ऊम्भवतः चोल देश के निवासी थे। तमिल भाषा प्रयोग करने वाले चोल देश में ग्राम देवता को तिरुवल्लचुषि कहा जाता है। तिरु से तात्पर्य श्री से है और वल्लचुषि दक्षिणावर्त का बोधक है।[१]

इनके नाम के विषय में कुछ विद्वानों ने कहा है कि मल्लिनाथ के विचार में दक्षिणावर्त और नाथ ये दो अलग-अलग व्यक्ति हैं[२] जैसा कि उन्होने अपनी रघुवंश टीका के प्रथम श्लोक में कहा है--

दक्षिणावर्त्तनाथाद्यैः क्षुण्णवर्त्मसु।
वयं च कालिदासोक्तिष्वप्रकाशं लभेमहि ।।

यहां नाथ से तात्पर्य अरुणगिरि नाथ से है। इस आधार पर काशीनाथ जी ने प्रदीप टीकाकार का नाम दक्षिणावर्त्त ही माना है। नाथ उपाधि दक्षिणावर्त्त एवं वरुणगिरि दोनों के साथ प्रयुक्त होती थी। यद्यपि उपरोक्त श्लोक में नाथ वरुणगिरि का ही बोधक है लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि उपाधि दक्षिणावर्त्त के लिए प्रयुक्त नहीं होती। मल्लिनाथ ने स्वयं मेघदूत व्याख्या में तीन स्थलों पर नाथ के मत को उद्धृत किया है।[३] और वे प्रसंग दक्षिणावर्त की टीका में पाये जाते हैं जो इस बात का ठोस प्रमाण है कि मल्लिनात ने अपनी मेघदूत व्याख्या में नाथ का प्रयोग दक्षिणावर्त के लिये ही किया है। अतः दक्षिणावर्त एवं नाथ अलग-अलग व्यक्ति न होकर एक ही व्यक्ति का बोधक है।

स्थितिकाल--दक्षि. की टीका में कहीं पर भी उनके काल स्थान का निर्देश नहीं किया गया है। पर इन्होने स्थलों पर नानार्थार्णव संक्षेप के लेखक केशव स्वामी का स्मरण किया है। यथा श्लोक सं. १४ में--प्राणो वायो बले पुंसि भूम्रयसुवाचकः इति केशवस्वामी। केशवस्वामी का समय प्रासरण १२ वीं शती सिद्ध हो चुका है अतः यह या तो इनके समकालीन रहे होंगे या परवर्ती। अरुणगिरिनात ने अपनी कुमारसम्भव व रघुवंश की टीकाओं में प्रदीप शैली का अनुकरण किया है। मल्लिनाथ ने भी अनेक स्थलों पर दक्षि. का उल्लेख किया है।[४] दक्षि. व मल्लि. टीकांओं में भी काफी समता दृष्टिगत होती है। दोनों में मेघदूत का उद्गम स्थल रामायण कहा है। इसके अतिरिक्त १४ वें श्लोक (अद्रेःशृंगं..)

---

१. मेघदूत. त. गणपति शास्त्री, भूमिका भाग
२. (क) Meghduta ed. G.R. Nardargikar, p. 24
(ख) ed. K.B. Pathak (intro) p. xii
३. ed. K.B. Pathak, verses- 4.71.106.
४. (क) ed. K.B. Pathak, verses- 4.71/106
(ख) रघु. (मल्लि. टीका.) श्लोक ७

की व्याख्या में दोनों ने दिङ्नाग का उल्लेख किया है । कई स्थलों पर दोनों ने समान उद्धरणों को दिया है । अतः यह निश्चित है कि दक्षिणावर्तनाथ अरुणगिरि नाथ व मल्लिनाथ से पूर्ववर्ती थे । मल्लि. का समय सप्रमाण १४ वीं शती का सिद्ध हो चुका है । अतः इनका समय १२-१३ श. के मध्य कहा जा सकता है । सुशील कुमार डे ने उन्हे १३ वीं शती के मध्य स्वीकार किया है ।[१]

रचनाएं--मेघदूत के अतिरिक्त रघुवंश व कुमारसम्भव को भी उन्होने अपनी व्याख्या से विभूषित किया है जैसा कि उन्होने प्रदीप टीका के प्रारम्भ में लिखा है--

रघुवंशकुमारसम्भवौ द्वौ स्फुटभावो किल यस्यदीपिकाभ्याम् ।
स ददाति रसोज्वलं प्रदीपं तिमिरं मेघसमुद्भवं विहन्तुम् ।।[२]

टीकावैशिष्टय--टीका अत्यन्त सरल शैली में लिखी गई है । भावों की पूर्णाभिव्यक्ति के लिए विभिन्न कोषों व ग्रन्थो के उद्धरणों से टीका को संवलित किया है । पाणिमी सूत्रों के आधार पर शब्द व्युत्पत्ति को स्पष्ट करते हुए व्याकरणिक ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है । टीका का प्रमुख वैशिष्टय पाठ-भेद है, कई स्थलों पर इन्होने सबसे अलग पाठ अपनाया है और उस पाठ के वैशिष्टय को भी पूर्णतया स्पष्ट किया है यथा श्लोक सं. ३. में कौतुकाधानहेतोः पाठ को ग्रहण करते हुए कहा है--कौतुकाधानहेतोरिति पाठः कौतुकं कामविषयोत्सुक्यम् कौतुकर्पणहेतोरित्यर्थ कौतुकं विषयाभोगे हस्ते सूत्रे कुतुहले । कामे ख्याते मङ्गले च इति यादवः । केतकाधानहेतोरिति पाठे केतकानां गर्भाधानहेतोरित्यर्थ किल भवेत् । इदमत्यन्तश्लाध्याविशेषणं न स्यादिति बोधव्यम् । कौतुकाधानहेतोरिति विशेषणं मनोरथस्थितं मेघस्वागतादिकार्य विस्मृत्य च परवशो बभूवेत्यर्थस्य कारणत्वेनोक्तम् (पृ.३) ।

चारि., मल्लि. व पूर्ण ने इनकी व्याख्या पद्धति का अनुकरण किया है ।

परिमाण--इन्होने कुल ११० श्लोकों पर अपनी व्याख्या दी है यद्यपि इनकी टीका में पांच अन्य श्लोक भी प्राप्त होते हैं । पर उन श्लोकों को दक्षि. ने न तो व्याख्या से अलंकृत किया है और न ही उन्हे श्लोक संख्यानुक्रम में दिया है,[३] अतः दक्षि. की दृष्टि में वे श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं ।

विभाजन--इन्होने मेघदूत को मेघसन्देश नाम देकर पूर्वसन्देश व उत्तरसन्देश रूप में उसका विभाग किया है ।

चारित्रवर्द्धन

परिचय--जैन टीकाकारों में विशिष्ट टीकाकार के रूप में चारित्रवर्द्धनाचार्य्य हैं । इनकी टीका चारित्रवर्द्धिनी नाम से विख्यात है । आफ्रेक्ट ने चारित्रवर्द्धन का

---

१. OH. Vol. III, part I, 1955, p. 16-17
२. मेघ. (दक्षि. टीका), पृ.१
३. द्रष्टव्य - दक्षि. टीका, पृ. [illegible]

दूसरा नाम विद्याधर अथवा साहित्यविद्याधर दिया है ।[१] पर चारित्रवर्द्धन एवं साहित्यविद्याधर एक व्यक्ति न होकर अलग-अलग व्यक्ति है दोनों ने ही नैषधीयचरित पर टीका दी है । चारित्रवर्द्धन कृत टीका तिलक नाम से व विद्याधर रचित टीका विद्याधर नाम से जानी जाती है ।[२]

स्थितिकाल--खरतरगच्छीय चारित्रवर्द्धन को रामचन्द्र मिसाज का पुत्र व कल्याण राजा का शिष्य कहा गया है । इनका समय ११७२-१३८५ ई. के मध्य माना गया है ।[३]

रचनाएं--इनकी रघुवंश व कुमारसम्भत्र पर लिखी गई टीका शिशुहितैषिणी नाम से विख्यात हैं । इनके अतिरिक्त इन्होने शिशुपालवध, नैषध व राघवपाण्डवीय पर भी टीकाएं लिखीं है । मेघदूत पर लिखी गई इनकी चारित्रवर्द्धिनी टीका की एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ता एशियाटिक सोसाटी में उपलव्ध है जो कि १८५७ ई. में लिखी गई । यह प्रति अत्यन्त खराब हालत में है ।[४] इसके अतिरिक्त एक अन्य प्रति पूना भण्डारकर औरियन्टल इंस्टीटयूट में भी प्राप्त है । यह टीका बनारस के चौखम्बा संस्कृत सिरोज से १९३१ में प्रकाशित हुई । १९६४ तक उसके सात संस्करण निकल चुके हैं ।

टीका वैशिष्टय--टीका संक्षिप्त व सरल शैली को ग्रहण किये हुए है । शव्दार्थाभिव्यक्ति के लिये विभिन्न कोषों व ग्रन्थो के उद्धरण दिये गये हैं । कहीं कहीं पर व्युत्पत्ति को देते हुए व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है । कुछ स्थलों पर पाठभेद को भी स्पष्ट किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि चारित्रवर्द्धन के सामक्ष दक्षि . की टीका रही होगी । कई स्थलों पर इन्होने दक्षि. द्वारा ग्रहण पाठ व व्याख्याओं को उसी रूप में स्पष्ट किया है । श्लोक सं. चार में केवल "प्रत्यासन्ने मनसि" पाठ दिया है । चारित्रवर्द्धन ने भी इस पाठ को पाठान्तर के रूप में देते हुए दक्षि. की व्याख्या दी है--प्रत्यासन्ने मनसीति पाठे ध्यानव्याकुलिते चेतसि पुनः प्रतिष्ठिते सतीत्यर्थः (पृ.८)

परिमाण--इन्होने १२२ श्लोकों पर अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है ।

शाश्वत

परिचय--इनकी मेघदूत टीका कविप्रिया नाम से है । इस टीका की एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ता की एशियाटिक सोसाटी लायब्रेरी में प्राप्त है जो अत्यन्त खराब हालहत में है,[५] उसी प्रति के आधार पर टीका का पूर्वार्द्ध जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा १९५३ ई. में कलकत्ता से प्रकाशित कराया गया । हस्तलिखित प्रति

१. Catalogus catalogorun-T. Aufrecht, part I, p. 186.
२. Cal. ori. Journal III, p.32-40
३. ABORI. Vol.15 (1933-34), p.109-111.
४. OH. vol. III, part I 1955, p.23-24.
५. OH. Vol. III, part I, 1955, p.22.

के स्पष्ट न होने के कारण जतीन्द्र ने कई स्थलों पर चिह्न XXX देते हुए व्याख्या को स्पष्ट नहीं किया है।[१]

स्थितिकाल-टीका में कहीं पर भी शाश्वत ने अपने काल व स्थान का निर्देश नहीं किया है। इनके काल के विषय में विद्वत्समाज मूक है। मेघदूत की हस्तलिखित प्रति का समय १३३० ई. है[२] जिसके आधार पर इनका समय तेरहवीं शती के उत्तरार्द्ध से लेकर चौदहवीं के पूर्वार्द्ध के मध्य रखा जा सकता है।

टीकावैशिष्ट्य--टीका सरल शैली में निबद्ध है। शब्दार्थ का स्पष्टीकरण कोष व ग्रन्थो के उद्धण देते हुए किया गया है। व्याख्या में प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया गया है। कुछ स्थलों पर भिन्न-भिन्न पाठों का उल्लेख किया है पाणिनी सूत्रों को देखते हुए कुछ स्थलों पर शब्द व्युत्पत्ति को भी स्पष्ट किया है।

परिमाण--इस टीका का उत्तरार्द्ध प्रकाशित नहीं है अतः मूल श्लोक संख्या के विषय में निश्चित रूपेण कुछ नहीं कहा जा सकता है। सुशीलकुमार डे ने ११५ श्लोक शाश्वतानुसार कहे हैं।[३]

मल्लिनाथ

परिचय--मेघदूत पर इनकी व्याख्या संजीवनी नाम से विश्वविख्यात है। यह टीका सर्वप्रथम बनारस से १८४९ ई. में प्रकाशित हुई। १८५० ई. में मदनमोहन तर्कालंकार ने इस टीका को कलकत्ता से प्रकाशित किया। १८५९ ई. में यह मद्रास से प्रकाशित हुई। कृष्ण शास्त्री ने १८६६ में इसे बम्बई से प्रकाशित किया। कलकत्ता में पुनः १८६९ में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा यह प्रकाशित हुई।[४] तब से लेकर अब तक इसके विभिन्न संस्करण विभिन्न स्थानों से प्रकाशित हो चुके हैं।

स्थितिकाल--काशीनात बाबू पाठक के मल्लिनाथ का समय चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध कहते हुए अनेक प्रमाण दिये हैं--

(१) मल्लिनाथ ने टीका में संगीत रत्नाकर को उद्धृत किया है। संगीत रत्नाकर की रचना यादवराजा सिंघला के समय में हुई थी जिसने ११३१ से ११६९ श. तक राज्य किया था।

(२) मल्लिनाथ ने कुमारसम्भव (११/१) की व्याख्या में बोपदेव का भी उल्लेख किया है। जो मुग्धबोध का रचयिता है। यह बोपदेव यादव राजा महादेव और उसके उत्तराधिकारी रामचन्द्र का समकालीन माना जाता है। इस अन्तिम राजा ने १२७१ से १३०१ तक राज्य किया था।

---

१. Jornal of the pracyavani vol. x, II, Calcutta 1953
२. OH. vol. III, part I, 1955, p.22.
३. Ch. vol. III, part I, 1955, p.22.
४. Ibid - p. 18-19

(३) मल्लिनात ने मेघदूत व्याख्या में एकावली का उल्लेख किया है। विद्याधर ने एकावली में कई स्थलों पर वीरनरसिंह का उल्लेख किया है जिसने १३१४ ई. तक राज्य किया।[१]

इन तथ्यो के आधार पर मल्लिनाथ का समय चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध प्रतीत होता है। नन्दर्गीकर महोदय[२] एवं सुशील कुमार डे[३] ने मल्लिनाथ का समय १४ वीं शती माना है।।

रचनाएं--इनकी टीकाएं कालिदास, भारवि, भट्ट., माघ एवं श्री हर्ष की रचनाओं पर प्राप्त होती हैं। मेघदूत कुमारसम्भव रघुवंश पर की गई टीकाएं संजीवनी नाम से एवं किरातार्जुनीय के आठ सर्गों पर की गई टीका 'घन्टापथ' नाम से जानी जाती हैं। इन्होने विद्याधर की एकावली पर तरला नामक टीका लिखी है।

टीका वैशिष्टय--अनेक टीकाओं को होते हुए भी जो सम्मान व ख्याति इस टीका को प्राप्त हुई, वह अन्य किसी को नहीं। इनकी व्याख्या के माध्यम से महाकवियों की कृतियों की जो स्पष्ट एवं गहनभावाभिव्यक्ति हो सकी है, उसके लिये विद्वत्समाज सदैव इनका ऋणी है। टीका में विभिन्न कोष व ग्रन्थो के उद्धरण एवं व्याकरणिक सूत्रों का संग्रह है। टीका इतने सुचारू रूप में की गई है कि उसमें कुछ भी निष्प्रयोजन प्रतीत नहीं होता। स्वयं मल्लिनाथ के शव्दो में--

इहान्वयमुखेनेव सर्व व्याख्याययते मया।
नामूलं लिख्यते किचिन्नानपेक्षितमुच्यते ।।[४]

संजीवनी नाम ही इसकी पूर्णता द्योतक है--

मल्लिनाथकृता व्याख्या त्रिगुणा च रसात्मिका।
सञ्जीवनीति विख्याता काव्याना प्राणवानतः ।।[५]

स्थल-स्थल पर अलंकारों की छटा का निर्देश करते हुए टीकाकार ने अपनी विस्तृत ज्ञान परिधि का अवलोकन करा दिया है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार संजीवनी औपधि मनुष्यो के लिये प्राणदायक है, उसी प्रकार मल्लिनाथ की व्याख्या मेघदूत पद्यों की अर्थाभिव्यक्ति के लिये संजीवनी है।

परिमाण--मल्लिनाथ ने १२१ श्लोकों पर व्याख्या दी है उनमें से छः श्लोकों को प्रक्षिप्त कहा है। यद्यपि हस्तलिखित प्रतियों में ११६, ११८, १२१, १२५ आदि रूपों में भिन्न-भिन्न श्लोक संख्या पाई जाती है पर अधिकांशतः प्रकाशित संस्करण १२१ श्लोकों पर ही मल्लिनाथीय व्याख्या प्रस्तुत करते हैं।

१. ed. K.B. Pathak, preface-xxi.
२. Reghuvansa-ed. G.R. Nandarigikar, 3rd ed. preface I.
३. Sanskrit poetics I, S.K. De. p.228.
४. मेघ. (मल्लि. टीका का प्रारम्भ)
५. Meghduta - Lal Mohan vidyanidhi (intro)

विभाजन--मल्लिनाथ ने अपनी व्याख्या को पूर्वमेघ एवं उत्तरमेघ रूप में विभाजित किया है ।

पूर्णसरस्वती

परिचय--इनकी मेघदूत पर की गई टीका विद्युल्लता नाम से प्रसिद्ध है । यह टीका वाणी विलास प्रेस श्रीरंगम् से १९०१ में अभिनव भट्टबाण कृष्णमाचार्य द्वारा प्रकाशित की गई, द्वितीय संस्करण १९२६ में प्रकाशित हुआ । इनके स्थल के विषय में कृष्णामाचार्य ने लिखा है कि ये केरल देश के काटमाटस नाम प्रसिद्ध मन्त्रिकुल में जन्म लेने वाले केरलाजातीय ब्राह्मण हैं ।[१] अपनी टीका के प्रारम्भ व अन्त में पूर्णज्योति की स्तुति करते हुए इन्होने स्वयं को उनका शिष्य घोषित किया है-

पूर्णज्योति चरणकरुणाजाह्नवीपूतचेताः
स्फीतासूयाकलुषितधियो दुर्जनाद्भीतभीतः ।
मेघस्याहं स्वमतिसदृशं व्याक्रियायां यतिष्ये
सौजन्येन्दोरुदयगिरयः सूरयस्तत्क्षन्ताम् ।।[२]

पूर्णज्योति का निवासस्थल कांची माना गया है । पूर्णसरस्वती शिव, कृष्ण व विष्णु के उपासक प्रतीत होते हैं । अपनी व्याख्या के प्रारम्भ में उन्होने तीनों की स्तुति की है ।

स्थितिकाल-इनके काल के सन्दर्भ में कोई विश्वस्त प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं । कृष्णमाचार्य ने उन्हे मल्लिनाथ से अर्वाचीन मानते हुए कहा-

अयं च व्याख्याता मल्लिनाथदर्वाचीन इति ज्ञायते यतोऽयं मल्लिनाथीयं व्याख्यानमेव केचिदिति तत्र-तत्र निर्दिशति ।[३]

किन्तु कुन्हन राजा ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि यह सत्य है कि केचित् के द्वारा पूर्णसरस्वती ने अन्य टीकाकारों का मत उद्धृत किया है पर वह टीकाकार मल्लिनात ही है, इस विषय में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता । जहां तक दो चार शव्दो की समानता का प्रश्न है वह तो अनेक टीकाओं में दृष्टिगत हो सकती है । मल्लि ने प्रथम श्लोक में गुरुणा की व्याख्या में कहा है- कान्ता विरहेण गुरुणा दुभरेण दुस्तरेणेत्यर्थः विद्युल्लता में -कान्तविरहतो गुरूणा अलघुना दुस्तरेणेति केचित् यहां केवल दुभरेण शब्द मात्र की समानता से यह नहीं कहा जा सकता कि केचित् के द्वारा पूर्णसरस्वती ने मल्लिनात का मत उद्धृत किया है । ऐसी गौण समानताएं तो विद्युल्लता टीका में अन्य टीकाओं से भी पाई जाती हैं । उदाहरणार्थ मेघदूत के द्वारहवें श्लोक में पूर्ण ने स्निग्धवेणी पाठ को स्पष्ट करते हुए एक अन्य पाठ सर्पवेणी देकर उसकी व्याख्या में कहा है । सर्पवेणीति

---

१. Meghduta ed. R.V. Krishnamachariar - (intro) p.11.
२. Meghduta - ed. R.V. Krishnamachariar - (intro), p.2.
३. Ibid, p.11

कृष्णभुजंगभोगमण्डलमिति केचित्। ये सर्पवेणी पाठ उपलब्ध टीकाओं में केवल दक्षि की टीका में दृष्टिगत होता है। दक्षि. ने लिखा है–सर्पवेणी सवर्णे। वर्णाकेशबन्धः सर्पस्य वेणी सर्पस्य वेष्टनम् पर सर्पवेणी मात्र के आधार पर पूर्ण को दक्षि का समालोचक नहीं कहा सकता क्योकि इस व्याख्या में दोनों टीकाएं भिन्न-भिन्न रूप में दृष्टिगत होती हैं।

इसके अतिरिक्त कुन्हन राजा इस सन्दर्भ में एक ठोस प्रमाण यह देते हैं कि दक्षि व मल्लिनाथ दोनों ने चौदहवें श्लोक की व्याख्या में निचुल को कालिदास का मित्र व दिङ्नाग को कालिदास का प्रतिद्वन्दी कहा है जबकि पूर्ण ने इस सन्दर्भ में कोई मत नहीं दिया जो इस बात का द्योतक है कि ये दोनों टीकाएं पूर्ण. के समक्ष नहीं थी। नहीं तो वे इस विषय में कुछ प्रकाश अवश्य डालते। मल्लिनाथ ने द्वितीय श्लोक में प्रथम एवं प्रशम पाठ की पर्याप्त आलोचना की है। जबकि पूर्ण इस विषय में मौन हैं। अतः यह सिद्ध करता है कि कश्चित् के द्वारा उन्होने मल्लिनाथ को उद्धृत नहीं किया है। अपितु उनके समक्ष कोई अन्य टीका रही होगी जिसको उन्होने केचित् के द्वारा व्यक्त किया है।[१]

कुन्हन राजा ने पूर्ण को चौदहवीं शती का सिद्ध किया है पर समय की पुष्टता के लिए प्रमाण नहीं दिया है। सुशील कुमार डे ने पूर्ण का समय चौदहवीं शती का उत्तरार्द्ध अथवा पन्द्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध कहा है।[२]

रचनाएं–१९४३ ई. में पूना से प्रकाशित रजुलध्वी मालती व माधव कथा के रचयिता माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सिरीज से १९३७ में प्रकाशित हंस सन्देश के लेखक भी पूर्ण सरस्वती हैं इन्होने मालती माधव पर अपनी व्याख्या दी है जो रसमंजरी नाम से है। अनर्धराघव पर टिप्पणी रूप में इनकी एक व्याख्या है। कृष्णामाचार्य ने भूमिका में दिया है कि कि केरलदेशीय विद्वानों के मतानुसार ये कालिदास कृत सभी काव्यो के व्याख्याता रहे हैं पर अधिकांशतः वे टीकाएं अब अनुपलब्ध हैं।

टीका वैशिष्टय–इनकी टीका का विद्वत्समाज में विशेष स्थान है। उसका प्रमुख कारण है कि जहां व्याख्या में कोई विवाद करता है, वहां तर्कसंगत प्रमाणों द्वारा टीकाकार ने उस सन्देह को दूर कर दिया है। कोष, व्याकरण व अन्य-ग्रन्थो के उद्धरणों को भी अपनी टीका में निपुणतया दर्शाया है। भाषा शैली अत्यन्त प्रौढ़ है। दीर्घसमासों का समावेश है जिससे कहीं-कहीं भावाभिव्यक्ति में जटिलता आ गई है। अलंकार वैशिष्य इनकी टीका की प्रमुखता है। पूर्ण. ने स्वयं इस टीका के विषय में उद्घोषणा की है –

मेघस्य विप्रप्रसवर्पुकस्य व्याख्या ममेयं विशदप्रकाशा।
विद्योतयन्ती स्फुटमर्थजातं विद्युल्लतेवास्तु विभूषणाय।[३]

१. Poona Orientalist - Vol. 9, p. 142-148.
२. OH. vol. III, part I, 1955, p.17
३. Meghduta Ed. R.V. Krishnamachariar, p.2

कृष्णमाचार्य ने इस टीका की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए कहा है-सन्ति साम्प्रतमपि सरसहृदयः कतिपये भावुका इति, ते च तारतम्यपर्यालोचनेन सारासारपरिशीलनेन च ज्ञास्यन्ति वस्तुतत्वमिति च विश्वसन्तो वयं निर्भयं निःसंकोचं च वदामः, यदस्ति मेघसन्देशस्य पूर्णसरस्वतीनाम्ना महामतिना विरचिता विद्युल्लताख्या कापि व्याख्या, सा च विश्वातिशायिनीति ।[१]

परिमाण- दक्षि. के समान उन्होने भी ११० श्लोकों पर अपनी व्याख्या दी है ।

विभाजन-मेघदूत को मेघसन्देश नाम से विभूपित करते हुए पूर्ण ने प्रथमश्वास व द्वितीयाश्वास रूप में विभाजित किया है ।

सारोद्धारिणी टीका

परिचय-इस टीका के कर्त्ता का कोई परिचय प्राप्त नहीं होता सम्भवतः ये एक जैन टीकाकार थे । इस टीका की एक हस्तलिखित प्रति पूना भण्डारकर इंस्टीटयूट में प्राप्त है । प्रति भी अत्यन्त खराब हालत में है । इस प्रति का समय १५६१ ई. है ।[२] इस टीकाकार की उत्तरमेघ पर की गई व्याख्या संस्कृत साहित्य परिषद् के १५-१६ (१९३२-३४) भाग में प्रकाशित है ।

स्थितिकाल-पी.के. गोडे ने सारोद्धारिणी टीका का समय १५६१ ई. कहा है ।[३] काशीनाथ ने मल्लिनाथ की संजीवनी टीका से सारोद्धारिणी टीकाकार को परिचित बताया है ।[४] इस आधार पर इनका समय मल्लिनाथ से परवर्ती होना चाहिए । अतः इन्हे १४२०-१५६१ के मध्य रखा जा सकता है ।[५]

टीका वैशिष्टय-अत्यन्त सरल वं प्रश्नोत्तर शैली में लिखी गई यह टीका उन सभी विशिष्टताओं से युक्त है जो गुण एक टीका में पाये जाने चाहिए। अधिकांश स्थलों, पर रुद्रट, भामह व दण्डी की परिभाषाओं को देते हुए अलंकारों को स्पष्ट किया है। कुछ स्थलों पर पाठ-भेद दर्शाते हुए भिन्न-भिन्न अर्थ भी दिये हैं। इतना निश्चित है कि सारोद्धारिणी टीकाकार के सम्मुख स्थिरदेव की टीका अवश्य रही होगी। कई स्थलों पर व्याख्या में इतनी समता है कि यह अवगत करना दुष्कर हो जाता है कि कौन-सी किसकी व्याख्या है, दोनों ने टीकाओं में एक जैसे उद्धरणों को दिया है। टीका में अनेक स्थलों पर व्याकरणिक दृष्टि से शव्दो को स्पष्ट किया है। भावाभिव्यक्ति के लिए अन्य ग्रन्थो को उद्धरण दिये हैं . संक्षेपतः यह टीका विस्तृत व्याख्या पद्धति को लिये हुए भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्णतया समृद्ध है ।

---

१. Meghduta Ed. R.V. Krishnamachariar, (intro) p.9
२. OH. vol. III, part 1, 1955, p.26.
३. ABORI. vol. XIV, p.130-131.
४. ed. K.B. Pathak (intro) p.xxi
५. OH. vol. III, part 1, 1955, p.26

परिमाण-टीका का पूर्वार्द्ध प्राप्त न होने से श्लोक संख्या के विषय में निश्चित रूपेण प्रकाश नहीं डाला जा सकता। काशीनाथ बाबू पाठक ने इस टीका में १२५ श्लोकों का उल्लेख किया है।[१]

सनातन गोस्वामी

परिचय-इनकी मेघदूत व्याख्या तात्पर्यदीपिका नाम से है। यह टीका तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर कलकत्ता से १९५३ में जतीन्द्र बिमल चौधरी द्वारा प्रकाशित की गई। इनके पिता कुमार नाम से एवं भाई रूपगोस्वामी नाम से जाने जाते हैं। निवास स्थल राम केलि के समीप है। वहीं इन्हे १५१३ ई. में सर्वप्रथम चैतन्य प्रभु के दर्शन प्राप्त हुए।[२] तब से गोस्वामी ने चैतन्य प्रभु की शिष्यतां धारण की, सनातन नाम उन्हे चैतन्य प्रभु के द्वारा दिया गया तथा उसके तत्काल बाद ही संन्यास धारण कर सनातन ने सांसारिक विषयों का परित्याग किया। तब कर्मठता को ही अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर वृन्दावन में बंगाल वैष्णव सम्प्रदाय को साहित्यिक कार्यों में सक्रियता से भाग लेकर बंगाल वैष्णव धर्म के संस्थापक के रूप में प्रसिद्धि को प्राप्त किया। वैष्णवधर्म के प्रति इतने अनुरागी होने पर भी इनकी मेघदूत टीका में न तो वैष्णव धर्म का कोई उल्लेख मिलता है और न ही चैतन्य प्रभु के प्रति इनकी श्रद्धा परिलक्षित होती है अतः ऐसा अनुमान है कि चैतन्य प्रभु का सम्पर्क प्राप्त करने से पूर्व ही जीवन के प्रारम्भिक काल में इस टीका की रचना कर ली होगी। जीवन के प्रारम्भिक काल में ये कृष्ण के आराधक प्रतीत होते हैं।[३] मेघदूत टीका के प्रारम्भ में इन्होने कृष्ण का उल्लेख किया है।[४]

स्थितिकाल- मेघदूत में चैतन्य प्रभु का उल्लेख न होने से ऐसा बोध होता है कि तात्पर्यदीपिका की रचना पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में हुई होगी। अतः इसका समय पन्द्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध से सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध तक माना जा सकता है।[५]

टीका वैशिष्ट्य-नाम से ही स्पष्ट है कि यह टीका मेघदूत के वास्तविक तात्पर्य को अभिव्यक्त करती है। संक्षिप्तता को लिए हुए सारगर्भित है। यद्यपि टीकाकार ने अपने से पूर्ववर्ती अनेक टीकाओं का अध्ययन कर टीका को लिखा है।[६] पर इन टीकाओं एवं टीकाकारों के नाम का उल्लेख नहीं किया है।

---

१. ed. K.B. Pathak (intro), p.xxvi
२. OH. Vol. III, Part 1, 1955, p.19-20.
३. ed. J.B. Chaudhry, 1951 (intro), p.28.
४. Journal of the Pracyavani, Vol. x, Pt. II, Jul.-Dec. 1953, p.1.
५. OH. Vol. III, Part 1, 1955, p.10-20.
६. सनातन टीका – पृ. १

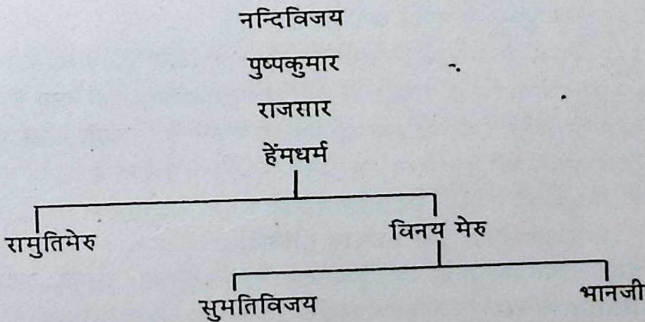
शव्दार्थाभिव्यक्ति के लिये अन्य टीकाकारों के समान अनेक कोषों, ग्रन्थो व व्याकरणिक सूत्रों के उद्धरण दिये हैं। टीका का उद्देश्य भाव प्रकाशन मात्र है इस बात को ध्यान में रखते हुए कवि ने उत्तरमेघ के अधिकांश श्लोकों को अत्यन्त सरल कह विना व्याख्या के ही रहने दिया है।[१] कई श्लोकों की व्याख्या कुछ शव्दो अथवा एकाध वाक्यो में ही समाप्त कर दी है। ऐसा प्रतीत होता है। कि सनातन गोस्वामी का तपस्वी जीवन के प्रति अत्यधिक आकर्षण था परिणामतः जहां श्रृंगार-रस का वर्णन आया वहां अपनी अरुचि व्यक्त करते हुए उन्हे विना व्याख्या के ही रहने दिया।

परिमाण-इनकी मेघदूत के उत्तरार्द्ध पर टीका प्रकाशित न होने के कारण श्लोक संख्या के विषय में विश्वस्त रूप से नहीं कहा जा सकता है। सुशील कुमार डे के मत में इन्होने ११५ श्लोकों पर व्याख्या दी है।[२]

सुमतिविजय

परिचय-इसकी मेघदूत पर लिखी गई टीका सुगमान्वया वृत्ति नाम से प्रसिद्ध है। यह टीका वाल्टर हार्डिंग मोरेर (Walter Harding Mourer) द्वारा १९६५ में पूना से प्रकाशित की गई। टीका के अन्त में सुमति. ने स्वयं को विनयमेरु का शिष्य बताया है।[३] यह खरतरगच्छीय हैं।

स्थितिकाल-यद्यपि अन्य टीकाकारों के समान इन्होने भी अपने स्थान व काल का निर्देश नहीं किया है पर रघुवंश पर की गई अपनी टीका में गुरु परम्परा का उल्लेख इस क्रम से किया है-



१. ed. J.B. Chaudhry (intro), p.28, (Verses 66, 69, 73, 75, 88, 90, 96, 97, 100, 103, 105, 107, 112, 114 without Explanation)
२. OH. Vol. III, Part I, 1955, p.20.
३. सुगमान्वयावृत्ति-पृ. २०९

इस परम्परा में से पूर्वोक्त चार के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है किन्तु विक्रम सम्वत् १६६८ में सुमति मेरु ने रत्नकेतुचौपाई नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इसके अतिरिक्त सुमतिमेरु व विनयमेरु ने देवराज वाकराज प्रबन्ध की रचना विक्रम सम्वत् १६८४ में की थी। विनयमेरु की अन्य कृतियां भी उपलब्ध होती हैं। जो विक्रमसम्वत् १६६७-१६६८ (१६१०-१६४१ई.) के मध्य लिखी गई। सुमतिविजय के समकालीन भानजी ने दो कृतियों की रचना की-(१) कवि विनोद कृति लाहौर में विक्रम सम्वत् १७४५ में लिखी है (२) कवि प्रमोद कृति सम्वत् १७४६ में। उनके समय को देखते हुए इनका समय १७ वीं शती का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। इनकी रघुवंश टीका का समय विक्रम सम्वत् १६९०-१६९९ के मध्य का माना जाता है। यह भी इन्हे सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में ही सिद्ध करता है। दूसरे शव्दो में इन्हे मुगल सम्राट जहांगीर का समकालीन कहा जा सकता है।[१] पी.के. गौडे ने इनका समय सत्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध कहा है।[२]

रचनाएं-इनकी मेघदूत व रघुवंश पर लिखी गई टीका सुगमान्वया वृत्ति नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि कुछ विचारकों को सन्देह है कि दोनों टीकाओं का रचयिता एक ही व्यक्ति है या नहीं। पर टीकाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही टीकाओं की रचना एक ही व्यक्ति द्वारा की गई है-इस विषय में कुछ प्रमाण हैं-

(१) दोनों टीकाओं का लेखक अपने को विनयमेरु का शिष्य घोषित करता है।

(२) दोनों टीकाओं का नाम सुगमान्वया वृत्ति है।

(३) लेखनशैली में पर्याप्त समानता है।

(४) दोनों टीकाएं छात्रों के सुगमार्थ बोधन के लिये लिखी गई हैं। रघुवंश में जहां बालाववोधार्थम् है, मेघदूत में वहां छात्रसुबोधार्थम् कहा गया है।

अतः निःसन्देह दोनों का रचयिता एक ही व्यक्ति है।[३] कवि ने टीकाओं की रचना विक्रमपुर में की है। जैसा कि टीका में अन्त में लिखा है-

विक्रमाख्ये पुरे रम्येऽभीष्टदेवप्रसादतः।
मेघदूताभिधानस्य पूर्णा काव्यस्य सौख्यदा ॥[४]

ऐसा माना जाता है कि विक्रमपुर उज्जयिनी का प्रसिद्ध शहर है। कथासरित्सागर में इसका अनेकशः उल्लेख मिलता है। कुछ विचारकों के मत में राजस्थान में बीकानेर है, उसे ही संस्कृत में विक्रमपुर कहा गया है। मानजी ने अपनी कविविनोद कृति में बीकानेर का उल्लेख किया है। सम्भव है भानजी के समकालीन सुमतिविजय ने भी अपनी टीकाओं की रचना उसी स्थान पर की हो।

---

१. सुगमान्वयावृत्ति- (भूमिका भाग), पृ. १-२
२. ABORI - Vol. xiii, Part III, IV, 1931-32, p.341-343.
३. सुगमान्वयावृत्ति- पृ. २०९
४. वही - पृ. ३०१

पन्द्रहवीं श. में राठौर राजपूत बीका ने ही बीकानेर की स्थापना की, हो सकता है बीकानेर का वास्तविक अर्थ व्यक्तियों द्वारा भुला दिया गया हो और यही बाद में विक्रमपुर के नाम से प्रसिद्ध हो गया हो।[१]

टीका वैशिष्टय-यह टीका अत्यन्त सरल व स्पष्ट हैं। यद्यपि कोष व अन्य ग्रन्थो के उद्धरणों की बहुलता दृष्टिगत नहीं होती किन्तु व्याकरण व अलंकार सम्बन्धी ज्ञान का पूर्ण परिचय दिया है। टीका में प्रश्नोत्तर शैली को अपनाया गया है। शब्दार्थ को स्पष्ट करते हुए कई स्थलों पर पौराणिक कथाओं का उल्लेख किया है। कई स्थलों पर पाठ-भेद दृष्टिगत होता है। टीका का प्रमुख लक्ष्य अर्थाभिव्यक्ति मात्र प्रतीत होता है।

परिमाण- इन्होने कुल १२६ श्लोकों पर व्याख्या दी है। इस प्रकार सुमति ने प्रक्षिप्त श्लोकों को भी मूल रूप में देते हुए व्याख्या से विभूपित किया है। पर आश्चर्य है कि इत्याख्याते[२] श्लोक को इन्होने अपनी टीका में नहीं दिया है जबकि अन्य सभी टीकाकारों ने इस श्लोक को मूल रूप में ग्रहण किया है। कई टीकाकारों ने तो इसी आधार पर मेघदूत का स्रोत भी रामायण कहा है।

भरतमल्लिक

परिचय-भरतमल्लिक अथवा भरतसेन नाम से कहे जाने वाले टीकाकार की टीका सुवोधा नाम से विख्यात है। यह टीका चार हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा १९५१ ई. में कलकत्ता से प्रकाशित की गई। संस्करण की प्रमुक विशेषता यह है कि इसमें न केवल भरत का ही विस्तृत परिचय दिया गया है। अपितु भूमिका भाग में उन बंग टीकाकारों का भी परिचय मिल जाता है। जिन्होने मेघदूत पर अपनी व्याख्या दी है।[३] अपनी अधिकांश कृतियों में भरत ने वंश-परिचय देते हुए स्वयं को हरिहर-खान वंश से सम्बन्धित वैद्य गौरांग मल्लिक का पुत्र कहा है।[४] विशेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि इनके पिता गौरांग मल्लिक कोई वैद्य रहे होंगे।

स्थितिकाल-भरत को सत्रहवीं शती के पूर्वार्द्ध में सिद्ध करते हुए जतीन्द्र विमल ने दो प्रमाण उद्धृत किये हैं-

(क) भरत की एक कृति चन्द्रप्रभा १८९२ ई. में कलकत्ता से प्रकाशित हुई जिसके अन्त में लिखा है-भरतमल्लिकस्य स्वहस्तलिखितपुस्तकसमाप्ति शकाव्दाः १५९७ जिससे यह सिद्ध होता है कि भरत ने अपनी इस कृति को शक् १५९७ (१६७५-७६ ई.) में लिखा है। जो सिद्ध करता है कि भरत १७ वीं. शती मे रहे होंगे।

---

१. सुगमान्वयावृत्ति - भूमिका भाग, पृ. ४-५
२. मेघ. ९७
३. ed. J.B. Chaudhry 1951 (intro) p.28-34.
४. वही - भूमिका भाग, पृ. ६-१०

(ख) भरत द्वारा अमरकोष पर लिखी गई मुग्धबोधिनी टीका की एक हस्त लिखित प्रति बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी में उपलव्ध है जिसका समय १६२२ (१७०० ई.) है । यह तिथि भी भरत को सत्रहवीं शती का सिद्ध करती है ।[१]

सुशीलकुमार डे ने इस मत का खण्डन करते हुए कहा है कि चन्द्रप्रभा भरत की कृति है या नहीं, यह संशयग्रस्त है । अतः इस आधार पर उन्हे सत्रहवीं शती का नहीं कहा जा सकता है । उन्होने भरत का समय अठारहवीं शती का मध्य कहा है ।[२] आफैक्ट ने भी भरत का समय अठारहवीं शती का उत्तरार्द्ध कहा है पर इस विषय में कोई प्रमाण नहीं दिया ।[३] हरप्रसाद शास्त्री ने हस्तलिखित प्रतिलिपियों के कैटलोग में एक स्थल पर इनका समय सत्रहवीं शती के मध्य कहा है[४] वहीं दूसरे स्थल पर इन्हे ठारहवीं शती के मध्य कहा गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि भरत के काल के विषय में वे स्वयं संशयग्रस्त हैं ।[५]

रचनाएं-आफैक्ट ने भरत की १७ कृतियों का उल्लेख किया है । ये कृतियां उपसर्गवृत्ति, एकवर्णसंग्रह, कारकोल्लास, किरातार्जुनीयटीका, कुमारसम्भव टीका, घटकर्पर टीका, द्रुत -बोधव्याकरण, द्रुतबोध व्याकरण पर लिखी गई द्रुतवोधिनी टीका, द्विरुपध्वनि संग्रह, नलोदय टीका, नैषधीय टीका, मुग्धबोधिनी (अमरकोष टीका) मुग्धवोधिनी (भट्टिकाव्य टीका) मेघदूत टीका, वैद्यकुलतत्व, शिशुपालवध टीका एवं सुखलेखन-इन नामों से कही गई है ।[६]

इन कृतियों के अतिरिक्त जतीन्द्र बिमल चौधरी ने भरत की कुछ अन्य कृतियों का भी उल्लेख किया है । वे कृतियां है-कुमार भार्गवीय टीका, गणपाठ एवं रघुवंश टीका (सुवोधा)[७]

टीका वैशिष्टय- विस्तृत व्याख्या पद्धति से युक्त यह टीका अनेक विशेषताओं को लिये हुए है । काव्य काव्य के लिए होता है, सम्भवतः इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए टीकाकार ने अपनी व्याख्या दी है । यही कारण है किं टीका में व्याकरणिक दृष्टिकोण पर अधिक बल न देकर कोष व प्रामणिक ग्रन्थो के उद्धरण द्वारा शव्दार्थाभिव्यक्ति की है । भरत ने व्याख्या में ज्योतिषि सम्बन्धी ज्ञान का भी सुन्दर परिचय दिया है । अलंकारों की छटा सर्वत्र व्याप्त है । पाठभेदों को भी भरत ने पूर्णतया दर्शाया है । सुवोधा नाम से ही इनकी व्याख्या शैली का द्योतन हो जाता है । संक्षेप में कहा जाता है कि बंग टीकाकारों में इनकी कृतियों

१. ed. J.B. Chaudhry, 1951 (intro), p.4
२. OH. Vol. III, Part 1, 1955, p.21.
३. Catalogus Catlogorum, T. Aufrecht, Vol. I, p.396.
४. RASB - Catalogue of Sanskrit MSS Vol. VI, 1931, p.ixxxii.
५. Ibid - p.307.
६. Catalogus Catalogorum - T. Aufrecht, Vol. I, p.396.
७. ed. J.B. Chaudhry, 1951 (intro), p. 6-10.

को जो अमरता प्राप्त हुई है वह अन्य किसी को नहीं । मेघदूत पर की गई इनकी व्याख्या भावाभिव्यक्ति का उत्कृष्ट साधन है ।

परिमाण-इन्होने ११४ श्लोकों को अपनी व्याख्या से अलंकृत किया है ।

विभाजन-टीका को मल्लिनाथ के समान पूर्वमेघ एवं उत्तर मेघ रूप में विभाजित किया है ।

कृष्णपति वहोरण

परिचय-इनकी व्याख्या मेघदूत टीका नाम से है । इस टीका व टीकाकार का आफ्रेक्ट आदि के कैटलाग में कहीं वर्णन नहीं मिलता । पर गोपिकामोहन भट्टाचार्य ने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की लायब्रेरी में प्राप्त दो हस्तलिखि प्रतियों के आधार पर इस टीका को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से १९७४ में प्रकाशित किया । इस टीका का आलोचनात्मक अध्ययन १९७९ में डा. सत्यपाल नारंग द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।[१]

टीकाकार ने टीका के प्रारम्भ में अन्त में अपने वंश परिचय का भी संक्षेप में उल्लेख किया है । यह मिथिला के श्रोत्रीय ब्राह्मण परिवार से हैं । इनका जन्म खौआल वंश में हुआ । कृष्ण के दादा भूदेवत वर्द्धमान पिता बनात्री व माता चम्पावती नाम से हैं ।[२]

स्थितिकाल- गोपिकामोहन भट्टाचार्य ने इस टीका के अन्त में उल्लिखित चन्द्रवेदशरैर्बद्धः (वर्षे) गौडभूपतिसंमते (पृ. ५५) के आधार पर इनका समय १७२० ई. माना है ।

टीका वैशिष्टय-इनकी व्याख्या संक्षिप्त होते हुए भी अनेक विशेषताओं को लिए हुए है । शब्दार्थाभिव्यक्ति के लिये अनेक कोषों एवं ग्रन्थो को उद्धृत किया है । शव्द-व्युत्पत्ति के माध्यम से व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान का सुन्दर परिचय दिया है । अपने से पूर्ववर्ती टीकाओं का भी कवि ने सूक्ष्म अध्ययन कर उनके मतों को यत्र-तत्र उद्धृत किया है । कई स्थलों पर एक ही शव्द के अनेक अर्थ देते हुए कवि ने अपने गहन ज्ञान को तो अभिव्यक्त कर दिया है । पर ऐसे स्थलों पर काव्य का रस ग्राह्य नहीं हो पाता । उदाहरणार्थ श्लोक सं. ७ में ब्राह्योद्यान की व्याख्या से कहा है-यद्वा, वाह्यं वहनीयम् उद्यानम् उर्द्धयानं वृषस्तत्र स्थितो यो हर इत्यादि । यद्वा, बाह्ये बहिर्यत् उद्यानं कैलासशिखरं उत् ऊर्द्ध यात्यनेन तदुद्यानं, करणे ल्युट् । यद्वा, हे वाह्य हे वहनीय अर्थात् पवनेन हे उद्यान उर्द्ध यानं गमनं यस्येत्यामन्त्रणपदद्वयं मेघस्यैव (पृ.७-८) । इसी प्रकार श्लोक सं. ३ में पुरः राजराजस्य, केतक आदि शब्दो के, इकतीसवें श्लोक में उदयन के व सैतीसवें श्लोक में शान्तोद्वेग के अनेक

१. Meghduta Studies (on the basis of the commentory of Krisnapati) 1979.

२. मेघदूत टीका - गोपिका मोहन भट्टाचार्य, पृ. १, ५५

अर्थ दिये हैं। जो कवि की बुद्धिमता के तो द्योतक कहे जा सकते हैं। पर प्रसंग को दृष्टिगत कर, वे अर्थ वहां उचित प्रतीत नहीं होते। कवि ने यत्र-तत्र अलंकारों का उल्लेख किया है काव्यशास्त्रीय नियमों को विशेष रूप से दृष्टिपथ में रखा है।

परिमाण- कुल ११२ श्लोकों पर ये अपनी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। ये नेत्रा नीताः (श्लोक सं. ९८) को मूल श्लोक के रूप में नहीं लेते जबकि अन्य सभी टीकाकारों ने उसे मूल रूप में ग्रहण कर अपनी व्याख्या से अलंकृत किया है।

चरणतीर्थ महाराज

परिचय-मेघदूत पर लिखी गई संस्कृत टीकाओं में नवीनतम उपलब्ध एवं प्रकाशित टीका चरणतीर्थ महाराज कृत कात्यायनी है। यह टीका सन् १९७९ में काशी संस्कृत सिरीज के अन्तर्ग चौखम्बा संस्कृतसंस्थान वाराणसी से प्रकाशित हुई।

टीकाकार ने भूमिका में यह स्पष्ट किया है कि उन्होने यह टीका भुवनेश्वरी ग्रन्थ भण्डार में उपलब्ध नौ प्रतिलिपियों के अधार पर चौदह दिन में लिखी। वे गुजरात निवासी प्रतीत होते है।

स्थितिकाल-इनका समय वीसवीं शती का पूर्वाद्ध है। उन्होने विक्रम् सम्वत् २००९ (१९५२ ई.) में इस टीका की रचना की। संस्कृत काव्यों के पठन-पाठन का उनका पैंतालीस वर्षों का अनुभव है।[१] अतः निर्विवाद उनका समय बीसवीं शती का प्रारम्भिक भाग कहा जा सकता है।

टीका वैशिष्टय-मेघदूत पर अव तक लिखी गई टीकाओं की अपेक्षा इस टीका की रचना व व्याख्या शैली पर्याप्त भिन्न एवं मौलिक है। इसका प्रणयन टीकाकार ने अपनी विद्वत्ता प्रदर्शन के लिये नहीं किया, अपितु मेघदूत जैसे सरस काव्य को पढ़ने के इच्छुक किन्तु संस्कृत भाषा के विशद ज्ञान से रहित काव्य रसिकों व विद्यार्थियों की दृष्टि से किया है। इसमें अत्यन्त सरस व्याख्या शैली को अपनाया गया है। कुछ स्थलों पर पाठ-भेद भी दर्शाया गया है। शब्दार्थ स्पष्टीकरण के लिये कई स्थलों पर लोकभाषा में प्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरणस्वरूप श्लोक सं. ८३ में सोपानमार्ग का अर्थ पगचियां श्लोक सं. ९८ में एकवेणी का अर्थ चोटलो दिया है।

परिमाण-लेखक ने कुल १२७ श्लोकों को मूल रूप में माना है। पर टीका के अन्त में तीन अन्य श्लोकों को प्रक्षिप्त कहते हुए भी अपनी व्याख्या से अलंकृत किया है।

विभाजन-टीका का पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध रूप विभाजन नहीं किया गया पर सम्पूर्ण व्याख्या को पूर्वमेघ नाम से अभिहित किया है।

---

१. मेघदूतम् - चरणतीर्थ महाराज, भूमिका, पृ. ३१-३३

इस प्रकार असंख्य टीकाकारों के होते हुए भी यहां केवल उन्ही का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिनकी टीकाओं का विस्तृत तुलनात्मक विवेचन इस शोध-प्रवन्ध में किया गया है है। इसके अतिरिक्त अन्य टीकाकारों का जो थोड़ा बहुत परिचय मिलता है, उसे प्रथम अध्याय में दी गई तालिका मे स्पष्ट कर दिया गया है।

अर्थभेद की दृष्टि से टीकाओं का परिशीलन

हृदयगत भावों को अभिव्यक्त करने के लिए शब्दचयन की विलक्षण प्रतिभा कालिदास में दृष्टिगत होती है । सम्भवतः एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गेलोके च कामधुक् भवति स्रुति वचन को कालिदास ने अपने काव्यो में पूर्णतया आत्मसात् कर लिया था । अन्य काव्यो के समान मेघदूत में भी कवि का शव्दार्थचयन अपूर्व गरिमा लिए हुए है । टीकाओं के माध्यम से टीकाकारों ने उन शव्दो की अनेक प्रकार से व्याख्या करते हुए यह पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि कवि द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शव्द अर्थ की अद्भुत गहनता, सौष्ठवता व सुचारुता को लिए हुए है ।

यहां श्लोक संख्या क्रमानुसार कतिपय शव्द के अर्थों का टीकाकारों की दृष्टि से पर्यवेक्षण प्रस्तुत है-

पूर्वमेघ

कश्चित् (१)- इस शव्द के अर्थ के विषय में टीकाकारों में अत्यन्त वैमत्य है-

(क) स्थिर. (पृ. ३) के अनुसार कश्चित् के द्वारा कवि किसी नाम विशेष को न कहकर सामान्य निर्देश कर रहा है । पूर्ण. (पृ. ३) ने भी इस शव्द के प्रयोग का एक अभिप्राय यही कहा है ।

(ख) कुछ टीकाकारों ने इस शव्द का दार्शनिक दृष्टि से अर्थ किया है, पूर्ण (पृ.२) ने इसे मंगलकारी मानते हुए परमब्रह्मवाची 'क' एवं जीवप्रतिपादक 'चित्' के द्वारा जीवेश्वर की एकता का प्रतिपादन किया है । सुमनोरमणी टीका में भी इसी मत को प्रतिपादित किया गया है । [१] सना. (पृ.२) ने क को प्रजापति का वाचक कहा है । अतः क का उच्चारण मंगलकारी तो है ही, इससे राम शव्द का भी उत्कीर्तन होता है । ब्रह्मप्रकाशिका नामक मेघदूत टीका में कः सुखस्वरूप एवं चित् ज्ञानस्वरूप का वाचक कहा गया है । [२]

(ग) हरगोविन्द वाचस्पति [३] एवं सना. (पृ.२) के मत में खण्डकाव्य होने के कारण **कश्चित्** से मेघदूत का प्रारम्भ हुआ है-

१. Poona orientalist, Vol. 9.
२. The Vikram (ka.vi), 1961, p. 62.
३. ed. J.B. Chaudhry (intro), p.25.

खण्डकाव्य मुखं कुर्यात् कश्चिदित्यादिभिः पदैः ।
सर्गबन्धे त्ववश्यन्तु नामकार्यं सुशोभनम् ।।[१]

(घ) हरगोविन्द वाचस्पति ने एक अन्य सम्भावना भी व्यक्त की है कि वह यक्ष पहले ही दुःखी है, उनके नाम का कीर्तन और अधिक दुःख का कारण हो जाता, सम्भवतः इसीलिए उसका नाम न देकर कश्चित् कहा गया है ।[२]

(ङ) रामनाथ तर्कालंकार[३] एवं भरत (पृ.२) ने अपरे एवं केचित् का प्रयोग करते हुए कहा है कि सम्भवतः अस्ति कश्चिद् वाग् विशेषः के आधार पर कवि ने कश्चित् से मेघदूत का प्रारम्भ किया हो । ऐसी कथा पाई जाती है कि पत्नी द्वारा उच्चारित अस्ति कश्चिद् वाग् विशेषः से कवि ने अस्ति से कुमारसम्भव, कश्चिद् से मेघदूत एवं वाग् से रघुवंश का प्रारम्भ किया ।

(च) सना. (पृ.२), हरगोविन्द,[४] भरत. (पृ.२) एवं कृष्ण (पृ.२) के मत में शापग्रस्त होने के कारण नायक के नाम का निर्देश नहीं हुआ-

न नाम ग्रहणं कुर्यात् कृपणस्यगुरोस्तथा ।
अभिशप्तस्य पत्न्याश्च मातापित्रोर्विशेषतः ।। (सना.-पृ. २)

(छ) सुमति. (पृ.९४) व भरत (पृ.२) के अनुसार स्वामी-द्रोही होने के कारण नाम निर्देश नहीं किया गया-

भर्तुराज्ञां न कुर्वन्ति ये च विश्वासघातकाः ।
तेषां नामापि न ग्राह्यं शास्त्रस्यादौ विशेषतः ।। (सुमति. -पृ.९४)

(ज) किसी टीकाकार ने यक्ष का नाम ही कश्चित् माना है किन्तु सना. (पृ.२) ने इसका खण्डन किया है ।

(झ) अन्य के मत में काव्य के कल्पित होने के कारण कवि ने नायक के नाम का उल्लेख नहीं किया है ।[५]

स्वाधिकारप्रमतः (१) कान्ता के प्रति अत्यन्त आसक्ति के कारण यक्ष ने अपने कार्य में प्रमाद किया था । वह कार्य क्या था, इस सम्बन्ध में टीकाकारों के दो मत हैं-

स्थिर. (पृ.३-४) व सुमति. (पृ.९४) के मत में कुबेर ने यक्ष को प्रतिदिन प्रातः समय में शिव-पूजार्थ कमलपुष्प लाने का काम सौंपा था । किसी दिन प्रेयसी के प्रेमवश सुबह उठने के अनिच्छुक यक्ष ने रात्रि में ही तोड़े गए पुष्प कुबेर को दे दिए । दैवात् कमलकोश में स्थित किसी मधुकर ने कुबेर की अंगुली को विक्षत कर दिया । अतः कुपित को कुबेर ने यक्ष को शाप दिया ।

चारि. (पृ.३) , सना. (पृ.१-२) , शाश्वत (पृ.३) एवं भरत (पृ.३) एवं कृष्ण.

---

१. ed. J.B. Chaudhry (intro), p. 25.
२. ed. J.B. Chaudhry (intro), p.25.
३. Ibid.
४. Ibid.
५. भरत टीका-पृ.२

(पृ.२) के अनुसार कुबेर ने यक्ष को मानसरोवर के स्वर्णकमलों के रक्षक-रूप में नियुक्त किया था पर प्रियासक्ति के कारण किसी रात्रि में यक्ष के घर चले जाने पर दिग्गजों ने स्वर्णकमलों को नष्ट कर दिया। अतः क्रुद्ध हो कुबेर ने शाप दिया।

वल्लभ. दक्षि. पूर्ण. मल्लि. एवं चरणतीर्थ ने कार्य के सन्दर्भ में किसी कथा का संकेत नहीं किया है। पर पाठ की दृष्टि से दक्षि., मल्लि. एवं चरणातीर्थ ने स्वाधिकारात् प्रमत्तः पाठ दिया है जो अधिक उचित प्रतीत होता है, यदि इसे समस्त पद रूप में माना जाये तो स्वाधिकार पद पर अधिक ध्यान आकर्षित नहीं होता जबकि अधिकार में प्रमाद ही कथा का मूल है।

अस्तंगमितमहिमा (१) -इसका सामान्य अर्थ अस्त हो गई महिमा प्रतीत होता है। अधिकांश टीकाकारों ने यही भाव दिया है। यक्ष एक देवयोनि है

विद्याधराऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।। अमरः (मल्लि.-पृ.२)

देवयोनि होने के कारण यक्ष को जो दूरदर्शन, स्वेच्छागमन आदि दैवी शक्तियां प्राप्त थीं, वह शापग्रस्त होने के कारण नष्ट हो चुकी हैं।

पूर्ण[१] एवं भरत ने[२] अस्त के प्रयोग की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा है कि कवि ने अस्त के द्वारा यक्ष के शाप का भी संकेत कर दिया है। जिस प्रकार सूर्य अस्त होकर पुनः उदय को प्राप्त करता है, उसी प्रकार यक्ष भी शापावसान के बाद पुनः दैवी-शक्तियों को प्राप्त कर लेगा। सम्भवतः उसी अभिप्राय से कवि ने नष्ट अथवा समाप्त आदि शब्दो का प्रयोग न कर अस्त का प्रयोग किया है।

वर्षभोग्येण (१) -इसके द्वारा कवि ने शापावधि को द्योतित किया है। अधिकांश टीकाकारों ने वर्ष भर भोगने योग्य अर्थ किया है। चारि. (पृ.३) शाश्वत (पृ.४) व कृष्ण . (पृ.२-३) के मत में कवि ने वर्षशब्द साभिप्राय दिया है। कवि यक्ष को सभी वस्तुओं में दुःखानुभव कराना चाहता है। कहा गया है -

येन संवत्सरो दृष्टः सकृत्कामश्च सेवितः।
तेन सर्वमिदं दृष्टं पुनरावर्तितं जगत् ।। (चारि.पृ.३)

भरत ने वर्ष का एक अर्थ भारतवर्ष कर भारतवर्ष में भोगने योग्य भाव लिया है। देवताओं का मनुष्यलोक में वास नरकतुल्य है। अतः भारतवर्ष रूप स्थल में भोगने के कारण शाप की अतिशय दुःसहनीयता द्योतित होती है।[३]

पूर्ण. के मत में यद्यपि कुपित दशा में शाप की अवधि का विधान अनुचित

---

१. सूर्य एवं प्रसिद्धस्य अस्तगमनस्याभिधानात् महिम्नस्तत्सादृश्यमवगभ्यते; तेन च सकलार्थप्रकाशकत्वमत्यन्ताविनाशश्च द्योत्यते निशासमयेनेव शापेनान्तर्हितस्य दिवसमुख इव शापावसाने सूर्यस्येव यथापुरमुदेष्यवत्वात्। पूर्ण.-पृ.४

२. अस्तंगतस्य सूर्यादेरिव अस्य यक्षस्य पुनरुदयः शापान्तेऽवश्यं भवतीति सूचितम्। भरत. -पृ.२

३. वर्षे भारतखण्डे भोग्येन, देवानां मनुष्यलोकवासस्य नरकवासतुल्यवत्वात् शापस्यातिशयदुःसहत्वं सूचितमित्यन्ये। - भरत -पृ.२

है पर शायद शाप सुनकर यक्ष कुबेर के चरणों में नतमस्तक हो गया हो । अतः दयावश कुबेर ने शापावधि एक वर्ष की कर दी हो । प्रिया विरह रूप होने के कारण शाप को भोग्य कहा गया है । [१]

स्निग्धच्छायातरुषु (१) –स्निग्ध से तात्पर्य है 'स्निग्धं तु मसृणे सान्द्र' शब्दार्णवः (मल्लि.–पृ.२) छायातरु के अनेक अर्थ दृष्टिगत होते हैं–

(क) 'छायातरु स्थिरच्छाय' त्रिकाण्डशेषः (भरत.–पृ.२)

(ख) मध्याह्नसंस्थितेऽप्यर्के छाया येषामवस्थिताः ।
स्तम्भिता इव तिष्ठन्ति तेच्छायातरवो मताः । रन्तिः (भरत. –पृ.२)

(ग) छायातरु प्रतिमायामर्कयोषित्यनातपे ।
उत्कोचे चाप्यनारम्भे शोभायाञ्च तमस्यपि ।। विश्वलोचनः (भरत.–पृ २)

(घ) छायातरुर्नमेरु स्यात् बलः (भरत.–पृ.२)

(ङ) छायातरु सदा पूर्णः पुष्पैः किसलयैः फलैः (भरत. पृ.२)

चारि. (पृ. २) के मत में शाद्वल एवं अनातप प्रधान वृक्षों से युक्त होने के कारण यह स्थल वियोगियों के योग्य है–यह ध्वनित होता है ।

शाश्वत (पृ.४) के अनुसार राम के प्रभाव से वहां के वृक्षों की छाया विवर्तित नहीं होती । अतः इससे वासानुकूलता प्रतिपादित की गई है । रघुवंश में भी कहा गया है –

प्रभावस्तम्भितच्छायमाश्रितः सवनस्पतिम् ।
कदाचिदङ्के सीतायाः शिश्ये किञ्चिदिव श्रमात् ।। [२]

पूर्ण के मत में वह स्थल सीता के कर–कमलों द्वारा कुम्भजलों से सीचें जाते हुए पत्र–पुष्प व फलों वाले लावण्यशाली छाया प्रधान वृक्षों से युक्त है । यद्यपि पापहारिता व मनोहरता दोनों एक स्थल पर नहीं पाई जाती, पर यहां दोनों वस्तुएं एक ही स्थल पर हैं–यह सोचकर यक्ष ने वहां निवास किया । [३]

भरत ने रुद्राक्ष वृक्ष एवं वट वृक्ष अर्थ भी दिया हैं क्योकि वटवृक्षों पर यक्षवास माना गया है । –'यक्षस्तु राजा वटवृक्षावासी' ति हारावलीत्यन्ये (भरत–पृ.२) शीतल स्थान एवं किसलय रूप शैय्या द्वारा विरहजन्य दुःसहदाह की अभिव्यक्ति की गई है–

सुशीतानि सुगन्धीनि वनानि च सरांसि च ।
सम्भोगेष्वनुकूलानि दहन्ति विरहे भृशम् ।। (भरत. पृ.२)

---

१. एतेन प्रणिपातप्रसादितेन प्रभुणा एकवर्षावधिः शापः कृत इत्यवसीयते कुपितदशायामवधिविधानानुपपतेः । शापस्य भोग्यत्वं नाम फलतः प्रियाविरहरुपात् । पूर्ण. –पृ. ५

२. रघु.– १२/21

३. सीतास्वहस्तोम्भितकुम्भाम्भः संभृतसमृद्धिकाः प्रभावस्तिमितच्छायम् इतिवत् ततस्तत्कर प्रभावादविरतकिसलकुसुमफलभरभरितविकट–विटपास्तत एव स्निग्धाः लावण्यशालिनः छायाप्रचुरास्तरवो येषु । पूर्ण. –पृ.५

कृष्ण (पृ.३) के मत में यद्यपि ऐसे रमणीय स्थल पर विरही के लिए वास करना उचित नहीं क्योकि कहा गया है-रमणीयेषु, देशेषु, कामः सञ्जायते परकवि ने विप्रलम्भ श्रृंगार के पोषणार्थ विरही यक्ष का वहां निवास दर्शाया है ।

ब्रह्मप्रकाशिका में इसका बिल्कुल भिन्न अर्थ दिया गया है- ब्रह्महत्यादि पाप का भी नाश करने के कारण जो मनुष्यो के लिए स्नेहास्पद है ऐसे कल्पद्रुम से युक्त ।[१]

कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः (२) अधिकांश टीकाकारों ने कृशता के कारण कनकवलय गिर जाने से रिक्त प्रकोष्ठ वाला अर्थ दिया है ।

दक्षि. (पृ.२-३) के मत में यहां अधिकार निषेध के कारण कनकवलय का गिरना अभिप्रेत नहीं अपितु विरह की कृशता के कारण कनकवलयभ्रंश कहा गया है । अभि. शा. में भी कवि ने ऐसा ही वर्णन किया है-

इदमशिशिरैरन्तस्तापाद्ववर्णमणीकृतम् ।
निशि निशि भुजन्यस्तापाङ्गप्रसारिभिरश्रुभिः ।
अनभिलुलितज्याघाताङ्कं मुहुर्मणिबन्धना-
त्कनकवलयं स्रस्तं स्रस्तं मया प्रतिसार्यते ।।[२]

सना. (पृ.६) के मत में कनकवलयभ्रंश के द्वारा कवि ने यक्ष का आभूषण के प्रति अनादर व्यक्त किया है । कहा गया है-

स्मरानलकृशे काये भूषा न बहु मन्यते (सना.-पृ.६)

भरत (पृ. ३-४) ने भी सनातन के ही मत का अनुकरण करते हुए कहा है कि यद्यपि वलय के द्वारा ही स्वर्णवलय अर्थ स्पष्ट हो जाता है फिर भी कनक का प्रयोग करिकलभ सदृश ही है ।

पूर्ण. (पृ.८) के मत में विरही की आभूषण एवं वेशरचना आदि के विषय में अनासक्ति होते हुए भी वाम-प्रकोष्ठ में कनकवलय धारण करना मंगलार्थक है । यह विरहियों का चिह्न प्रतीत होता है । अभि. शा. में भी कहा गया है-

प्रत्याख्यातविशेषमण्डनविधिवार्मप्रकोष्ठार्पितम् ।
विभ्रत्काञ्चनमेकमेव वलयं श्वासोपरक्ताधरः ।।[२]

कृष्ण के मत में इस विशेषण में वियोगी यक्ष की अत्यन्त कृशता को दर्शाते हुए जड़ता रूप अवस्था का बोध कराया गया है ।[३] प्रकोष्ठ का वल्लभ ने भुजा, स्थिर. ने भुजाग्र, चारि मल्लि. व भरत ने कूर्पराध, समुति ने कलाचिका अथवा

१. The Vikram (ka. vi), 1961, p. 61-63.
२. अभि. शा.-३।११
३. अनेनातिकार्श्यं सूचयता जड़तारूपा विरहिदशा सूचिता । तदुक्तं मन्मातामहकृतसदर्पकन्दर्पे अभिलाषस्तथा चिन्तानुवृत्तिगुणकीर्तनम् । उद्वेगोऽथ विलापः स्यादुन्मादो व्याधिरेव च । जड़ता मरणं चेति दशावस्था वियोगिनाम् ।। इति । जड़तामाह भरताचार्यः अकाण्डे यत्र हूंकारो दृष्टिस्तव्धा गता स्मृतिः । श्वासाः समधिकाः कार्श्यं जड़तेयं मुनेर्मताः ।। कृष्ण. -पृ.४

भुजा का मध्य भाग, कृष्णपति ने करमूल एवं चरणतीर्थ ने मणि बन्ध अर्थ दिया है। प्रकोष्ठ से तात्पर्य भुजा का वह भाग है जिसमें वलय धारण किया जाता है। यहां विरह की कृशता के कारण उसका गिरना कहा गया है।

वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयम् (२)-वप्र से तात्पर्य है-

वप्रः पितरि केदारे वप्रः प्राकाररोधसोः धरणिः (भरत.-पृ.४)
वप्रस्तातेऽस्त्रियां क्षेत्रे रये च रेणुरोधसोः अनेकार्थः (शाश्वस.-पृ.७)
वप्रः पितरि ना न स्त्री क्षेत्रे रोधसि सानुनि वैजयन्ती (पूर्ण. -पृ.९)
उत्खातकेलिः क्रीडाद्यैर्वप्रकीडा निगद्यते शब्दार्णवः (मल्लि०-पृ.३)

परिणत से तात्पर्य-

तिर्यग्दन्तप्रहारस्तु गजः परिणतो मतः अमरः (पूर्ण. -पृ.९)
दन्ताघाते द्विरदः परिणत इति कीर्त्यते सद्भिः संसारावर्तः (भरत.-पृ.४)
परिवृत्तिकृताघातः परिणतो गज उच्यते विश्वः (कृष्ण.-पृ.४)

यहां मेघ को तटाघाट रूप क्रीडार्थ तिर्यक दन्त प्रहार करने वाले गज सदृश दर्शनीय कहा गया है। चारि. (पृ.५) के मत में यद्यपि परिणत शब्द से ही तिर्यक् दन्त प्रहार वाले गज का बोध हो जाता है पुनः गज ग्रहण करिकलभ सदृश ही है।

दक्षि० के मत में मतगजदर्शन से कार्यसिद्धि होती है।[१] पूर्ण (पृ.९) के अनुसार श्यामलकान्तियुक्त गजेन्द्र से उपमा दिए जाने के कारण सलिलगर्भयुक्त मेघ का बोध होता है। अथवा वप्रक्रीडा में संलग्न गजों के वहां विद्यमान होने से उनमें यह (मेघ) अन्यतम कौन है, इस रूप में दिखाई देता हुआ, रामनाथ के अनुसार गज के उपमान से मेघ का विरहियों को मारना ध्वनित होता है।[२]

भरत. ने साहित्य रत्नाकर को उद्धृत करते हुए कहा कि परिणत के द्वारा कुम्भस्थल-दर्शन से नायिका के स्तनों का स्मरण होने के कारण यक्ष की विकलता सूचित की गई है।[३]

पुरः (३) अधिकांश टीकाकारों ने पुरः अग्र अथवा सामने अर्थ दिया है। प्रसंग को देखते हुए भी यही अर्थ रुचिकर प्रतीत होता है पर चारि. (पृ.६) ने एक अन्य अर्थ अलका भी लिया है। कृष्ण. ने भी इसकी अनेक प्रकार से व्याख्या दी है तस्य मेघस्य पुरः कथमपि कष्टसृष्टया स्थित्वा।...यद्वा, तस्य पुरोऽलकाया..यद्वा, पुर आदौ अकथं यथा स्यादेवं स्थित्वा (पृ.४-५)

---

१. अनेन विशेषणेन मत्तगजदर्शनात् कार्यसिद्धिर्भवतीति सूचितम्। अत्र महायात्रायां वराहमिहिरः- ज्वलितशिखिफलाक्षतेपु-भक्षद्विरदमृदङ्गकचाभरयुधानि। मरकतकुरुविन्दपद्मराग-स्फटिकमणिप्रमुखाश्च रत्नभेदाः स्वयमपि रचितान्ययलतो वा यदि कथितानि भवन्ति मङ्गलानि इति। -दक्षि.-पृ.३

२. गजोपमानेन मेघस्य विरहिणां मारकत्वं सूचितम् करीवमेघोऽयं मारयितुमुद्यत इति भावः। -ed. J.B. Chaudhry (intro), p. 24.

३. परिणतपदेन कुम्भस्थलदर्शनात् स्वनायिकास्तनस्मरणवैकल्यं सूचितमिति साहित्यरत्नाकर। -वही-पृ.४

यक्ष जैसे ऐसे कामातुर के लिए यह कहना कि-उसने प्रिया के ध्यान को छोड़कर अलका का ध्यान किया-हास्यास्पद ही है । अतः यहां पुरः सामने अर्थ में ही अधिक उपयुक्त है ।

अन्तर्बाष्पः (३) बाष्प अश्रु की पूर्वावस्था का नाम है । कहा गया है-

बाष्पी नामाश्रुणः पूर्वावस्थाऽसौजायते त्रिधा ।
निमित्तत्रयसम्बन्धादानन्देष्यातिर्सम्भवा ।। (भरत.-पृ.५)

स्थिर. (पृ.६) व मल्लि. (पृ.४) के मत में धीरोदात होने के कारण वह यक्ष अन्दर ही आंसुओं को रोके हुए है ।

पूर्ण. (पृ.९) एवं सना. (पृ.९) के मत में प्रयास से रोके हुए अश्रुवेग के कारण यक्ष अवरुद्ध कण्ठ है । सुमति (पृ.९७) के मत में शोक के कारण गद्‌गद् स्वरयुक्त है । कल्याण ने इसका एक भिन्न हीं अर्थ लिया है । उनके मत में आए हुए अश्रुओं का रोकना भावि प्रिया संगम का द्योतक है ।[१]

भरत. (पृ.५) ने कहा है कि यद्यपि उद्वेग के होने पर अश्रु निर्गमन ही उचित है । पर यहां उसके धैर्य को दिखाने के लिए उसे अन्तर्बाष्प कहा है । ये एक अन्य अर्थ भी देते हैं कि वह यक्ष वैसे ही विरह से सन्तप्त है और अश्रु जो उष्ण कहे गये है उनको अन्दर रोकने के कारण उनकी उष्णता से यक्ष और सन्तप्त हो गया है ।

कृष्ण के मत में उस यक्ष की धीरोदात्तता को दर्शाने के लिए कवि ने उसे अन्तर्बाष्प कहा है ।[२] बाष्प अश्रु से पूर्व की अवस्था है । नयनों के कोण से प्रवाहित जल अश्रु नाम से कहा गया है । इसीलिए अश्रुजल अथवा अश्रुपात शब्द का प्रयोग पाया जाता है पर बाष्प जल अथवा बाष्पपात का प्रयोग दृष्टिगत नहीं होता । नयनों से अश्रुरूप में प्रवाहित होने से पूर्व की स्थिति बाष्प है । यह बाष्प अन्दर ही होते हैं । पर फिर भी कवि ने यहा जो अन्तर्बाष्प कहा है वह इसी अभिप्राय का द्योतक है कि यक्ष के बाष्प विरह व्याकुलता के कारण अश्रुरूप में प्रवाहित होने के लिए सन्नद्ध हैं पर वह सामान्य व्यक्ति न होकर राजराज जैसे महानुभाव का अनुचर है । अतः प्रवाहित होने के लिए तत्पर होते हुए भी यक्ष ने धीरोदात्तता के कारण बाष्पों को अन्दर ही रोका हुआ है ।

राजराजस्य (३) -राजराज से तात्पर्य है-

मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाधिपः अमरः (पूर्ण.-पृ.९)

सभी टीकाकारों ने वैश्रवण अथवा कुबेर अर्थ ही दिया है । मल्लि. ने राज

१. शोकजलपूरितकण्ठ इत्यर्थ । अनेनागतम्बूनां स्तम्भनं भाविप्रियासङ्गमङ्गलत्वेन व्यज्यते । - ed. J.B. Chaudhary (intro), p. 22.

२. बाष्पो नामाश्रुणः पूर्वास्थेति कण्ठाभरणम् । तस्य धीरोदातस्याश्रुणो वहिरभावात् बाष्प इत्युक्तम् । तथा च अन्यत्र-अस्त्रं लोचनकोणरावकृपणं द्रव्यायते सर्वदा इत्यादि कृष्ण.-पृ.५

का यक्ष अर्थ करते हुए विश्वकोष को उद्धृत किया है-

राजा प्रभो नृपे चन्द्रे यक्षे क्षत्रियशक्रयोः (मल्लि. पृ .३)

कृष्णपति एक अन्य अर्थ मेघ देते हुए कहते हैं-रोऽग्निस्तस्य अजरां तारुण्यं प्राबल्यमिति यावत् । अजति क्षिपत्ति वर्षणेनेति राजराजो मेघः (पृ.५) यहां मेघ अर्थ किसी भी प्रकार उपयुक्त नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि कृष्ण ने अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए शव्द व्युत्पत्ति के आधार पर एक ही शव्द के अनेक अर्थ दे दिये हैं पर उस प्रसंग में कौन सा अर्थ उपयुक्त है, इसका ध्यान नहीं रखाहै।

दध्यौ (३) -स्थिर. (पृ.६) ने दध्यौ का अर्थ अचिन्तयत् करते हुए कहा है-मैं अपने अभिप्राय का निवेदन इससे करूँ, या न करूँ यह सोचा । दक्षि० ने चिरं के साथ दध्यौ को सम्बद्ध कर चिन्तयामास अर्थ दिया है उनके मत में-मोहाद् विषयशून्यतया ध्यायतेः कर्माप्रयोगः (दक्षि. -पृ.४)

चारि. ने दध्यौ के कर्म के विषय में कहा है-सकर्मकस्यापि कर्माविवक्षा अश्ववद् गच्छतीत्यत्र यथा । सकर्मकत्वादध्याहारक्लेशं मत्वा नान्यथा व्याकुर्वते अनुचरो मेघसमये कौतुकाधानहेतोः पुरोऽलकायाः निश्चलीभूय यस्य राजराजस्य दध्यौ । (पृ.६) उन्होने दध्यौ के अनेक अर्थ दिए हैं-

(क) अपनी पत्नी के विषय में ध्यानयुक्त हो गया ।

(ख) अपने अभिप्राय को उसे कहूं या न कहूं, यह सोचा ।

(ग) किसी अज्ञायमान वस्तु का ध्यान किया ।

(घ) इस दुःसह मेघ समय में कान्ता प्राण-रक्षण कैसे करूँ, यह सोचा ।

पर शाश्वत (पृ.३) के मत में यदि किसी अज्ञायमान वस्तु का ध्यान किया-यह अर्थ लेते हैं तो काव्यरस की अभिव्ययित नहीं होती । और यदि यह कहें कि इस दुःसह मेघ समय में प्रिया प्राण रक्षण कैसे करूँ, यह सोचा तो अर्थान्तरन्यास नहीं घटेगा । अतः उन्होने दध्यौ का अर्थ उत्कण्ठितवान् किया है ।

मल्लि. (पृ.४) एवं सुमति ने ध्यै चिन्तायाम् के द्वारा चिन्तायुक्त अर्थ दिया है ।

भरत के दध्यौ का निर्वेदवान् अर्थ दिया है । उनके अनुसार बाष्प सहित ध्यान से निर्वेद ही ध्वनित होता है-

बाष्पपरिप्लुतनेत्रः श्वासवशाद्भिन्नमुखवर्णाः ।
योगीव ध्यानरतो भवति । निर्वेदवान् पुरुषः इति ।
तथा च -इष्टजनविप्रयोद्दारिद्यात् व्याधितस्तथा दुःखात् ।
परवृद्धिं दृष्टवा वा निर्वेदो नाम सम्भवती ति (पृ.५)

कृष्ण (पृ. ४-५) ने भी अनेक अर्थ दिए हैं-

(क) प्रावृट् काल में प्रिया वहां और मैं यहां इसका ध्यान किया ।

(ख) वह उत्कण्ठित हो गया ।

(ग) यक्ष ने उस राजराज कुबेर का ध्यान किया जिसने उसे यह दुःख दिया ।

(घ) उसकी पुरी अलका का ध्यान किया ।

(ङ) मेघ का विचार किया ।

मैं अपना अभिप्राय मेघ को कहूं या न कहूं, चारि. का यह अर्थ मान्य नहीं । कवि ने 'कार्माता हि प्रकृतिकृष्णाश्चेतनाचेतनेषु' के द्वारा ही यह स्पष्ट कर दिया है कि यक्ष जैसे कामी के लिये यह सोचने का अवकाश ही नहीं है के मेघ सन्देश ले जा सकता है या नहीं, अथवा उसे अपना अभिप्राय कहूं या न कहूँ । मेध को देखकर अलका एवं कुवेर का ध्यान भी प्रिया के ध्यान के समक्ष बिल्कुल नगण्य ही प्रतीत होता है ।

वस्तुतः यहां दक्षि. का मत ही मान्य कहा जा सकता है । कवि का अभिप्राय यहाँ यह बताना इष्ट नहीं कि मेघ ने किसका ध्यान किया अपितु मेघ को देखकर विरह व्याकुलता के कारण यक्ष की विषयशून्यता अथवा जड़ता प्रदर्शन ही अभिप्रेत है । इसीलिए कवि ने दध्यौ के कर्म का निर्देश नहीं किया है ।

पुष्करावर्तकानां (६)-जलवर्षण वाले ४ प्रकार के मेघ कहे गये हैं -

पुष्करावर्त्तकाः शङ्खाः कालकर्णा जलप्लवाः ।
इति वारिमुचां वंशाश्चतुर्था परिकीर्तिताः ।। (सना.-पृ.१५)

ये प्रलयकालीन मेघ कहे जाते हैं जो प्रलयग्नि को शान्त कर पृथ्वी को एक समुद्र रूप में परिवर्तित करते हैं-

तथा निर्वाप्य कल्पाग्निं पुष्करावर्त्तकादयः ।
विश्वैकवीजनिलयां चक्रुरेकार्णवां महीम् ।। (भरत. -पृ.८)

मल्लि. (पृ.६) ने पुष्कराश्चावर्तकाश्च विग्रह करके पुष्कर और आवर्तक दो अलग-अलग मेघों की जाति मानी जाती है ।

भरत (पृ. ८) ने इस शब्द के सम्बन्ध में अनेक संभावना व्यक्त की हैं-

(क) पुष्करावर्तक नामक एक मेघवंश है । उस वंश से उत्पन्न कुछ मेघ पुष्कर नाम से जाने जाते हैं और कुछ आवर्त्तक नाम से ।
(ख) पुष्कर व आवर्तक अलग-अलग मेघ हैं । उनसे उत्पन्न मेघ के मातृवंश व पितृवंश के द्योतनार्थ पुष्करावर्तक प्रयोग हुआ है ।
(ग) पुष्कर सम्वोधन है-हे पुष्कर । आवर्तकों को वंश में तुम उत्पन्न हुए हो ।
(घ) पुष्करावर्तक पुण्यजल की वर्षा करने वाले मेघ है -
पुष्करावर्त्तकाः ख्याताः पुण्यवारिप्रवर्षिण ।

पर पुष्कर को सम्वोधन नही कहा जा सकता क्योकि 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' (पा. ६-१-१२५) के अनुसार सम्वोधन प्लुत होता है । ऐसी स्थिति में पुष्कर की आवर्तक के साथ सन्धि नहीं हो सकती । पुष्कर व आवर्तक को अलग-अलग मेघ भी नहीं कहा जा सकता । यदि कवि को इन दो पदों द्वारा मेघ के मातृवंश व पितृवंश का बोध कराना अभीष्ट होता तो पुष्करावर्त्तकानां में बहुवचन का प्रयोग न कर द्विवचन का प्रयोग करते ।

स्थिर., बल्लभ., चारि., पूर्ण., शाश्वत., सना. टीकाकारों ने पुष्कारावर्तक को प्रलयसमयाधिकारी महान् पयोधर विशेष कहा है । दक्षि. (पृ.६) ने पुष्कलावर्तक

पाठ देकर कूटस्थाः केचन मेघाः अर्थ दिया है ।

सारो. टीका में कहा है-पुष्करं पानीयमावर्तयन्ति यथाकामं पृथिव्यां भ्रमयन्ति जल का आवर्तन करने के कारण वे मेघ पुष्करावर्तक नाम से कहे गए हैं।[१] पुष्करावर्त्तक से तात्पर्य है-

पुष्करा नाम से मेघा वृहन्तस्तोयमत्सराः ।
पुष्करावर्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ।।
नानारूपधरास्ते कारणेनेह महौधीरस्वनास्तथा ।
कल्पान्ते वृष्टिकर्तारः संवर्ताऽग्नेर्नियामकाः ।।[२]

इससे भी पुष्करावर्तक मेघों की कोई जाति प्रतीत होती है । जो मृत्यु और दुर्भिक्ष का कारण है ।

यहां पुष्करावर्तक नाम मेघों के किसी श्रेष्ठ वंश का प्रतीत होता है । जिसके साथ यक्ष ने दृष्टिगत मेघ सम्बन्ध स्थापित कर उसकी महानता का बोध बताया है । तभी "याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लव्धकामा" की भी चरितार्थता है ।

याञ्चा मोघा वरमधिगुणे नाधमेलब्धकामा (६) -स्थिर., बल्लभ. , दक्षि०., पूर्ण., मल्लि., सना., शाश्वत आदि अधिकांश टीकाकारों ने यही अर्थ लिया है । कि गुणसम्पन्न व्यक्ति से की गई याचना निष्फल होते हुए भी उचित है पर निकृष्ट व्यक्ति से की गई याचना काम्य फल देने पर भी निकृष्ट है ।

सना. (पृ.१५),. भरत. (पृ.२) व कृष्ण. (पृ.७) ने एक अन्य अर्थ भी दिया है कि गुण सम्पन्न से याचना श्रेष्ठ है क्योकि वह कभी विफल नहीं होती, इस संबंध में अन्यत्र भी दृष्टिगत होता है-

अतोऽहं दुखार्ता शरणमबला त्वां गतवती ।
न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति हि कदाचिद्विफलताम् ।।[३]

लेकिन अधम से याचना अनुचित है क्योकि वह अलब्धकामा अर्थात् विफल होती है । पर स्वयं ही भरत ने किन्त्वत्र नञ् प्रश्लेषः श्लेष लव्धः कहकर इस भाव का यहां खण्डन भी कर दिया है । व्याकरण की दृष्टि से अधम के बाद यदि अलब्धकामा को रखते है तो एचोऽयवायावः[४] से 'ए' को अय् होकर 'नाघमयलव्धकामा' पाठ होना चाहिए था जो किसी भी टीका में दृष्टिगत नहीं होता । यहां प्रथम अर्थ ही सम्मत है ।

बाह्योद्यान (७)-वल्लभ. (पृ.९), व चारि. (पृ.११) ने बाह्योद्यान का अर्थ कैलासोपवन किया है । पूर्ण. ने इसे गन्धमादन उद्यान कहा है । मेरु के दक्षिण भाग में स्थित कैलास-पर्वत से अनुषक्त गन्ध मादन पर्वत के ऊपर गन्धमादन नामक

---

१. मेघदूतः एक अनुचिन्तन -पृ. २९६
२. वही- पृ. २९६
३. हंसदूत -९
४. अष्टाध्यायी -६.१.७०

दिव्य उद्यान है और गन्धमादन पर शिव का विहार भी कहा गया है।[१]

भरत. (पृ. ९-१०) ने उद्यान का अर्थ आराम अथवा निर्गम देश कर प्रमाण रूप में कोष को उद्धृत किया है-

'आरामे निगमे च स्यादुद्यानश्च प्रयोजने' रन्तिदेवः और केचित् कहकर वे बाह्य की जगह वाह्य का प्रयोग करते हुए एक और अर्थ देते हैं-वाह्यं वाहनीयम् उद्यानं उद्यतयानं महावृषभो तत्रस्थौ हरः उन्नत यान वाले महावृषभ पर स्थित हुए शिव।

कृष्णपति ने चार अर्थ दिय हैं-

(क) बाहरी उद्यान में स्थित।

(ख) वहनीय उन्नत यान वाले वृषभ पर स्थित।

(ग) कैलास शिखर पर स्थित।

(घ) वाह्य पवन के द्वारा वहनीय एवं उद्यान अर्थात् ऊर्ध्व गमन करने वाले (मेघ)। उस विग्रह द्वारा उन्होने वाह्य व उद्यान को मेघ का सम्बोधन माना है।[२]

वाह्योद्यान को वृषभ का वाचक नहीं कहा जा सकता क्योकि बाह्योद्यान पाठ ही पाया जाता है, वाह्योद्यान नहीं। इसी आधार पर मेघ के वाह्य, सम्बोधन रूप मत का भी खण्डन ही जाता है। वैसे भी सम्बोधन प्लुत होना चाहिए। अतः यहाँ सन्धि नहीं हो सकती थी[३] और वाह्य व उद्यान को सम्बोधन मानने पर स्थित शब्द भी व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। अतः यहां कृष्णपति के ये विभिन्न अर्थ मान्य नहीं कहे जा सकते। बाह्योद्यान का सामान्य अर्थ अलका के बाहरी उद्यान ही प्रतीत होता है।

उद्गृहीतालकान्ताः (८)-दक्षि. (पृ.७) के मत में प्रियविरह के कारण प्रान्त तक लटकते हुए अलकों का उद्ग्रहण अभिप्रेत है। सना. (पृ. १९) ने भी अलकों की दीर्घता को चिरविरह का सूचक कहा है।

सुमति. के मत में विरहणियों के लिए केश-ग्रन्थन का निषेध है। अतः

---

१. मेरुदक्षिणभागवर्तिनः कैलासानुषक्तस्य पूर्वपश्चिम-समुद्रावगाढ़कोटिद्वयस्यगन्धमादननाम्नः शैलस्योपरिगन्धमादनं नाम दिव्युमद्यानम्, गन्धमादनकैलासो पूर्वपश्चायतावुभौ। पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः। वनं चैत्ररथं पूर्वं दक्षिणं गन्दमादनं इति विष्णुपुराणवचनात् त्वामिह स्थितवतीमुपस्थिता गन्धमादनवनान्तदेवता इति, पद्मभेदपिशुनाः सिषेविरे गन्धमादनवनान्तमारुताः इत्यादिर्भिर्गन्धमादने मदनरिपुविहारस्य ग्रन्थान्तरेषु श्रवणात्। -पूर्ण. पृ.१६

२. बाह्योद्याने बहिराक्रीड़े स्थितो यो हरः...यद्वा, वाह्यं वहनीयं उद्यानं ऊर्द्धयानं वृषस्तत्र स्थितो यो हर इत्यादि यद्वा, बाह्ये बहिर्यत् उद्यानं कैलासशिखरं यात्यनेन तदुद्यानं, करणे ल्युट्। यद्वा, हे वाह्य हे वहनीय अर्थात् पवनेन हे उद्यान ऊर्द्ध यानं यस्येत्यामन्त्रणपदद्वयं मेघस्यैव। -कृष्ण.-पृ.७-८

३. पाणिनी-प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्, ६.१.१२५

उन्होने अग्रथित केशों वाली अर्थ लिया है।[1] भरत के मत में विरह-काल में केशों के कर्त्तन का निषेध कहा गया है।

मलिनं वसनं ध्यानमेकवेणीधरं शिरः।
अंगरागपरित्यागो नालकानाञ्च कर्तनम्।। (भरत.-पृ.१०)

और बढ़े हुए केशों को उठाकर ऊर्ध्व दृष्टि वाली पथिक वनिताओं के मुख व बाहुमूल आदि दिखाई देने पर मेघ की काम सम्पत्ति भी ध्वनित होती है।[2]

प्रत्ययादाश्वसत्यः (९)- प्रत्यय से तात्पर्य है-

प्रत्ययस्तु ख्यातिरन्ध्रविश्वासाधीनहेंतुषु। वैजयन्ती (पूर्ण. -पृ.१७)
प्रत्ययोऽधीनशपथज्ञानविश्वासहेतुषु। रन्ध्रे शब्द अमरः (भरत.-पृ.१०)

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., पूर्ण., कृष्ण. आदि टीकाकारों ने प्रत्यय का अर्थ विश्वास लेते हुए यही भाव दिया है। कि वर्षा ऋतु के आने पर हमारे प्रिय अवश्य आएंगे, इस विश्वास से आश्वस्त होती हुई चारि. (पृ.१२) एवं सुमति. (पृ.१०१) ने यहां आश्वसन्त्यः पाठ लेते हुए स्वस्थ अर्थ लिया है।

भरत. ने केचित् कहकर एक अन्य अर्थ भी दिया है। उन्होने प्रत्यय का अर्थ शपथ एवं आश्वसत्यः का अर्थ अधिकं श्वासं मुञ्चन्त्यः करते हुए कहा है कि पथिक यात्रा के समय प्रियाओं के सामने यह शपथ लेकर गए थे कि वर्षा के समय वे लौट आएंगे पर वे अभी तक नहीं आए, इस कारण से दीर्घ श्वास छोड़ती हुई।[3]

कृष्ण. ने भी दो अन्य विग्रह दिए हैं-

(क) 'आशु असन्त्यः' मेघ को देखते ही मानों मृतप्राय।

(ख)

असन्त्यो व्यभिचारिण्यः मेघकाल में पति के न आने से जो व्यभिचारिणी हो गई है।[4]

भरतकृत दीर्घ श्वासें छोड़ना रूप अर्थ यहां रुचिकर प्रतीत नहीं होता। पथिकवनिताओं ने इस ऋतु के आगमन का सूचक यह प्रथम मेघ देखा है। उसको देखते ही यह सोच लेना कि पथिकों ने अपनी शपथ पूरी नहीं की, उचित नहीं।

---

१. विरहिणां केशे ग्रन्थनाभावादतः अग्रन्थित केशान्ताः इति भावः-सुमति. -पृ.१०१

२. प्रवृद्धालकत्वेनालकान्तोद्ग्रहणादूर्ध्वदृष्टिलोचनदर्शनतात्पर्येण मुखबाहू-मूलादिदर्शनयोग्यत्वेन कामसम्पत्तिर्ध्वनिता। यदुक्तं- धन्यः पश्यति जिह्माक्षीं किमन्यदलकोत्क्षेपातोलिताननपङ्कजाम्। ससाध्वसकुतूहलाम्। --भरत.पृ.१०

३. केचित्तु प्रत्ययात् शपथात् आश्वसत्यः अधिकं श्वासं मुञ्चन्त्यः यात्रासमये मेघागमेऽवश्यं समेष्याम इति स्त्रीणां पुरः शपथं कृत्वा पन्थास्तु प्रस्थिताः अधुना मेघः समायातस्ते तु नागता इति श्वासमोचनम्। भरत. पृ.१०

४. प्रत्यायात् आश्वासं गच्छन्त्यः। अतः परमस्माकं वल्लभा आगमिष्यन्तीति प्रत्ययः। यद्वा, आशु तत्क्षणं असन्त्यो मृता इवेत्यत्र। यद्वा, असन्त्यो व्यभिचारिण्यः। -कृष्ण.-पृ.८

कृष्ण. कृत अर्थ का भी यहां कोई औचित्य प्रतीत नही होता । मृतप्राय अर्थ लेने पर यदि पथिक-वनिताएं मेघ के दर्शन मात्र से ऐसी अवस्था को प्राप्त कर लेती है तो यक्षिणी का मरण तो निश्चित ही है । अतः ऐसी स्थिति में मृत्यु के कारणभूत मेघ द्वारा यक्ष का सन्देश भेजना ही अनुचित हो जाता । वैसे भी कवि ने कहा है-

आशाबन्धः कुसमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां ।
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।।[१]

पथिक-वनिताएं भी पथिकों के आगमन के प्रति आशायुक्त है । अतः प्रथम मेघ को देखते ही वह मरणासन्न कैसे हो सकती है । और व्याभिचारिणी अर्थ भी उचित नहीं होता । अतः प्रत्यय का अर्थ विश्वास ही अधिक उचित है । मेघ का दर्शन पथिक-वनिताओं में इस आशा का संचार करता है । कि उनके प्रिय शीघ्र आने वाले हैं । अतः पथिकों के आने के विश्वास से आश्वस्त होती हुई ।

बलाकाः (१०)-बलाकाः शव्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है -

वलाका वकपङ्क्तिःस्याद्बलाका विशकण्ठिका ।
वलाकां कामुकीं प्राहुर्वलाकस्तु वको मतः ।। (कृष्ण.-पृ९)
वलाकाः वकपत्न्यः[२]

यहां बलाकाः से तात्पर्य बक-स्त्रियों से है । यह शव्द सदा स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है । स्थिर. (पृ. १५) एवं पूर्ण. (पृ.२०) ने इसका विसकण्ठिकाः अर्थ किया है बकस्त्रियों का भोजन विसकण्ठिकाः कहा गया है । अतः यह अर्थ भी वकस्त्रियों का ही बोधक है ।

सुमति. (पृ.१०२) ने भी यद्यपि बकस्त्रियः ही अर्थ दिया है पर साथ ही इस शव्द की व्युत्पत्ति देते हुए कहते हैं बलाकेति बलेन यौवनेन गर्वेण अकन्ति एवं वक्रं गच्छन्तीति बलाकाः । अक कोटिल्ये धातोरयं शव्द । सम्भवतः गर्भाधान विशेषण उनके यौवन का ही परिचायक है ।

भरत ने केचित् के द्वारा एक अन्य भाव यह भी दिया केचिदेवमाहुः वरमाकायन्ति आकर्षन्ति । वलाकाः स्त्रियः रवेइन्द्रिये वर्तमानं भवन्तं सेविष्यन्ते रतचेष्टया अनुकूलयिष्यन्ति । अत्र माला पुष्पादि स्त्रक्, परिचयः सम्भोगः पवनो नासागत वायुः । (पृ.१२)

कृष्ण ने भी इस भाव को दिया है ।[३] कामुक स्त्रियां यहां नायिका रूप में चित्रित की गई हैं । अथवा जिस प्रकार वे स्त्रियां नायक द्वारा गर्भ धारण करती

---

१. मेघ.-११
२. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 14.
३. अन्यस्यापि एवंविधशकुने प्रस्थितस्य वलाकाः कामुकाः रवे निर्जने सेवामाचरन्ति । सोऽपि गर्भाधाने क्षमः सुरतरुपे परिचयो यस्य तादृशो भवति । कृष्ण. पृ. ९

हैं, उसी प्रकार वकस्त्रियां तुम्हारे द्वारा गर्भ धारण करेंगी। बलाकाः में बहुवचन बहुस्त्रीसहाय का द्योतक है।[१]

आशाबन्धः (११) आशाबन्ध से तात्पर्य है-

आशाबन्धः मनोरथ विश्वः (सना., पृ.२४)

आशावन्धः समाश्वासे तथा मर्कटसूत्रके विश्वः (भरत.-पृ.१३)

लतातन्तुप्रताने स्यादाशावन्धो मनोरथे बलः (वही)

आशा दिगतितृष्णयोः यादवः (मल्लि.-पृ.९)

स्थिर. ने आशा + आबन्धः विग्रह लेते हुए लिखा है -आ विश्वासवती स्पृहा। आबध्यते समन्ताद् धार्यतेऽनेनेत्याबन्धः। करणे घञ्। आशैवाबन्धः कुसुमसदृशं कुसुमवत्सुकुमारम्। सदृशादयः शव्दा गुणसादृश्यवाचिनः प्रायशो बाहुल्येनः। ...यथा पातोन्मुखं कुसुमं आशा दिक्षु बन्धो वृन्तं आवृणोति। तथा प्रियावियोगे मदनदहनदग्धं पुरन्ध्रीणां हृदयं पत्या सह पुनः संभोगो भविष्यतीति या आशा सा ध्वंसाद्वारयिष्यति (पृ.१६)

बल्लभ. ने भी आशा एवं जालकारकृत तन्तुसमूह रूप दो अर्थ लेकर स्थिर. के ही भाव को दिया है।[२] दक्षिण ने आशा का अर्थ अभिलाषा एवं बंध को निगल (जंजीर) अर्थ में लिया है। उनके अनुसार अभिलाषा रूपी जंजीर कुसुमसदृश बल वाले हृदय को रोके रखती है।[३] पूर्ण ने भी दक्षि. के ही मत का अनुकरण किया है।[४]

मल्लि. ने आशा को अतितृष्णा व बन्ध को वृन्त अर्थ में लिया है।[५] भरत ने आशा का अर्थ प्रत्याशा एवं बन्ध का मनोरथ अर्थ किया है।[६]

(क) प्रसवबन्धन

(ख) समाश्वास

(ग) मर्कट जाल[७]

---

१. मेघदूतः एक अनुचिन्तन, पृ.२९८

२. एवंविधमप्याशया धार्यते। नूनमस्माकं पुनः प्रियेण संभोगो भावीति। आशाबन्ध आशाबन्ध इव। यथा आशाबन्धो जालकारकृततन्तुनिकरः कुसुममपि शुष्कं वातेरितं रुन्द्धे। बल्लभ.,पृ.८

३. आशाबन्धः प्रियतमश्चेत् जीवति कालान्तरे तत्समागमो भविष्यतीत्यभिलाषः आशाबन्धशव्देन निगलसमाधिर्विवक्षितः। रुणद्धीति, निगल कार्यस्य वक्ष्यमाणत्वात्। दक्षि.-पृ.१०

४. आशाबन्ध इति। कालेनापीदं भविष्यति इत्यभिमतविषये लिप्सायाः अविच्छेदः आशा, सैवबन्धो निगलः अथवा तया बन्धनम्। पूर्णा.-पृ.२१-२२

५. आशातितृष्णा। आशादिगतितृष्णयोः इति यादवः बध्यतेऽनेनेतिबन्धो बन्धनम्। वृन्तमिति यावत्। आशैवबन्धः। आशाबन्धः। मल्लि.-पृ.९

६. आशाबन्धः प्रत्याशारुपबन्धनं मनोरथः प्रायशो बाहुल्येन अङ्गनानां हृदयं रुणद्धि आवृणोति धारयतीत्यर्थः -भरत.पृ.१२

७. आशैव बन्धः प्रसवबन्धनम्। यद्वा आशावद्बन्धः समाश्वास एव। अथ

सना. (पृ.२४) व चारि. (पृ. १५) ने स्थिर. के ही भाव को दिया है कि जिस प्रकार मर्कट जाल पुष्प को गिरने से रोके रखता है। उसी प्रकार समाश्वास अथवा प्रिया का प्रत्यागमन रूप मनोरथ स्त्रियों के हृदय को रोके रखता है।

अभि.शा.,[१] मालतीमाधव[२]। एवं उद्धसन्देश [३] आदि में इसी प्रकार के भाव की अभिव्यक्ति की गई है।

दक्षि. (पृ. १०), पूर्ण. (पृ. २१-२२), भरत० (पृ० १२) ने आशाबन्धन सद्यः पतनशील प्रणयि हृदय को रोके रखता है-यही एक अर्थ लिखा है। विष्णुपाद भट्टाचार्य ने भी इसी अर्थ का समर्थन करते हुए कहा है कि यदि हम यहां आशाबन्धः का प्रत्याशा एवं मर्कटजाल दोनों अर्थ ग्रहण करते हैं तो इस प्रकार की श्लेषोपमा संस्कृत-साहित्य में नहीं मिलती।[४] पर जब आशाबन्धः का प्रयोग मर्कटसूत्र के लिए भी होता है और आगे कवि ने कुसुमसदृशं भी कहा है, तब यहां पर मर्कटसूत्र एवं प्रत्याशा रूप बन्धन दोनों ही अर्थ ग्राह्य हैं। जिस प्रकार सद्यः पतनशील कुसुम मर्कटसूत्र द्वारा रोक लिया जाता है। उसी प्रकार सुकुमार प्रणयि हृदय प्रिय के प्रत्यागमन रूप मनोरथ द्वारा रोक लिया जाता है। भरत. ने भी लिखा है-

श्लेषोपमानमिदमिति च वदन्ति तत्र आशा दिशो बध्नातीति आशावन्धो मर्कटसूत्रं स यथा प्रणयि आश्रये विप्रयोगे वृन्ताद्विश्लेषे सद्यः पतनोद्यतं कुसुमंरुणद्धि तथा हृदयं रुणद्धीतिः ..अन्यदपि चलं वस्तु बन्धेन रुध्यते इति ध्वनिः। (पृ.१२-१३)

आशाबन्धः के साथ कुसुमसदृशं का प्रयोग इस बात का द्योतक है कि कवि को यहां आशाबन्धः के दोनों अर्थ ही अभीष्ट रहे होंगे।

कर्तुयच्च प्रभवति...राजहंसाः सहाया (१२)-इस श्लोक में यक्ष द्वारा मेघ मार्ग में राजहंसों की सहचारिता का उल्लेख गया है। सभी टीकाकारों ने अपनी व्याख्या में इसी भाव को लिया है। पर भरत ने केचित् कहकर पूरे श्लोक का एक अन्य अर्थ भी दिया है। इस सन्दर्भ में उन्होने राजहंसाः को श्रेष्ठ राजाओं का वाचक मानते हुए लिखा है केचितु ध्वनिनाऽत्रार्थान्तरमपि तद्यथा राजहंसा राजश्रेष्ठा आ कैलासात् पृथिव्यन्तं यावत् तव सहायाः सम्पत्स्यन्ते, निःस्वतया मृणालादिजीविनः गर्जितम् अन्येषां शत्रुभूपानमहङ्कारप्रधानतर्जनचनं श्रुत्वा मानसेन मनसा उत्का उत्सुकाः कातरा उन्मनस इत्यर्थ यद् गर्जितम् महीम् उद्यतानि शिलीन्ध्रवत् श्वेतानि छत्राणि यत्र तादृशीं सैन्यातपत्रशतसंकुलां कर्तुं प्रभवति,

च मर्कट जालकं. यथा सद्यःपाति पुष्पवृन्तेन मर्कटजालकेन वाऽवरुध्यते तथा समाश्वासेन स्त्रीणां हृदयमपीति भावः। आशाबन्धः समाश्वासे तथा मर्कटजालके इति मेदिनिः। कृष्ण.पृ.९

१. गुर्वपि विरहदुःखं आशाबन्धः साहयति। -अभि. शा. , अंक ४
२. आशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः ।। --मालतीमाधव-९।२६
३. आशापाशैः सखि नवनवैः कुर्वतीप्राणबन्धम्। उद्धवसन्देश-८३
४. OH. Vol. 6, 1958, p. 2930.

अश्रवणसुभगं श्रोतुमशक्यम्। अयं भावः विजिगीषवो राजानः सच्छत्रसैन्याः सन्तः परान्जेतुं वर्षास्वपि यान्ति तत्प्रतापातच्छत्रवः कैलासान्तं पलायिष्यन्ते, तदन्वेषिणः पथि कैलासपर्यन्तं तव सहाया भविष्यन्तीति मेघप्रोत्साहनम्। (पृ.१३)

भरत के मत का अनुसरण कर कृष्णपति ने भी अपनी व्याख्या में इस भाव को दिया है [१] पर इस प्रकार भावों को यहां केवल शब्दो का भ्रमजाल ही कहा जा सकता है। कालिदास का यहा ऐसा कोई अभिप्राय प्रतीत नहीं होता। कवि ने सामान्यतः यहां कैलास पर्वत तक मेघ के साथ राजहंसों के गमन का उल्लेख किया है।

सरसनिचुलात् (१४)-निचुल से तात्पर्य वेतस अथवा इज्जल वृक्ष से है-

निचुलोऽम्बुज इज्ञलः अमरः (कृष्ण.-पृ.१२)

वानीरे कविर्मेदे स्यान्निचुलः स्थलवेतसे शब्दार्णवः। मल्लि.-(पृ.१२)

वल्लभ. ने इसकी व्याख्या में सरसनिचुला वेतसा यत्रेति प्रावृड्वर्णनम् (पृ. १०) कहकर इसे वर्षा का सूचक कहा है। सना. एवं भरत. के शब्दो में सरस निचुल यात्रा मंगल का सूचक है -दधिफलकुसुमं पावको दीप्यमान (भरत. पृ. १६) एवं वृक्ष पल्लवितो अग्रतः (सना. पृ. ३१) यात्रा में शुभ माने गये है। मेघ भी यात्री है, अतः उसके मार्ग में वेतस वृक्षों का दिखाई देना कार्यसिद्धि का सूचक है।

भरत. ने इसका एक अन्य अर्थ यह भी दिया है-रसेन जलेन सह वर्तते तादृशो निंचुल वृक्षों यत्र (पृ.१६) इसके द्वारा यह ध्वनित होता है कि वह प्रदेश जलमय है। अतः मेघ को वर्षण द्वारा वहां विलम्ब करना उचित नहीं।

स्थिर. (पृ. २०) ने एक भाव यह भी लिया है कि यह उपनदियों में उत्पन्न होते हैं। अतः यक्ष को जलयुक्त उस स्थान तक ही मेघ का साथ देना चाहिए। यक्ष मेघ का बन्धु है बन्धुओं का साथ जलमय प्रान्त तक ही होता है-

नदीतीरे गवां गोष्ठे क्षीरवृक्षे जलाश्रये।
आरामेषु च कृपादाविष्टबन्धून् विसर्जयेत्॥ (स्थिर.-पृ. २०)

सारो. टीकाकार ने भी स्थिर. के भाव को ही दिया है। [२] अभि. शा. में भी कवि ने ऐसा ही भाव व्यक्त किया है। [३]

---

१. अन्यस्यापि राजश्रेष्ठाः: सहाया भवन्ति। तत् आशारूपं गर्जितं श्रुत्वा मानसे मनसि उत्का गमनायेत्यर्थात्। यद्गर्जितेन मही सद्त्रा तन्यते तेऽपि पाथेययुक्ता भवन्ति गर्जितमपि तेषां श्रवणसुभगमेव। वीराणां रणाह्वानं सुभगमेव यतः। कृष्ण.-पृ.१०

२. ed.G.R. Nandargikar (Notes), p. 19..

३. भगवन् ओदकान्तंस्निग्धो जनोऽनुगंतव्य इति श्रूयते। तदिदं सरस्तीरं। अत्र संदिश्य प्रतिगन्तुमर्हसि। अभि.शा.-अंक ४

दक्षि.[१] एवं मल्लि.[२] ने इस शब्द के एक भिन्न अर्थ को भी दिया है। उन्होने निचुल नामक कोई कवि विशेष माना है जो कालिदास का सहाध्यायी था।

यहां कवि मेघ मार्ग का उल्लेख कर रहा है। ऐसे प्रसंग में निचुल व दिङ्नाग को व्यक्ति विशेष का वाचक मानने का कोई औचित्य नहीं होता। मार्ग को दृष्टिगत कर यहां सरसनिचुल वेतस वृक्ष का ही वाचक प्रतीत होता है।

दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान् (१४)-अधिकांश टीकारकों ने मार्ग में दिग्गजों के पीवरशुण्डादण्ड प्रहारों का परिहार करते हुए अर्थ किया है। गजशास्त्र में कहा गया है-

अवस्थां पञ्चमीं प्राप्ता दृष्ट्वा कृष्णाम्बुदं गजाः।
सन्तापशान्तये तप्ताः क्षिपन्ति स्थूलहस्तकान्॥ (भरत. पृ .१७)

स्थूलहस्त से तात्पर्य शुण्डार्थ से है-

हस्तो गजस्य नासायां शुण्डार्थे स्थूलपूर्वक धरणिः (भरत., पृ. १६) अवलेप से तात्पर्य-

"अवलेपः स्मृतो गर्वे प्रहाराभोगयोरपी ति" विश्वः (पृ.१२)

कृष्ण. ने यहां अवलेप के गर्व, प्रहार एवं आभोग तीनों ही अर्थ ग्रहण किये हैं,[३] सुमति ने अवलेपान् का स्पर्श अर्थ लिया है।[४] वल्लभ. ने अवलेपान् की जगह अवलेहान् पाठ ग्रहण करते हुए कहा है-

स्थूलहस्तावलेहान् महाकरप्रहान्वर्जयन् (वल्लभ. -पृ.१०)

वल्लभ. (पृ.१०), स्थिर (पृ. २०) दक्षि. (पृ.१३) एवं पूर्ण (पृ. २८) के मत में दिग्गज मेघ को देखकर प्रतिगज की भ्रान्ति से प्रहार करते हैं। उन प्रहारों को दूर करते हुए मेघ का गमन कहा गया है। भरत के मत में स्थूल के द्वारा प्रहारों की दुःसहनीयता द्योतित की गई है। अतः वे प्रहार अवश्य ही परिहरणीय हैं। यहां यह कहना अनुचित है कि कवि ने मार्ग में विघ्न प्रदर्शित करके मेघ को अनुत्साहित किया है अपितु यहां मार्ग में पड़ने वाली बाधा निवृत्ति को सूचित करते

---

१. सरसनिचुलादित्यत्र निचुलपदेन निचुलाभिधानः कश्चन कविर्विवक्षितः यस्य सूक्तिः सुभाषिते श्रूयते । संसर्गजा दोषगुणा भवन्तीत्येतन्मृषा येन जलाश्रयोऽपिस्थित्वानुकूलं निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् । इति । अनया निचुलोपवर्णनया तस्य कवेर्निचुलाभिधानत्वमासीदित्यनुसन्धेयम् । तस्मात् सरसपेदन तं कविं स्तौति । दक्षि. -पृ. १३

२. अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति-रसिको निचुलो नाम महाकविः कालिदासस्य सहाध्यायः परापादितानां कालिदासप्रबन्धदूषणानां परिहर्त्ता यस्मिन्स्थाने ..। मल्लि.-पृ १२

३. मार्गे दिग्गजानां ये स्थूला मांसला हस्ताः करास्तेषामवलेपानाघातान् परिहरन् त्यजन् यद्वा, तेषामवलेपान् गर्वान् परिहरन् दूरीकुर्वन् । यद्वा, स्थूलाहस्ताभोगान् परिहरन् उद्गच्छ । कृष्ण.-पृ.१२

४. स्थूलहस्तावलेपान् पुष्टशुण्डादण्डस्पर्शान् । -सुमति - पृ. १०६

हुए कवि ने मेघ के शक्तिप्राबल्य को द्योतित किया है।[१] स्थिर. के मत में मेघ को कुबेर नगर की दिशा में प्रस्थान करने का निर्देश किया गया है। अतः उस दिशा का एक ही गज वाधा विधायक होना चाहिए, पर यहां दिङ्नागानां में बहुवचन का प्रयोग है जो इसका सूचक है कि मेघ को अन्य दिशाओं के भी हस्तिशुण्ड प्रहारों का परिहार करते हुए जाना चाहिए।[२] पूर्ण. के शब्दो में -प्रतिगजधिया समराय वा, गिरितट बुद्धया वप्रक्रीडनार्थ वा, समाक्रष्टुं प्रसरतां शुण्डादण्डानां मदभरजनितानां यत्किंचित्कारितालक्षणान् व्यापारान्। (पृ.२८)

शाश्वत के मतानुसार-

स्थूलश्चासौ हस्तश्चेति तस्य अवलेपा अवलिप्तयः तान्। पीवरकराभिघातनित्यर्थः। अस्मदभिमते तु स्थूलहस्तशब्दः समुदित एव करिकरे वर्तते। केशाम्? दिङ्नागानां दिशो नागा दिङ्नानां ऐरावतप्रभृतयः। पथि मार्गे। अयम् अर्थ स्थानमिदं शाद्वलेजलदलम् अतस्तदभिलाषाद् दिग्दन्तिनाम् इह आगमने मार्गे भवद्दर्शनात् प्रतिद्विरदबुद्धया स्थूलहस्ताभिघाता मा भूवन्निति अहितोपदेशद्वारेणा चिरस्थि - तिनिवृत्यर्थ भीषयते। (पृ. ३२)

दक्षि.[३] एवं मल्लि. (पृ. १२) ने दिङ्नागानां से तात्पर्य दिङ्नाग नामक कोई आचार्य भी लिया है जो कालिदास का प्रतिद्वन्दी था स्थूलहस्तावलेपान् का अर्थ हस्तविन्यासपूर्वक दिखाई जाते हुए दूषणों का परिहार करते हुए किया है। अवलेप का दूषण अर्थ करते हुए मल्लि. न विश्वकोष को उद्धृत किया है-

अवलेपस्तु गर्वे स्यात्क्षेपणे दूषणेऽपि च (पृ.१२-१३)

जहों तक "दिङ्नागानां" में बहुवचन प्रयोग का प्रश्न है वह उसआचार्य के प्रति आदर के कारण से है।

पर दिङ्नाग के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है साहित्य जगत् में इस नाम के कई कवि हुए हैं। दिङ्नाग का लिखा हुआ एक ग्रन्थ हस्तबलप्रकरण या मुष्टिप्रकरण नाम से है। सम्भवतः इसी ग्रन्थ के कारण दिङ्नाग के विषय में विपक्षियों के साथ हाथ फेंककर शास्त्रार्थ करने की किंवदन्ती प्रचलित हुई है। पर वह दिङ्नाग

---

१. ननु वर्त्मनि विघ्नसम्भावनेयमयुक्ता मेघस्यानुत्साह प्रसङ्गात्? उच्यते, एतत्कथनेन अन्तरायान्तरनिवृत्तिः सूचिता, अयन्त्वेकः प्रत्यवायः शक्यपरिहारोऽत्यूर्ध्वगमनात्। भरत. पृ.१७

२. ननु कुबेरगुप्तायां दिशि प्रस्थितस्यास्य बाधा विधायक एक एव दिक्षु कुम्भी संभवति तत् कथं बहुवचनम्। उच्यते। बहुत्वमेवात्र गन्तव्येति विवक्षितं यदम्बुदं प्रति यक्षो भणति दिगन्तराणि परिहृत्य त्वयोत्तरेव हरित् तूर्ण गन्तव्येति भावः।--स्थिर०-पृ० २०

३. अयमभिप्रायः दिङ्नाग इति कोप्याचार्यः कालिदासप्रबन्धानन्यत्रोक्तोऽयमर्थ इति स्थूलहस्ताभिनयेर्दूषयति तमाचार्य स्वप्रबन्धस्यापूर्वार्थामिधायित्वमाश्रित्य मेघोपदेशव्याजेन कविरूपालभत इति। -दक्षि. पृ.१३

किस समय में हुए कालिदास के समकालीन थे या नहीं थे-विवादग्रस्त है।[१]

डा. शचीन्द्रनाथ सेन ने मेघ मार्ग को स्पष्ट करते हुए मल्लि. के मत का खण्डन कर स्थूलहस्त से तात्पर्य हस्तीशुण्ड लिया है और हस्तीशुण्ड को जलस्तम्भ कहा है। उत्तर की ओर जाते हुए मेघ का उन जलस्तम्भो के आवर्त्त में पड़ जाना सम्भव है। अतः कवि ने उन आवर्त्तों से मेघ को सतर्क किया है।[२]

वर्षाकाल में मेघों को देखकर गजों का शुण्डादण्डप्रहार प्रकृतिसिद्ध है। उसी को सम्भवतः कवि ने यहां व्यक्त किया है।

पुरस्तात् (१५)- वल्लभ. (पृ.११), स्थिर. (पृ.२१), चारि. (पृ.२०), पूर्ण. (पृ.२८) शाश्वत. (पृ.३४) व चरणतीर्थ (पृ. १७) ने पुरस्तात् का अग्र अर्थ लिया है। पर भरत ने इस अर्थ का खण्डन करते हुए कहा है-

अग्रतः शक्रचापन्तु न शोमनफलप्रद मिति (पृ.१७)

सना. ने पुरस्तात् का पूर्व दिशा अर्थ दिया है। उत्तर की ओर प्रस्थान करने वाले मेघ के लिए पूर्व में स्थित धनुष मंगलकारी है।[३]

सुमति. (पृ. १७७) भरत. (पृ. १७) एवं कृष्ण. (पृ.१२) ने भी पूर्व दिशा अर्थ लिया है। क्योकि ऐसा धनुष शुभसूचक है -

यातुर्दक्षिणतो भूतं तद्वद्दिवि निरन्तरम्।
यात्रानुकूलञ्च सदा धनुरेन्द्रं शुभावहम्।। (भरत. -पृ. १७)

वल्मीकग्रात् (१५)-वल्मीक का कई अर्थों में प्रयोग दृष्टिगत होता है-

वामलूरश्च नाकुश्च वल्मीकं पुं नपुंसकम् अमरः (मल्लि.-पृ. १३)
वामलूरे गिरेः श्रृङ्गे वल्मीकपदमिष्यते (भरत.-पृ.१७)
वल्मीकः सातपो मेघ (वही)
वल्मीकः सूर्य (वही-पृ.१८)

वल्मीक से तात्पर्य मिट्टी के बने हुए उन्नत टीले से है। जिसके अन्दर सर्प निवास करते हैं . वर्षाकाल में चीटियों द्वारा मिट्टी के उखाड़े जाने पर सर्प फण की मणियां ही आकाश में इन्द्रधनुष के आकार को धारण करती है।[४] वल्लभ. (पृ. ११), शाश्वत. (पृ. ३४), सुमति. (पृ. १०७), भरत, (पृ. १७) एवं सारोद्धारिणी टीकाकार ने इसी भाव को दिया है। मल्लि. ने भी वल्मीकाग्राद्वामलूरविवरात् (पृ. १३) कह कर सर्प की बांबी अर्थ दिया है।

स्थिर. ने कुप्रान्तात् (पृ.३३) अर्थ दिया है। सना. ने वल्मीकाग्रात् रामगिरिश्रृङ्गात् (पृ. ३३) कह वाल्मीक का अर्थ पर्वत एवं अग्र को शिखर का वाचक

---

१. मेघदूतः एक अनुचिन्तन, पृ. २९९
२. विशाल भारत-वाल्यूम २५, १९४०, पृ. २२५
३. पुरस्तात् पूर्वस्यां दिशि...उत्तरां दिशं प्रस्थितस्य पूर्वावस्थितमिन्द्रधनुः मङ्गलाय भवति। सना. -पृ.३३-३४
४. इन्दचापं किल वल्मीकान्तर्व्यवस्थितमहानागशिरोमणिकिरणसमूहात् समुत्पद्यते। मेघदूतः एक अनुचिन्तन -पृ. ३००

कहा है। कृष्ण ने भी वल्मीकाग्रात् शृङ्ग शिखरात् कहा है पर साथ ही शाश्वत . का मत देते हुए लिखते हैं–शाश्वतस्तु नाकुस्तदग्रादित्याह। अहिपतिफणामणिशिखा तद्द्वारेण निःसरन्ती शक्रचापतामामपद्यते इति श्रुतिमपि 'दशिर्तवान्। हरिवंशे तु रुद्रबाणविद्धस्य यज्ञमृगस्येन्द्रियरक्तप्रस्त्रवणादिन्द्रायुधं जातमित्युक्तम्। 'इन्द्रियस्त्रवणाच्चैव नभसीन्दायुधोऽभवत्। भूमादेव समुतिष्ठदाकाशे च प्रलीयत ' (पृ० १२)

रामनाथ ने मुक्तावली नामक मेघदूत टीका में वल्मीकः सातपो मेघः वल्मीकः सूर्य इत्यादि कहा है। वल्मीक वह मेघ है जिस पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं। वही किरणें इन्द्रधनुषाकार दिखाई देती हैं। इस सन्दर्भ में वराहमिहिर का ज्योतिशास्त्र का प्रमाण है–

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विधट्टताः कराः साभ्रे।
वियति धनुः संस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः॥[१]

गोपवेशस्य विष्णोः (१५)–स्थिर., वल्लभ., दक्षि., चारि., मल्लि., सुमति., शाश्वत. व चरणतीर्थ ने गोपवेशधारी कृष्ण सदृश भाव लिया है।

विष्णु के गोपवेशधारण के सम्बन्ध में पूर्ण. ने लिखा है- अनेन धरणितलमवतीर्णस्य पूर्णात्मनः पद्मनाभस्य कर्मबन्धनिबन्धनमन्तरेणेव धर्मसंस्थापनाय नटस्येव ततद्भूमिकावलम्बेन विवर्त्त न तु वास्तवः कश्चिद्विग्रहपरिग्रह इति द्योत्यते, जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमितज्ञा। चेष्टा तस्याप्रमेस्य व्यापिन्य- व्याहतात्मिका इति वचनात् विष्णोः व्यापत्वेन वेदशिरसि प्रतिपद्यमानस्य, वेदान्तवे दभिविर्ष्णुः प्रोच्यते योनतोऽस्ति तम् इति वचनात्। अत्र भगवत उपमानत्वात् उपमेयस्यापि मेघस्य संकोचविकासशक्तत्वं स्वरसत एवं परोपकारत्वं च द्योत्यते (पृ. २९)।

भरत. ने विष्णु के प्रयोग के महत्व को इन शब्दो में कहा है –विष्णोरिति विष्णुतुल्यतया गतो प्रोत्साहः सूचितः तत्स्मृत्या परममङ्गलश्च। तथा च "हरिस्मृतिःसर्वविपद्विनाशिनी" ति सैव यात्रा शुभा प्रोक्ता प्राक् स्मर्यते हरि रिति च। विष्णुपदेन सर्वव्यापकत्वं गोपवेषस्येत्यनेन स्वेच्छाविग्रहत्वञ्च प्रतिपादितम्। तद्द्वयं यथा तस्य तथा तवापीति ध्वनिः। (पृ. १८)।

कृष्ण के मत में–सर्व व्याप्नोतिति विष्णुः उक्तं काशीखण्डे–विष्लृ व्याप्तायं धातुर्यत्र सार्थकतां गतः। विष्णुनामस्वरूपे हि सर्वव्यापनशालिनी इति (पृ. १३)

अतःयहां विष्णोपमान से मेघ की सर्वव्यापकता एवं गोपवेश से स्वेच्छा शरीर रूप विशेषताओं का दिग्दर्शन कराया गया है।

पश्चात् (१६)–वल्लभ ने पश्चात् का अनन्तर अर्थ करते हुए कहा है– मालमुड्डारं क्षेत्रं किंचिन्मनागारुह्य पश्चादनन्तरमुत्तरेणोतरस्यां दिशि भूयो बहुतरं गति प्रवलय व्यावर्त्तय। मालं हि दक्षिणाशास्थं तेन गन्तव्येति गतिप्रवलनम् (पृ.

---

१. हिन्दी मेघदूत विमर्श–पृ. ४८-४९

११)

स्थिर. ने पश्चात् को मालं के साथ पाश्चात्यसीमान्तं दक्षिणाश्रितम् कहा है। चारि. (पृ.२१), पूर्ण. (पृ.३१), सना. (पृ. ३५), भरत (पृ. १८) ने पश्चिम अर्थ लिया है। सुमति (पृ.१०८) ने इसे पूर्व दिशा का वाचक कहा है।

यहां पश्चात् का पश्चिम अर्थ रुचिकर प्रतीत होता है तभी किंचित् की भी सार्थकता है–और कुछ पश्चिम स्थित माल पर चढ़कर उत्तर की ओर शीघ्र गमन कर।

अमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थाम् (१८)–अमरमिथुन से तात्पर्य देवयुगल से है। कवि ने काननाम्रो व मेघ से युक्त आम्रकूट की स्तन से उपमा दी है। देवताओं द्वारा स्तन दर्शन तो उचित है पर मिथुन का प्रयोग कर कवि ने जो यहां स्त्रियों द्वारा भी स्तन-दर्शन करवाया है , उसके औचित्य को सारों ने इन शब्दो में व्यक्त किया है–तर्हि मिथुनमिति कथमुक्तं। यतो न किंचित्तथाविधं स्त्रीणां स्तनदर्शने कौतुकं संभवति सत्यं स्तनेकत्वेन तासामपि प्रेक्षाकौतुकमुपपन्नमेव। [१]

मिथुन के प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करते हुए भरत ने लिखा है –ननु मिथुन ग्रहणेन किमत्र तात्पर्यम, न हि स्त्रीणां स्तनदर्शनाकांक्षा भवति। सम्भोगैकचितस्य मिथुनस्य वस्त्वन्तरनिरूपणे समादराभावेऽपि मिथुनेन कौतुकाद् दृश्यते इति रामणीयतातिशयध्वनिः। स्त्रियाः किमेकोऽपि स्तनो भवतीति विस्मयात् स्त्रीभिः दृश्यत इति वा। (पृ. २०)

मल्लि. के शब्दो में मिथुनग्रहणं कामिनामेव स्तनत्वेनोत्प्रेक्षा संभवतीति कृतम्। यथा परिश्रान्तः कश्चित् कामी कामिनीनां कुचकलशे विश्रान्तः सन्स्वपिति तद्वद्भवानपि भुवो नायिकायाः स्तन इति ध्वनिः (पृ. १५)।

सारङ्गाः (२१)–सारंग का प्रयोग अनेक अर्थों में होता है–

सारङ्ग शबलो वर्णश्चातकः षटपदो मृगः वैजयन्ती (पूर्णा. पृ . ३६)
मृगचातकमातङ्गाः सारङ्गा संप्रकीर्तिता (भरत. पृ. २२)
सारङ्गः शबले ख्यातश्चातके हरिणे गजे (वही)
सारङ्गाश्चातके भृङ्गे कुरङ्गेचमतङ्गजे विश्वः (वही पृ. २३)

वल्लभ. (पृ. १४) ने सारंग को मयूरवाची कहा है। स्थिर. ने इसे चातक का वाचक मानते हुए गजभृंग आदि अर्थों का खण्डन किया है। चरणतीर्थ (पृ. २५) ने भी इसका चातक अर्थ दिया है। भरत ने यद्यपि स्वयं चातक अर्थ दिया है पर साथ ही गज, मृग आदि अर्थ भी स्पष्ट किए है। [२] दक्षि. ने सारंग को हरिण का वाचक मानते हुए क साङ्गनाः हरिणाः चातके हरिणे पुंसि सारङ्ग शबले त्रिषु इति सिंहः। ...ये पुनः सारङ्गशब्देन चातकहरिणगजा विवक्षिता इति व्याचक्षते, तेषां तु मतमुपेक्षणीयं, सारङ्गशब्दस्य गजवाचित्वादर्शनात् ...किञ्च एकस्यैव युगपदनेकार्थत्वस्य भिन्नक्रियासमन्वयस्य च क्लिष्टत्वात् कन्दलीश्चेत्यत्र समुच्चयानुपपतेश्चे–

१. ed. G.R. Nadarasikar (notes) p. 23
२. भरत. टीका–पृ.२२

त्यलमतिप्रसङ्गेन । (पृ.१८) ।

चारि. (पृ. २७), पूर्ण, (पृ.३६-३७), सना. (पृ. ४५), मल्लि. (पृ.१७), सुमति. (पृ. ११३), एवं कृष्णपति (पृ. १६) आदि टीकाकारों ने सारंग का भृंग हरिण, गज व चातक अर्थ लिया है । सना. ने इसकी व्याख्या में कहा है-सारङ्ग शब्द व्युत्पत्तौ नानार्थेऽर्थचतुष्टयमाह-सारङ्गश्चातके भृङ्गे कुरङ्गे च मतङ्गजे इति । एते चत्वारस्तव मार्ग वक्ष्यमाणचिह्नेन सूचयिष्यन्ति । किं कृत्वा ? आविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीर्दृष्ट्वा सारङ्ग हरिणाः सूयिष्ंतीत्यर्थः । सारङ्गाः भ्रमराश्च नीपं दृष्ट्वा, सारङ्गाश्चातकाश्च जलकणप्राप्तिबुद्ध्या, सारङ्गा गजाश्च पृथिव्या गन्धमाघ्राय इति (पृ. ४५)

सुमति. ने तीन अर्थों में सारंग की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी है- सारंगेति सारं गायन्तीति सारंगाः भ्रमराः नीपं दृष्ट्वा । सरोवरं गच्छन्तीति सारंगाः मृगाःकन्दलीः दृष्ट्वा । सारं सलीलं गच्छन्तीति सारंगाः गजाः (पृ.११३) ।

यद्यपि यह सत्य है कि साहित्य में गज व भ्रमर रूप में सारंग का प्रयोग कम दृष्टिगत होता है । पर यहां कवि ने जिन भिन्न-भिन्न कार्यों का उल्लेख किया है वे इसके द्योतक हैं कि कवि ने यहां सारंग का केवल चातक अर्थ में प्रयोग न कर भृंग, मृग, व गज रूप में भी किया है । भ्रमर का नीप को देखकर हर्षित होना, मृगों का कन्दली खाना, गजों द्वारा पृथ्वी की गन्ध सूंघना एवं चातकों का मेघ द्वारा जल ग्रहण जगत् प्रसिद्ध है । मृगों का भोजन कन्दली कही गई है-

कन्दलः कदली चेति मृगवृक्षप्रभेदयोः धरणिः (भरत. पृ. २२)

हाथी द्वारा गन्ध ग्रहण का वर्णन कवि ने रघुवंश में किया है-

करीव सिक्तं पृषतैः पयोमुचां शुचिव्यपाये वनराजिपल्वलम् ।[१]

एवं चातक द्वारा मेघों से जल-ग्रहण का वर्णन भी रघुवंश में है-

अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ।[२]

प्रवृद्ध इव पर्जन्यः सारङ्गैरभिनन्द्यते ।[३]

अतः यहां विभिन्न क्रियाओं के कारण सारंग अनेक कार्यों का ही वाचक प्रतीत होता है ।

कैतकैः सूचिभिन्नैः (२३)- सूचि. से तात्पर्य-

गर्भ द्रोण्यां स्मृता सूंचिस्तीक्ष्णाग्रेषु च वस्तुषु ति विश्वः (भरत.-पृ. २४)

केतकीमुकुलाग्रेषु सूचिः स्यात् शब्दार्णवः (मल्लि.- पृ.१९)

वल्लभ. ने सूचि का अर्थ गर्भकण्टक लिया है सूच्या गर्भकण्टकेन भिन्नैर्विदारितैः । तेषां ह्यन्तस्थाः सुचिर्भित्वा विनिर्याति (पृ.१५)

चारि. (पृ.३०) ने वल्लभ के ही भाव को दिया है । सना. के शब्दो में-सूचिभिन्नैः सूच्या गर्भद्रोण्या भिन्नैः व्यवहितैः। यद्वा भिन्नाः सूचयो येषां ते तथा तैः । जातिकाल सुखादिभ्यः परवचनम् इति निष्ठायाः परनिपातः । (पृ.४९)

---

१. रघु. - ३।३

२. रघु - १७।६०

३. वही ८२०।१५

दक्षि. (पृ.१९) एवं मल्लि. (पृ. २४) ने सूचि का मुकुलाग्र अर्थ लिया है। पूर्ण. ने सूचि. को शस्त्र विशेष का वाचक मानते हुए कहा है–

'सूचिः शस्त्रविशेषः, सूचीवत्तीक्ष्णतया दलाग्राण्यत्र सूचय इत्युच्यन्ते, सूचिमात्रेण विकसितैः, अनतिपाकाददलितदलसंपुटैरित्यर्थः' (पृ० ३८)

चरणतीर्थ (पृ० २९) ने सूचि रूप अग्रभाग अर्थ दिया है एवं सुमति०)पृ०११६) ने 'अर्धविकसितैः' अर्थ दिया है।

कवि ने यहां केतकी पुष्पो से उपवन की वृत्तियों की पाण्डुछाया का वर्णन किया है। उसको दृष्टिगत कर सूचि का अर्थ मात्र विकसित नहीं लिया जा सकता। जब केतकी पुष्प जरा से ही विकसित है तो उनसे उपवनों की वृत्तियां पाण्डुवर्णा कैसे हो सकती हैं? कवि का अभिप्राय यहां केतकी पुष्पो के तीक्ष्णाग्र स्वरूप का वर्णन करना प्रतीत होता है। कवि ने पूर्व में भी केतकाधानहेतोः[१] के द्वारा मेघ को केतक रूप पुष्प बाण से प्रहार करने वाला कहा है। अतः यहां यही अर्थ अभीष्ट है–सुई के समान तीक्ष्ण अग्रभागों से विकसित हुए, भरत ने इसकी व्याख्या में कहा है– सूच्याकारा अग्रभागा भिन्ना विदीर्णा स्फुटिता येषां तादृशैः केतकैः केतकीपुष्पैः। (पृ. २४)

चैत्याः (२३)–चैत्य से तात्पर्य–

चैत्यमायतने बुद्धबिम्बे चोद्देशपादप (चारि.– पृ.३०)

इस शब्द के अर्थ के विषय में टीकाकार एकमत नहीं। वल्लभ. ने इसका अर्थ बुद्धालय करते हुए कहा है–चैत्यं बुद्धालयः। यदि वा महाभोगप्रज्ञाततमो वनस्पतिश्चैत्यः (पृ. १५) जैन व बौद्ध परम्परा में चैत्य शब्द जिनालय अथवा बौद्धालय के लिए प्रयुक्त हुआ है। लक्ष्मी निवास ने इसे जिनालय का वाचक कहा है–चैत्या पूजितावृक्षा, जिनगृहाणि वा येषु ते।[२]

डा.प्रभाकरण नारायण कवेठकर ने वल्लभ. के मत को मान्यता देते हुए कहा है कि कालिदास के समय बौद्ध–धर्म का प्रभाव दशार्ण देश से हठ गया था। और वहां शुंग राजाओं द्वारा अपनाए हुए वैष्णव–धर्म ने स्थान ग्रहण कर लिया था कालिदास ने भी व्यंजना से इसी तथ्य को स्पष्ट किया है कि जहां बौद्ध–धर्म के प्रभाव से बौद्धालयों में हलचल हुआ करती थी, वहां अब कौव्वो ने घोंसले बना लिये हैं।[३]

स्थिर. ने चैत्या पूज्यपादपाः (पृ. ३१) कहा है। पीपल, अश्वत्थ आदि के वृक्ष जिनकी पूजा की जाती है, वह चैत्य है। चारि. (पृ. ३०) ने ग्रामपादप अर्थ दिया है। पूर्ण. ने शिलादिबद्धमूलाः पूजिताः प्लक्षाश्वत्थादयः पादपाः कहते हुए वैजयन्तीकोष उद्धृत किया है–'चैत्यं चिताङ्के बुद्धाङ्के उद्देशद्रो सुरालये (पृ. ३९)

दक्षि. (पृ. १९) ने चतुष्पथोद्देश कह चौराहे पर स्थित वृक्ष अर्थ किया है।

---

१. मेघ. – ३
२. ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 28.
३. The Vikram (ka.vi), Vol. V, 1962, p. 17.

मल्लि. ने रथ्यावृक्ष अर्थ करते हुए विश्वकोष को दिया है- चैत्यमायतने बुद्धबिम्बे चोद्देशपादपे (पृ. १९)।

सुमति. (पृ. ११६) व सारों[१] ने पीपल आदि के वृक्ष अर्थ दिया है। चरणतीर्थ (पृ. २९) ने देवभवन अर्थ लिया है।

चिताभूमि में मृतात्मा के उद्देश्य से लगाए गए वृक्ष को भी चैत्य कहा जाता है।[२] मल्लि. के रथ्यावृक्षा का सम्भवतः यही अभिप्राय है। पर यह भाव यहां संगत प्रतीत नहीं होता। कवि यहां दशार्ण के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कर रहा है। उसको दृष्टिगत कर बौद्धालय का देवभवन अर्थ भी रुचिकर नहीं। कवि ने उनके ऊपर नीडों का वर्णन किया है। जो भवनों की अपेक्षा वृक्षों पर ही अधिक पाए जाते है। अतः यहां चैत्य से तात्पर्य ग्रामजनों द्वारा पूजनीय पीपल व अश्वत्थ आदि वृक्ष ही रहे होंगे।

कुछ विद्वानों ने चैत्य से अभिप्राय मंजीर के वृक्ष से लिया है। मराठी में चवाठा का प्रयोग उस स्थल के लिए किया जाता है। जहां पर जन एकत्रित होकर वार्तालाप करते हैं। इसका मूल संभवतः चैत्य ही रहा हो। गुजरात में चौतरो या चौरो शव्द मंजीर के पेड़ के लिए प्रयुक्त होता है। इसके चारों ओर चबूतरा बना हुआ होता है।[३]

जागंल प्रदेशीय सन्ताल परगना में आज भी इस प्रकार वृक्षों को थान कहा जाता है। जहां ऐसे देवता की प्रतिष्ठा मानकर पूजा करते हैं। जो ग्राम या ग्रामपशुओं की रक्षा करते है।[४]

वनान्ताः (२३)-अन्त का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है -

अन्तः प्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपेऽतिमनोहरे विश्वः (भरत. पृ. २४)

मृतावववसिते रम्ये समाप्तवन्त इष्यते शब्दार्णवः (मल्लि. पृ . २०)

स्थिर. (पृ. ३१) ने अन्त को पर्यन्त अर्थ में लिया है। सुमति. ने अग्रभाव एवं स्वरूप-वाचक कहा है।[५] चारि. (पृ. ३०) ने मध्य चरणतीर्थ (पृ. २८) एवं कृष्ण. (पृ. १७) ने प्रान्त एवं लक्ष्मी निवास ने प्रदेश अर्थ लिया है।[६] भरत. ने स्वरूप अर्थ दिया है पर साथ ही अन्तः प्रदेशे इत्यन्ये (पृ. २४) कह प्रदेश अर्थ भी दिया है। मल्लि. (पृ. २०) ने अन्त का रम्य अर्थ लिया है। यहां अन्त का प्रान्त अर्थ अधिक उचित प्रयोग होता है। कवि ने अधिकांश स्थलों पर वन के साथ अन्त

---

१. ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 28.

२. Ibid.

३. A Fresh light on the meaning of the word chaitya The Vikram (ka.vi). Vol. XI, 1968, p. 101-102.

४. मेघदूतः एक अनुचिन्तन- पृ. ३०१

५. जम्बूवृक्षवनानामग्रभागा...वा अन्तः शब्दः स्वरूपवाचकः वर्षाक्रतो हि जम्बूवनानि अत्यन्तं श्यामानि दृश्यन्ते। सुमति. - पृ. ११६

६. ed. G.R. Nandargikar (Notes)m p.28.

का इसी अर्थ में प्रयोग किया है।[१]

उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान् (३०)- स्थिर. (पृ.३९), पूर्ण. (४६-४७) , मल्लि. (पृ. २५) एवं भरत. (पृ. ३०) ने उदयनकथा से तात्पर्य उदयन द्वारा वासवदत्ता हरण कथा का भाव लिया है। पूर्ण के शब्दो में उदयन इति वत्सराजस्य सांस्कारिकं नाम । कौशम्बीपतेर्गजवनविहारवत्सलस्यवत्सेशितुरुदयनस्यावन्तिनगरनाथेन महासेनेनमाययास्वविषयमुपनीययोगन्धरायणाख्यसचिवमुख्यप्रयुक्तनिर पायनोपायव्यक्तीकृतशक्तित्रयस्य वासवदतामिधानेन दुहितृरत्नेन महासेनस्य कीर्त्तिमपहृत्य स्वविषयप्राप्ति लक्षणा या कथा, तस्यां विदग्धाः (पृ. ४७) ।

कथासरित् सागर में उदयन द्वारा वासवदत्ता हरण की कथा का विस्तृत वर्णन है[२]।

भरन ने इस कथा को इन शब्दो में व्यक्त किया है-उज्जयन्यां किल प्रद्योतो नाम राजासीत्। तेन स्वसुता वासवदत्ता नाम सञ्जयाय राज्ञे विवाहेन दातुमनुमता। अत्रान्तरे स्वप्ने उदयनं वत्सराजं कौशम्बीपतिं चकमे। ततस्तया स्वयमेवं लोकद्वारा स्वानुरागवार्ता तस्मै ज्ञापिता। तत उदयन आगत्य तां हृत्वा नीतवान्। (पृ. ३०)।

इस कथा का वर्णन भवभूति ने भी किया है।[३] वल्लभ., दक्षि. चारि., सुमति., सना., शाश्वत ., कृष्ण. एवं चरणतीर्थ ने किसी विशेष कथा का उल्लेख नहीं किया है। कृष्ण. ने उदयन की तीन प्रकार से व्याख्या की है-

उदयनो वत्सराजस्तस्य कथासु कोविदाः पण्डिता ग्रामीणा वृद्धाः। यत्र ग्रामः स्वरस्तत्रवृद्धा निपुणा इति वा। तेन राजा इदं कृतमिदं कृतमीदृशः स्थित इत्यादिका कथेत्यर्थ यद्वा, उत्कृष्टं अयनं ज्ञानं येषांते उदयनास्ततः कर्मधाररयः। यद्वा, उत् उपरि गृहं यस्य तादृशः सूर्यो विष्णुरेव वा। (पृ. २१) पर प्रसंग को देखते हुए यहां प्रथम अर्थ ही उचित है।

सन्ध्यावलिपटहतां (३४)-इसका सामान्य अर्थ सन्ध्याकालीन पूजा में वाद्य रूप ध्वनि को करते हुए प्रतीत होता है। सन्ध्या का प्रयोग यद्यपि प्रातः कालीन एवं सायंकालीन दोंनों सन्ध्याओं के लिये होता है। पर यहाँ कवि का अभिप्राय सायंकालीन संध्या ही प्रतीत होता है। क्योकि कवि ने आगे-गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं[४] (श्लोक सं.३७) में रात्रि का ही वर्णन किया है।

बलि से तात्पर्य-

वलिः पूजोपहारे स्यात् करचामरदण्डयोः धरणिः (भरत., पृ. ३३)

पटह से तात्पर्य-

आनकः पटहो ज्ञेयः अमरः (पूर्ण. पृ. ५३)

---

१. वसिष्ठधेनोरनुयायिनं तमावर्तुमानं वनिता वनान्तात् -रघु. -२-१९
सम्बन्धमाभाषणपूर्वमाहुर्वृतः स नौ संगतयोर्वनान्ते। वही -२-५८

२. द्वितीय लम्बक-पंचम तरंग

३. मालतीमाधव द्वितीय अंक

४. मेघ. - ३७

एवं पटह ढक्केति च (कृष्ण. पृ. २३)

स्थिर. ने पटहतां की व्याख्या में आनकताम् (पृ. ४४) कहा है जिससे स्पष्ट है कि उन्होने पटह को आनकवाद्य का वाचक कहा है। पूर्ण. (पृ०५३) ने पटह को आनकवाद्यविशेष ही माना है। कृष्ण० (पृ० २३) ने पटह का अर्थ ढक्वा कहा है। जो सम्भवतः मुद्रण दोष के कारण ढक्का ही रहा हो। पर वल्लभ ने अपनी व्याख्या में ढक्कापटहादिवाद्यैः कहा है। जिससे प्रतीत होता है कि ढक्का व पटह अलग-अलग वाद्य हैं। पटह यहां ढक्का वाद्य का वाचक नहीं कहा जा सकता। अधिकांश स्थलों पर ढक्का का मृत्यु-स्थल पर बजाए जाने वाले वाद्य रूप में प्रयोग दृष्टिगत होता है। [१] और यहां पूजा कार्य का उल्लेख है। अतः ढक्का वाद्य सदृश ध्वनि का यहां कोई औचित्य नहीं है।

इतना निश्चित है कि यहां पटह किसी वाद्य विशेष का वाचक है। जिसका प्रयोग पूजा के समय में किया जाता था। यहां पर कवि ने मेघ को उस वाद्य सदृश ध्वनि करने को कहा है। सना. के शव्दो में अत्रकार्यकारणयोरमेदोपचार) तेन पटहशब्दो ध्वनौ वतंते, तेन सन्ध्यावलि निमित्तपटहध्वनिं कुर्वन्नित्यर्थः। (पृ. ६५)।

भरत. ने भी सना. के मत को ही देते हुए पटहशब्देनात्र कार्यकारणयोरभेदोपचारात् तत्कृतो ध्वनिरुच्यते, किं वा पटहतां पटहभावमेव कुर्वन् तत्तुल्य ध्वनिकारणादित्यापेक्षात्। ...केचितु सन्ध्यावलिपटहतां वृषोत्सर्गवाद्यम्, तथा चोत्तरतन्त्रं, शिवायतनोत्सृष्टास्ते सन्ध्यावलयो वृषा इतीति व्याचक्षते, किन्त्वत्र नयनविषयं यावदभ्येति भानुरिति व्यर्थ स्यात् वृषोत्सर्गवाद्ये कालनियमाभावात्। सन्ध्यासमयेऽङ्कितो वृषः सन्ध्यावलिरित्यत्र तु प्रमाणं नास्ति अप्रस्तुतञ्चेदम्।

रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः (३५)-वलि से तात्पर्य-

वलिश्चामरदण्डे च जराविश्लथचर्मणि विश्वः (मल्लि. पृ. ३२)

करोपहारयोः पुंसि बलिरि त्यमरः (चारि. पृ. ४६)

टीकाकारों ने तीन रूपों में इसके अर्थ को स्पष्ट किया है-

(१) मल्लि. (पृ. ३२) सना. (पृ.६६), चारि. (पृ.४६), एवं चरणतीर्थ (पृ.४३) के मत में रत्नो की कान्ति से व्याप्त दण्ड वाले चामरों के द्वारा। अर्थात् वेश्याओं ने रत्नजड़ित कंगन पहने हुए हैं चामर दण्ड पर उन रत्नो की कान्ति पड़ रही है। मल्लि. के शव्दो में रत्नानां कंकणमणीनां छायया कान्त्या खचिता रुषिता वलयश्चामरदण्डा येषां तैः (पृ. ३२)।

(२) स्थिर. (पृ. ४६), पूर्ण. (पृ.५४), समुति. (पृ. १३०), एवं भरत (पृ. ३४) के मत में--रत्नों की पंक्ति से व्याप्त दण्द वाले अर्थात् दण्ड ही मणि जटित हैं। पूर्ण के शव्दो में रत्नच्छायाखचितवलिभिः दण्डप्रत्युप्त-वज्रादिरत्नप्रभापटलावकुण्ठितमूलमध्याग्रगतशिल्परेखैः (पृ. ५४)।

---

१. (क) मृच्छकटिकम् - दशम अंक

(ख) चा[illegible] - ६१९

(३) वल्लभ. व शाश्वत. (पृ. ६७) ने यहां एक भिन्न ही अर्थ दिया है। वे वलिभिः का अर्थ उदररेखा करते हैं। वल्लभ. के शब्दो में रत्नच्छायया खचिताः प्रकटीकृता वलय उदरलेखा यैः तासां हि वासोयुगाच्छादितानां चामरमणिभासा मध्यवलयः प्रकटीभवन्ति (पृ. २१)। प्रथम अर्थ यहां ग्राह्य नहीं कहा जा सकता। यहा कवि का अभिप्राय रत्नजटित चामर दण्डो के सौन्दर्य का दिग्दर्शन कराना नहीं है और इस अर्थ को ग्रहण करने से क्लान्त हस्ताः शब्द का भी औचित्य नहीं रह जाता। यदि दण्ड में रत्न जड़े हुए हैं तो उन कठोर रत्नो के स्पर्श से क्लान्त हस्ताः कहा जा सकता है और कालिदास जैसे महान् कवि का रत्नो का वर्णन छोड़कर उनकी कान्ति से युक्त चामर दण्डों का वर्णन करना भी युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता।

यदि द्वितीय अर्थ ग्रहण करते है तो जब रत्न दण्ड पर ही जटित है तो कान्ति शव्द के प्रयोग की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती।

तृतीय अर्थ यहां अधिक उचित प्रतीत होता है। वेश्याएं अंग- प्रदर्शन के लिए जगत्प्रसिद्ध हैं। शाश्वत के शव्दो में -अस्मदभिमते तु वलयउदररेखाविभङ्गाः। यतोवेश्यानांसविलासावधूतचामरत्वेनसमुन्नमितबाहुलतिकासमुत्क्षिप्तविघटितोत्ती-यवस्त्रत या सम्मुखीन व्यजनदण्डरत्न- छायाभिर्विच्छुरिता एव वलयो भवन्तीति विभ्रमोक्तिरेषा अतएव चामरचालानानुषङ्गविभ्रमादेव किञ्चिद् भ्रमणेन तासां रसनामणयो विनिक्वणन्ति (पृ. ६७)।

स्थिर. ने भी विकल्प रूप में उदर रेखा रूप अर्थ को दिया है।[१] श्लोक में प्रयुक्त लीलावधूतैः विशेषण भी इसी भाव का द्योतक है। विलास-पूर्वक हिलाये जाते हुए चामरों के रत्नो की कान्ति वेश्याओं की उदर-रेखा का दिग्दर्शन करा रही है। वेश्याएं मानों अपने भिन्न-भिन्न क्रिया-कलापों के व्याज से अंग-प्रदर्शन कर रही हैं।

शान्तोद्वेगः (३६)-वल्लभ. ने 'शान्तोद्वेग' को स्तिमित नयनों का विशेषण मानते हुए कहा है-- 'विद्युन्मेषाभावाच्छान्तोद्वेगानि निवृत्तखेदान्यत स्तिमितानि नयनानि यत्र दर्शने' (पृ. २१) स्थिर. ने भी शान्तो व्यपगतः तडिदुन्मेषाद्यभावात् स्त्रीस्वभावसुलभं उद्वेगः त्रासः (पृ. ४७) कहा है। दोनों व्याख्याओं से ऐसा प्रतीत होता है कि विद्युत के चमकने से नेत्रों मे जो एक कम्पन होता है सम्प्रति मेघ द्वारा विद्युत न चमकाने से उद्वेग से रहित होने के कारण नेत्रों की स्तिमितता कही गई है।

स्थिर. ने एक अन्य अर्थ-बीभत्साकारिकरिकृत्तिदर्शनात् उद्वेगः प्राप्तो यः प्रशान्तः (पृ. ४७) अर्थ दिया है। ताण्डव नृत्य के समय शिव आर्द्र गज-चर्म धारण करते हैं। उसको देखकर पार्वती को जो उद्वेग होता था वह आर्द्रगजचर्म रूप में

१. अथवा खचिताः छुरिताः वलयः तासामेव चामरग्रहिणीनां उदररेखा यैस्ते तयोक्तास्तैः। स्थिर. - पृ.४६

स्थित मेघ द्वारा शान्त कर दिया गया है।

कृष्णपति ने इस शब्द के तीन अर्थ दिये हैं आर्द्रगजचर्म में किस प्रकार शिव को दूं उसके प्राप्त न होने पर कहीं शिव हस्ती सदृश मुख वाले मेरे पुत्र को ही न मार दें पार्वती का यह उद्वेग मेघ द्वारा शान्त कर दिया गया है।

(ख) शान्तोद्वेग मेघ का विशेषण है।

(ग) शान्त और उद्वेग मेघ के सम्बोधन हैं।[१]

तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो (३७)-इसका टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से विग्रह दिया है-

स्थिर. -तोयोत्सर्गात् उदकत्यागात् स्तनित मुखरः स्तनितेन गर्जितेन मुखरो वाचालस्त्वं (पृ. ४८)।

वल्लभ. - तोयोत्सार्गार्थं स्तनितेन गर्जितऽम्बरेण मुखरः सशब्दो . (पृ. २२)

चारि.-जलत्यागेन यत् स्तनितं तेन मुखरः शब्दायमानस्त्वं (पृ . ४८)

सना.-तोयोत्सर्गेण जलत्यागेन यत् स्तनितं गर्जितं तेन मुखरो वाचालो (पृ.७०)

भरत. -तोयोत्सर्गे जलत्यागे यत् स्तनितं गर्जितं तेन मुखरो (पृ. ३५)

मल्लिनाथ ने बिलकुल भिन्नअर्थ दिया है। तोयोत्सर्गस्तनिताभ्यां वृष्टिगर्जिताभ्यां मुखरः शब्दायमानो मा स्म भूः। कुतः। ता योषितो विक्लवाभीरवः। ततो वृष्टिगर्जिते न कार्ये इत्यर्थ। नात्र तोयोत्सर्गे स्तनितमिति विग्रहः विशिष्टस्यैव केवलस्तनितस्याप्यनिष्टत्वात् न च द्वन्द्वपक्षे ऽल्पाच्तरपूर्वनिपातशास्त्रविरोधः। लक्षण हेत्वोः क्रियायाः इति सूत्रएव विपक्षे-निर्देशन पूर्वनिपातशास्त्रस्यनित्यत्वज्ञापनादिति (पृ. ३४)।

मल्लि. ने यहां वर्षण एवं गर्जनाओं के द्वारा अर्थ लिया है। पूर्ण. ने भी तोयोत्सर्गो वर्षणम् तदर्थेन गर्जितेन, अथवा तोयोत्सर्गेण स्तनितेन च वाचालः (पृ. ५७) के द्वारा दोनों भावों को दिया है।

छायात्मापि (४०)-स्थिर. ने अपि को सम्भावना अर्थ में लेते हुए कहा है कि साक्षात् तुम्हारा रूप तो वहां है, प्रतिबिम्ब भी प्रवेश पा लेगा।[२] वल्लभ (पृ.२३) ने भी प्रतिबिम्ब रूप अर्थ ही दिया है।

पूर्ण. ने इसके दो अर्थ दिये हैं-

(क) आत्मापि बिम्बरूपं च शरीर भी व प्रतिबिम्ब भी।

---

१. अयमाशयः कथं मयेदानीं नागजिनमनविष्य देयमित्युद्वेगः पार्वत्याः स्थितः स चैव परास्तः स्यादित्याशयः। कदाचितलाभे ममैव पुत्रं करिमुखं हन्यादिति उद्वेगो वा। यद्वा, शान्तोद्वेग इति मेघविशेषणम्। अत्र स्थितोऽपि विसर्गो नोपलभ्यते... यद्धा, शान्तः विश्रान्तः अनन्तरमुद्वेगः ऊर्द्धजवशालिन इत्यामन्त्रणपदद्वयम्।-कृष्ण. - पृ. २४

२. छायात्मापि प्रतिबम्बस्वरूपम् अपि संभावनायाम्। साक्षात् त्वदीयरूपं तावदास्ताम्। तत्प्रतिकृतिरपि लप्स्यसे प्राप्स्यति प्रवेशं अन्तखस्थानम्। स्थिर.-पृ.५१

(ख) छायात्मा प्रतिबिम्ब शरीर। यह अर्थ लेने पर उन्होने अपि को समुच्चय अर्थ में लिया है और इसका सम्बन्ध छायात्मा के साथ न कर गम्भीरा के साथ किया है। गम्भीराया अपि अर्थात् निर्विन्ध्या आदि के साथ-साथ गम्भीरा नदी में भी तुम्हारा प्रतिबिम्ब शरीर प्रवेश पा लेगा।[१]

दक्षि. (पृ. २९) एवं मल्लि. (पृ.३६) ने एक भिन्न ही अर्थ दिया है। उनके अनुसार यद्यपि तुम स्वरूप से गम्भीरा नदी में प्रवेश करने की इच्छा नहीं करोगे तो भी तुम्हारा प्रतिबिम्ब शरीर प्रवेश पा लेगा। दक्षि. छायात्मा से परमात्मा प्रतिबिम्ब एवं प्रकृति से सांख्याभिमत प्रकृतितत्व अर्थ भी देते हैं।[२]

भरत ने यद्यपि प्रतिबिम्ब शरीर अर्थ ही लिया है। पर साथ में आत्मा को मन एवं बुद्धि का वाचक भी कहा है।[३]

मल्लि. व दक्षि. का मत यहां मान्य प्रतीत नहीं होता। कवि ने मेघ को नायक एवं नदियों को नायिका रूप में चित्रित किया है। ऐसे चित्रण में नायक की नायिका के पास जाने की अनिच्छा किसी भी प्रकार ग्राह्य नहीं कही जा सकती। कवि उत्तरार्द्ध में गम्भीरा नदी रूप नायिका के चटुल तरंग रूप कटाक्षों का वर्णन कर रहा है। ऐसे समय में मेघ रूप नायक का उस तरफ आकर्षित न होना हास्यापस्पद ही होगा। अतः शरीर एवं प्रतिबिम्ब भी प्रवेश पा लेगा यही अर्थ संगत प्रतीत होता है। इस अर्थ को ग्रहण करने पर अपि की भी सार्थकता हो जाती है।

सारों ने इसकी व्याख्या में कहा है-छाया प्रतिबिम्बं तद्रूपः आत्मा छायात्मा प्रकृतिसुभगस्य पुरुषस्य गम्भीरायाः, अनुपलक्षणीयमनोभावना चित्रादिलक्षितरुपमपि चेतसि प्रवेशं लभते। अन्यभावेषु व्याख्या। यथान्योऽपि यः प्रकृति सुभगो भवति तस्य छायात्मापि पट्टिकायालेख्यगतमपि रूपं कस्याञ्चिद्गम्भीराया गाम्भीर्यगुणशालिन्याश्रिते प्रविशति परोक्षेऽपि तदनुरागिणी भवतीत्यर्थः।[४]

यही भाव महिम.[५] एवं सुमति. (पृ. १३७) ने भी दिया है।

---

१. च्छायाप्रतिबिम्बरूपेण शरीरम्, उपरिगच्छतस्तवस्वच्छत्वात्सलिले आत्मापि बिम्बरूपं च। ... अथवा छायात्मा प्रतिबिम्बशरीरम्। आत्मा जीवे धृतौ देहे इति वैजयन्ती। अपिर्भिन्नक्रमे गम्भीराया अपीति निर्विन्ध्यादिभिः समुच्चयार्थः। पूर्ण. -पृ. ६१

२. छायात्मा प्रतिबिम्बात्मा...अनेन विशेषणेन परमात्मा प्रतिबिम्बं च ध्वन्यते। प्रकृति सुभगः प्रकृत्यासुभगः, सांख्याभिमतस्य प्रकृताख्यस्य तत्वस्य संयोगेन सुभग इत्यर्थोऽपि ग्राह्यः। ...त्वं स्वरूपेणेव तां गम्भीरां प्रवेष्टुं यद्यपि नेच्छसि, तथापि तवच्छायात्मा प्रवेश्यत्यवश्यम्। -दक्षि. पृ.२९

३. छायात्मापि प्रतिबिम्बशरीरमपि...... छायात्मापीत्यपिशब्दान्मनोऽपि, छायाप्रतिबिम्वम् आत्मापि स्वरूपमपीति, वा आत्माबुद्धिर्मनोऽपीति वा। -भरत. पृ. ३७

४. ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 47.

५. Ibid.

धैर्यात् (४०)-स्थिर. (पृ. ५१), वल्लभ. (पृ. २३), दक्षि. (पृ.२९), पूर्ण. (पृ. ६२), सुमति. (पृ. १३७), व शाश्वत (पृ. ७४) आदि टीकाकारों ने इसका अर्थ धैर्य गुण अथवा गम्भीरता लिया है।

सना. ने इसकी व्याख्या में कहा है-धैर्यात् हेताविय पञ्चमीं, यतस्त्वं धीरः अतो नार्हसीत्यर्थः। ल्यब्लोपे पञ्चमी वा, धैर्यमवम्बयेति भावः। (पृ.७३)

मल्लि. ने इसका एक भिन्न अर्थ दिया है--'धैर्याद्धाष्टार्यात् (पृ. ३६) पर यह अर्थ उचित प्रतीत नहीं होता। प्रथम तो धैर्य का धृष्ट अर्थ में प्रयोग ही दृष्टिगत नहीं होता और दूसरा कारण यह भी है कि वह मेघ जिसे सन्तप्तानां त्वमसि शरणं कहा गया है, उसका नदी रूप नायिका के प्रति धृष्टता का भाव कदापि युक्तिसंगत नहीं है।

यहां यही भाव ग्राह्य है कि मेघ सन्देश देने के लिए तीव्रगामी भी है पर गम्भीरा के चटुल शफरोद्वर्तन प्रेक्षण इतने आकर्षण युक्त हैं कि धैर्य गुण युक्त होते हुए भी यह उनको अनदेखा कर आगे नहीं बढ़ पाएगा।

अत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः(४३)-इस सन्दर्भ में टीकाकारों ने दो कथाओं का उल्लेख किया है। स्थिर. (पृ.५५) , वल्लभ. (पृ. २५), दक्षि. (पृ. ३१), चारि. (पृ. ५५) पूर्ण. (पृ. ६६-६७), सना. (पृ.७८), भरत. (पृ.३९), व चरणतीर्थ (पृ. ५१) के मत में उपद्रव से पीड़ित देवगणों की रक्षा के लिए शिव ने स्ववीर्य पार्वती में स्थापित किया। पार्वती में उस वीर्य को धारण करने के सामर्थ्य को न देखते हुए शिव ने उस वीर्य को अग्नि के मुख में डाल दिया। गंगा द्वारा सरकण्डो में डाले गए उस वीर्य से स्कन्द का जन्म हुआ। रामायण में भी इस कथा का उल्लेख है।[1] पर शाश्वत ने यहाँ अन्य कथा का उल्लेख किया है- इदमत्र व्याख्यानम् -शङ्करो गौर्या सह गुहायां समारब्धमहामैथुनो वह्निना द्वारि स्थितेन उक्तं भिक्षां मे देहि इति। तेन कुद्धेन प्रतीच्छ भिक्षाम् । इति बहिःनिर्सृत्य हुतवहमुखे रेतः प्रक्षिप्तम्। मानसरसरस्तीरे शखणे...(पृ. ७८)।

सुरभितनयालम्भजां ...कीर्तिम् (४५)-इस सन्दर्भ में स्थिर० (पृ.५७-५८), वल्लभ. (पृ. २६), सना. (पृ. ८०), सुमति. (पृ. १४३), मल्लि. (पृ. ४१), भरत. (पृ. ४०-४१), कृष्ण. (पृ. २८) व चरणतीर्थ (पृ. ५३) ने पूरी कथा नहीं दी है पर इतना स्पष्ट किया है कि रन्तिदेव राजा ने यज्ञ में अनेक गायों का वध किया है। उनके चर्म से प्रवाहित रक्त चर्मण्वतीनदी रूप में रन्तिदेव की कीर्ति का द्योतक है।

दक्षि. (पृ. ३२), पूर्ण. (पृ.६९-७०), एवं चारि. (पृ.५७), ने विस्तृत कथा दी है। उनके मत में महाभारत में इस कथा का निर्देश है कि दशपुर के राजा रन्तिदेव की गायों ने देव गायों के कांचन सुर, श्रृंग आदि अवयवों को देखकर उनसे इस अलौकिक कान्ति का कारण पूछा। उन्होने उत्तर दिया.. यज्ञों मे हम विधिपूर्वक आहुत की गई थीं जिससे यह रूप प्राप्त हुआ। गायों ने रन्तिदेव से कहा-हम पर

---

१. बालकाण्ड - सर्ग ३७

उपकारार्थ आप यज्ञों में हमारी आहुति दें, जिससे हम दिव्यरूप को प्राप्त करें। तब रन्तिदेव ने अनेक गोमेघ यज्ञ किए और उनके रक्त से चर्मण्वती नदी बनी जो मानो नदी रूप में रन्तिदेव की कीर्ति ही है।

कृष्ण. ने शाश्वत के मत को देते हुए कुछ भिन्न कथा दी है। कृष्ण. के शब्दो में-शाश्वतस्तु रन्तिदेव ब्राह्मणस्तस्य गोवधो देवशैर्दृष्टः, स तेन तत्र न तत्प्रचारः तद्वनं जगाम। तत्रारोपितवृक्षान् भोक्तुमागता सुरभिकन्या तेन हता, तच्छोणितेन या नदी जातेत्याह। (पृ. २९)।

महाभारत[१] एवं श्रीमद्भागवत[२] में रन्तिदेव का विस्तृत वर्णन है।

जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् (५०)-गंगा को जह्नु राजा की कन्या कहा गया है। कृष्ण के शब्दो में पुरा जह्नुना पीता पुनः सुतात्वेन कल्पिता (पृ.३०)। रामायण में यह वर्णन है कि राजा जह्नु के यज्ञ में गंगा के प्रवाह से विक्षेप हुआ। क्रुद्ध होकर राजा जह्नु गंगा-प्रवाह का पान कर गए। फिर देवताओं की प्रार्थना पर उन्होने गंगा को अपने कान से प्रवाहित किया। तब से गंगा को जाह्नवी नाम से कहा जाने लगा।

सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्ति के सन्दर्भ में वल्लभ. (पृ.२८-२९), स्थिर. (पृ.६३), पूर्ण. (पृ. ७८), सुमति. (पृ.१४९) एवं कृष्ण. (पृ. ३०). ने कथा का उल्लेख किया है। कपिल क्रोधाग्नि से भस्म सगर के ६० हजार पुत्रों का भगीरथ के तप से पृथ्वी पर लाई गई गंगा के जल से उद्धार हुआ। सारो. व महिम. ने भी इस कथा का उल्लेख किया है।[३]

कृष्ण. ने सगर शब्द को स्पष्ट करते हुए इस कथा के सम्बन्ध में रामायण को भी उद्धृत किया है-सगरो बाहुपुत्रः, गरेण सहितो जात इति। तथा सपन्त्या तज्जनन्यै विषं दत्तमिति पुराणवार्त्ता। पुरा भगीरथेन गङ्गामानीय तदम्भस्तर्पिताः पितामहाः स्वर्गं जग्मुरियमपि पुराणकथैव। तथा रामायणे-गङ्गाम्भसा तत्र तर्पिताः सगरात्मजाः दिव्यमूर्तिधरा भूत्वा जग्मुः स्वर्गं महात्मनः इति (पृ. ३०)।

दक्षि. व भरत. ने यह कहकर कि कथा प्रसिद्ध है कोई कथा नहीं दी। सगर-कथा का वर्णन रामायण में भी प्राप्त होता है।[४]

निष्फलारभ्ययत्नाः (५४)-सभी टीकाकारों ने निष्फलकार्यव्यापार भाव को ही ग्रहण किया है। स्थिर. के शब्दों में निष्फलारभ्ययत्नाः निष्फलः अशक्यत्वान्निष् प्रयोजनोऽसो आरम्भ उपक्रमः। आग्रहो येषां ते तथाभूताः। (पृ. ६७)

पूर्ण. के मत में विशिष्टप्रयोजनशून्येषु कार्येषु चापलमात्रेणोद्योगाः यत्ना इति बहुवचनं क्रियासमभिहारस्यासह्यतां दर्शयति (पृ. ८४).

इस सन्दर्भ को देखते हुए यही अर्थ यहां मान्य है। पर दक्षि. ने

१. द्रोणपर्व- अध्याय ६७, एवं वनपर्व-अध्याय २९४
२. नवम स्कन्ध- अध्याय २१
३. ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 67.
४. बालकाण्ड- सर्ग [illegible]

निष्फलारभ्ययत्नाः का दो प्रकार से विग्रह कर दो अर्थों को दिया है - निष्फलारभ्ययत्नाः आरभ्ययत्नाश्चेति कर्मधारयः । आरभ्ययत्नाः कर्मव्यापारः । आरभ्ययत्नानां नैष्फल्यं मेघाभिलङ्घनस्याभावात् । यद्वा निष्फला इति पदच्छेदः । निष्फला अफलाः । रम्भयत्नाः । संरम्भयत्नाः । रम्भस्तु संरम्भे स्त्री मोचाप्यसरसोरिति केशवः (पृ. ३७)

यहां दक्षि. ने रम्भ का जो क्रोध भाव दिया है । वह इतना रुचिकर नहीं । उनके द्वारा दो अर्थों को देना ही यह सिद्ध करता है । कि उन्हे यहां प्रसंग को दे को देखते हुए निष्फलकार्यव्यापार अर्थ ही अभीष्ट है ।

भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् (५७)-स्थिर. (पृ. ७०) , वल्लभ. (पृ. ३२), एवं पूर्ण. (पृ.८७) के मत में परशुराम ने क्रौंच पर्वत का अपने बाणों से भेदन किया था । क्रौचरन्ध्र मानो परशुराम के यश प्रसरण का मार्ग है । दक्षि. (पृ.३९), मल्लि. (पृ.५०) एवं चारि. (पृ. ६९) के मत में परशुराम ने कार्तिकेय से स्पर्धा करते हुए क्रौंच पर्वत को बाण से छिद्रयुक्त किया था । दक्षि. ने इस सम्बन्ध में मुरारि को उद्धृत किया है -यद्बाणव्रणवर्त्मना शिखरिणः क्रौञ्चस्य हंसच्छलादयाप्यस्थिकणाः पतन्ति स पुनः क्रुद्धो मुनिभार्गवः (पृ. ३९)।

सना. (पृ. ९४) एव भरत. (पृ. ४८) के मत में कैलास स्थित शिव से अस्त्र विद्या ग्रहण करने के लिए परशुराम ने कैलाश पर आने जाने के लिए क्रौंच पर्वत का भेदन कर मार्ग बनाया था।

चरणतीर्थ (पृ. ६५) के शब्दों में परशुराम ने शिव से प्राप्त अस्त्र-विद्या द्वारा क्रौंचपर्वत का भेदन कर छिद्रात्मक मार्ग किया था ।

वायुपुराण [1] में यह रन्ध्र कार्तिकेय की शक्ति का द्योतक कहा गया है । महाभारत [2] में भी स्कन्द द्वारा क्रौंच विदारण का उल्लेख है । पर टीकाओं के अध्ययन व कवि के प्रसंग को देखते हुए यही उचित है कि यह क्रौच रन्ध्र परशुराम ने किया था ।

भङ्गीभक्तया (६०)-कवि ने मेघ को कामरूप कहा है । यहां पर कवि मेघ को पार्वती के आरोहण की सुलभता के लिए सोपान रूप हो जाने का निर्देश करता है ।

वल्लभ. ने इसकी व्याक्या करते हुए कहा है-भङ्गीभक्तया तरंगविच्छितया कल्लोलाकारेण विरचितदेहः (पृ. ३३) ।

स्थिर. ने भी इसी प्रकार का भाव दिया है । [3] पूर्ण . ने इसके दो अर्थ दिगे हैं-

(क) शिव के प्रति भक्ति होने के कारण सोपान सदृश भंग होकर ।

---

१. वायुपुराण - ४१।४०
२. महा. भा.-वनपर्व अ. २२७.
३. भङ्गानां इव भङ्गी तस्या भक्तिः विच्छितिः तया तरङ्गपङ्क्तिनिम्नोन्नताकारेण । -स्थिर. पृ ७३

(ख) प्रस्तर खण्ड के विन्यास विशेष रूप द्वारा अथवा विभाग द्वारा।[१]

दक्षि. (पृ. ४०) के मत में भक्तया ईश्वरभक्ति के कारण भगवान होकर। मल्लि. (पृ. ५२) ने भक्त्या का अर्थ रचना कर पर्व रचना रूप में शरीर को करके कहा है।

सना. ने दोनों ही अर्थ दिये हैं-खण्ड-खण्ड रूप में शरीर का विभाग करके अथवा सेवा के कारण भंगरूप शरीर करके।[२]

भरत. के शब्दो में -भङ्गी कामरुपत्वाद् विभङ्गयुक्तः सन्, भक्तया आदरेण विभागेन, (पृ. ४९) चरणतीर्थ ने कहा है-भङ्गी भक्तया भङ्गीनां पर्वणां पगधियां इति लोके भक्तया विभागेन (पृ. ६७)।

यहां भक्तया का भक्तिभाव अर्थ अधिक रुचिकर प्रतीत होता है। भंगी के द्वारा ही खण्डरूप में विभक्त अर्थ की अभिव्यक्ति हो जाती है। अतः यदि भक्तया का विभाग अर्थ लेते हैं तो वह केवल पुनरावृत्ति का ही द्योतक प्रतीत होता है।

धर्मलब्धस्य (६१)- धर्म का प्रयोग इन अर्थों में होता है - निदाघ ऊष्मणि ग्रीष्मे स्वेदे धर्मस्तु तेष्वपि। आतपे तद्दिने च वैजयन्ती (पूर्ण. पृ. ९३)

वल्लभ. (पृ. ३४) व स्थिर. (पृ. ७४) ने धर्म का निदाघ अर्थ दिया है। पूर्ण. के मत में धर्म से तात्पर्य कामरुप ज्वर की सन्तप्तता से है। उनके अनुसार धर्म का ग्रीष्मकाल अर्थ यहां उचित नहीं परमेश्वर निवासभूत, उस स्थल पर देव युवतियों को सतत सुख प्राप्त होने के कारण आतप बाधा उचित नहीं।[३] दक्षि. ने धर्म के दो अर्थ दिए हैं-

(क) गर्मी के समय में प्राप्त हुए

(ख) रतिक्रीड़ा से उत्पन्न थकान के समय प्राप्त हुए।[४]

चारि. (पृ. ७२) ने धर्म का श्रम अर्थ दिया है। यह अर्थ लेने पर धर्मलब्धस्य मेघ का विशेषण बन जाता है। इतने बड़े मार्ग को पार करने के कारण मेघ भी थकान से युक्त हैं। अतः थकान को प्राप्त हुए (मेघ)।

---

१. भङ्गया सोपानसदृशभङ्गपरम्पराविशिष्टः भक्तया शिवयोरूपरि प्रकृष्टभावेन, द्राम्भिकत्वे पादस्पशोत्सवभाजनतानुपपत्तेः। अथवा भङ्गीभक्तया भङ्गीनां खण्डप्रस्तराणां भक्तया विन्यासविच्छेदरूपया विभागेन वा। .. पूर्ण. -पृ.९१

२. भङ्गया खण्डखण्डविच्छेदरूपया भक्तिविर्भागस्तया विरचितवपुः यद्वा भङ्गी सन् विरचितवपुः। क्या? भक्तया, सेवया, तथा च सोपानत्वं युक्तं भवति। सना.-पृ. ९७

३. धर्मलब्धस्य स्मरज्वरसंतापसमये प्राप्तस्येत्यर्थःग्रीष्मकाले लब्ध इत्यर्थो न घटते, सुरयुवतीनां विशेषतः परमेश्वरनिवासभूते प्रदेशे सततसुखे ग्रीष्मबाधोक्तेरनौचित्यात्। पूर्ण. -पृ. ९३

४. धर्मब्धस्य धर्मकाललब्धस्य ननु वर्षाकालो वर्तते . कथं धर्मकाललाभः। देवभूमित्वात् कैलासे षड्ऋतवः सर्वदा सेवन्ते। वक्ष्यति च -हस्ते लीलाकमलमलकम् इति अथवा धर्मशब्देन श्रमो विवक्षितः लब्धस्येत्यर्थः। दक्षि. -पृ. ४१

मल्लि. के मत में धर्म गर्मी का बोधक है। यद्यपि मेघ वर्षा का सूचक है पर देवभूमि होने से वहां सब ऋतुओं की विद्यमानता होने के कारण ग्रीष्मकाल का होना भी उचित है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि यह वर्षाकाल का प्रथम मेघ है और वर्षा से पूर्व ग्रीष्मकाल होता है। उसी के द्योतनार्थ कवि ने धर्म का प्रयोग किया है।[१]

क्षणमुखपटप्रीतिम् (६२)-स्थिर. ने इसकी व्याख्या में कहा है-क्षणं मुहूर्त मुखपटप्रीतिं मुखपटः करिणां वदनाच्छादनं वासः तेन वा प्रीतिः तुष्टिः तां ऐरावतस्य त्रिदशकरिणः। कुञ्जराः किल मुखपटेन प्रावार्यन्ते (पृ.७५) पर यदि वस्त्र डालकर हाथी को रोकना यहां अभिप्रेत होता तो वस्त्ररूप में स्थित मेघ ऐरावत के लिए प्रीतिकर नहीं हो सकता। इस संदर्भ में अन्य टीकाकारों के मत का इस प्रकार हैं-

वल्लभ. -गजा हि मुखपटेन प्रीयन्ते (पृ. ३४)

दक्षि.-क्षण ग्रहण सलिलादानमुहूर्तविवक्षायाम् मुखपटप्रीतिं मुखावगुण्ठनपटप्रीतिं (पृ. ४१)।

चारि. -क्षणं मुहूर्त मुखपटप्रीतिं मुखावगुण्ठनवस्त्रलाभप्रीतिं (पृ. ७३)।

पूर्ण. -क्षणमुखपटप्रीतिं प्रतिगजादर्शनाय मुखे निधेयं दृष्टितिरोधायकं वस्त्रं मुखपटः तर्जन्यां प्रीतितत्कृत्यानुष्ठानात्। क्षणमिति चिरावस्थाने मदनिध्नस्य तस्य समाकर्णनादिकदर्थन प्रसङ्गात्प्रमादः परिहर्तव्य इति द्योत्यते (पृ. ५३)

सना.-निदाघसन्तप्तस्य हस्तिराजस्य क्षणमल्पकालं व्याप्य मुखपटप्रीत्युत्पादकत्वं भविष्यति। न तु हस्तिनः सुखार्थं मुखे आर्द्रवस्त्राणि दीयन्ते। (पृ. ९९-१००)।

सुमति.- क्षणमात्रं वदनस्य संतोषं कुर्वन् (पृ. १६१)

शाश्वत.-ग्रीष्माभितप्तदन्तिनां मुखे (पटाः) जलार्द्रा दीयन्ते, त्वं च मार्ग-गमनवशाद् ऐरावणस्य मुखदेशे भवन् जलभररिनगितनीलवस्त्राकृतिः मुखपटसुखं उत्पादयिष्यसि इत्यर्थः (पृ. १००)

भरत. -क्षणमल्पकालं मुखपटेन प्रीतिं गुरुं कुर्वन् सम्पादयन्...ग्रीष्माभितप्ते दन्तिनां हि मुखे नेत्रे च वस्त्राणि दीयन्ते (पृ. ५०)।

चरणतीर्थ.- ऐरावतगजस्य मुखे बद्धः पटः तेन सह प्रीतिं कुर्वन् लोके गजानां मुखेषु पटाः बध्यन्ते ते पहवटा इति प्रसिद्धाःतेन पहवटेन प्रीति कुर्वन् (पृ. ६९)।

वासुदेवशरण अग्रवाल ने मल्लि. के जलदानकाले का अर्थ हाथी के पानी पीने का समय किया है। और यह कहकर कि पानी पिलाते समय हाथी के मुंह पर कपड़ा डालने की प्रथा का कहीं प्रमाण नहीं मिलता। अथः मल्लि.का मत अनुचित है, उन्होने क्षण का उत्सव अर्थ करते हुए कहा है कि उत्सव में जलू...

१. धर्मे निदाघे लब्धस्य। धर्मलब्धत्वं चास्य देवभूमिषु, सर्वदा सर्वर्तुसमाहारात्प्राथमिकमेघत्वाद्वा। यथोक्तम् -आषाढस्य प्रथम इति। मल्लि. -पृ.५३

निकालने के लिए हाथी को वस्त्र व आभूषणों से सुसज्जित किया जाता है। अतः यहां पर भी उत्सव के समय की सजावट का मुख-वस्त्र भाव है।[१] पर यह अर्थ मान्य नहीं होता। यहां मल्लि. के जलदानकाले से तात्पर्य हाथी के पानी पीने का समय न होकर मानसरोवर से मेघ के जल ग्रहण का समय कहा गया है।

सामान्य व्यवहार में भी यह देखा जाता है कि गर्मी से सन्तप्त होने पर शीतलजल युक्त वस्त्र द्वारा मुखावगुण्डन सुख का बोध कराता है। इसी सुख का अनुभव कवि ने यहां जलयुक्त मेघ द्वारा आवरित ऐरावत को भी कराया है।

उत्तरमेघ

चूड़ापाशे (६४)-पाश का अनेक अर्थों में प्रयोग होता है पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे अमरः (कृष्ण. पृ. ३६)

चूड़ापाश से तात्पर्य -

धम्मिलः संहताः कचाः। शिखा चूड़ा केशपाशे अमरः (पूर्ण. पृ. १०१)

स्थिर. (पृ. ७९), चारि. (पृ. ७८), मल्लि, (पृ.५९) कृष्ण(पृ. ३६) आदि टीकाकारों ने केशपाश अर्थ दिया है। पूर्ण. (पृ. १०१) ने बद्धकेशकलाप कहा है। भरत ने केशविन्यासविशेष अर्थ देते हुए अन्य मत भी उद्धृत किए हैं-चूड़ापाशे केशविन्यासविशेषे..चूड़ापाशे केशसमूहे इत्यन्ये कौमुदीकारस्त्वाह शिखास्था कुसमुबन्धनी केशलता चूड़ापाशः स च यक्षाङ्गनानामेव, यदुक्तम् -चूड़ापाशो भवेद् यक्षस्त्रीणां नत्वन्ययोषिता' मिति (पृ.५३)।

त्वदुपगमजं यत्र नीपं (६४)- कवि ने अन्य पुष्पो के उत्पत्तिकाल का उल्लेख नहीं किया है। पर नीप की उत्पत्ति के समय को दिया है। इसको स्पष्ट करते हुए भरत ने कहा है कि कमल आदि की तो अनेक कालों में उत्पत्ति होती है। पर नीप अर्थात् कदम्ब वर्षाकाल के अतिरिक्त अन्य किसी काल में प्राप्त नहीं होता-

पद्मादीनामकालेऽपिसमुत्पत्तिस्तु वीक्ष्यते।
यत्तु वर्षाभवं द्रव्यं प्रायस्तन्नान्यदा भवेत्॥ (भरत. पृ. ५३)

पूर्ण. के मत में नीप के काल का उल्लेख यक्ष की मेघ प्रति चाटुकारिता का द्योतक है। इसीलिए उसका स्थान भी सीमान्त कहा गया है।[२]

चेतसा कातरेण (७४)- स्थिर. (पृ.८८), वल्लभ. (पृ.४०), सारो. (पृ. ९५), भरत (पृ. ५८) एवं चरणतीर्थ (पृ.८८) आदि टीकाकारों ने कातर का अर्थ अधीर किया है। अधीरता का कारण विरह है। पूर्ण. ने कातर का भय अर्थ दिया है-

अतिस्नेहाविष्टत्वात्तत्तदनिष्टमशनिपातचण्डवातादिकमुत्प्रेक्ष्य सभयेनेत्यर्थः। (पृ.११५)

---

१. मेघदूत -वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. २२४

२. ऋत्वन्तर संबन्धिनां लीलाकमलामादीनामर्थोन्नेयत्वेनोक्तो, नीपस्यतु त्वदुपगमजमिति कण्ठोक्तया सर्वेभ्यस्त्वदीयं कदम्बमेव [illegible]संपदाकतया प्रशस्तेन सीमन्तस्थानेन धार्यत इति मेघस्य चाटुकरणार्थम्। पूर्ण. पृ. १०२

मल्लि. ने यद्यपि भय अर्थ ही लिया है पर उनके मत में भय यहां आनन्द रूप ही है- कातरेण भीतेन चेतसा । भयं चात्र सानन्दमेव । वस्तूनामनुभूतानां तुल्यश्रवणदर्शनात् । श्रवणात्कीर्तनाद्वापि सानन्दा भीर्यथा भवेत् इति रसाकरे दर्शनात् । (मल्लि. पृ. ६७)

प्रथम अर्थ अधिक उचित प्रतीत होता है । प्रिय वस्तु के सदृश अन्य वस्तु के दृष्टिगत होने पर अपनी प्रिय वस्तु का स्मरण अधीरता को उत्पन्न करता है । यहां पर क्रीड़ाशैल सदृश मेघ को देखकर यक्ष को उस क्रीड़ा-शैल का स्मरण हो आया है । जो इस विरहावस्था में उसके चित्त को अत्यन्त व्याकुल कर रहा है ।

प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि (७४) क्रीडा-शैल इन्द्रमीलमणियुक्त एवं कनककदलीवेष्टित, है, मेघ भी नीलवर्ण एवं विद्युत् युक्त होने से कनककदली सदृश कान्तिमान् है । अतः मेघ को देखकर यक्ष को क्रीड़ाशैल का स्मरण हो आया है ।

स्थिर., वल्लभ. , सुमति., दक्षि., चारि., पूर्ण., मल्लि., व चरणतीर्थ आदि टीकाकारों ने त्वां को प्रेक्ष्य के साथ सम्बद्ध कर उपान्त स्फुरित तडित् युक्त तुमको (मेघ) देखकर उसका (क्रीड़ाशैल) स्मरण करता हूं-भाव लिया है ।

भरत ने त्वां तमेव स्मरामि एवं त्वां प्रेक्ष्य तमेव स्मरामि रुप विग्रहों को देते हुए दो अर्थ दिए हैं-त्वां तमेव स्मरामि चिन्तयामि, स एवायं क्रीडाशैलः साक्षाद्भूत इति मन्ये इत्यर्थः । साम्यमाह, कीदृशं त्वां ? प्रेक्ष्या दर्शनीया उपान्ते समीपे स्फुरिता दीपिता तडित् विद्युत् यस्य तादृशम् किंवा उपान्तस्फुरिततडितं त्वां प्रेक्ष्य विशेषेण दृष्टवा तमेव देशान्तरगतं सदृशवस्तुदर्शनेन पूर्वानुभूतस्य हि स्मृतिर्जायते । (पृ. ५८)

कृष्ण ने भरत का अनुकरण कर दोनों विग्रहों को देते हुए प्रेक्ष्य के अनेक अर्थ दिए हैं-कातरेण चेतसा तमेव त्वां स्मरामि । न घनोऽयं किन्तु स एवक्रीड़ाशैलः इत्याकारेण जानामीत्यर्थः । कीदृशम् प्रेक्ष्येषु रमणीयेषु चतुर्दिक्षु स्फुरित्तडिद् यस्य तम् । यद्वा, प्रेक्ष्य रम्येति मेघामन्त्रणे । यद्वा, त्वां प्रेक्ष्य तत्स्मरामीत्यन्वयः । सदृशा दृष्टचिताद्या इत्युक्तेः: (पृ . ३९) यहां भरत व कृष्ण का प्रथम अर्थ मान्य नहीं कहा जा सकता । स्मृ से तात्पर्य स्मरण से है और स्मरण उस वस्तु का किया जाता है जो प्रत्यक्ष उपस्थित न हो यदि यहां हम मेघ में शैल का आरोप कर देते हैं तो स्मरामि की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती । कवि ने मेघ को शैल सदृश कहा है और सदृश वस्तु के देखने पर पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण स्वाभाविक है-

सदृशानुभवादन्यस्मृतिः स्मरणमुच्यते (मल्लि. पृ. ६७)

मल्लि. ने इसी भाव को ध्यान में रखते हुए 'त्वां' को प्रेक्ष्य के साथ सम्बद्ध करते हुए लिखा है-त्वां प्रेक्ष्य तमेव क्रीडाशैलमेव स्मरामि सदृशवस्त्वनुभवादिष्टार्थस्मृतिर्जायत इत्यर्थः । अत एवात्र स्मरणाख्योऽलंकारः । निरुक्तकारस्तु त्वां तमेव स्मरामि इति योजयित्वा मेघे शैलत्वारोपमाचष्टे तदसंगतम् । अनार्जवात् अभ्राकारारोपस्यपुरोवर्तिन्यनुभवात्मकत्वेन स्मरतिशब्दप्रयोगायोगात् । शैलत्वभावना

स्मृतिरित्यपि नोपपद्यते भावनायाः स्मृतित्वे प्रमाणाभावादनुभवायोगात्सादृश्योपन्यासवैयर्थ्याश्च । विसदृशेऽपि शालग्रामे हरिभावनादर्शनादिति । (पृ. ६७)

वल्लभ. ने 'स्मरामि' की व्याख्या में सादृश्यात्प्रियत्वाच्च स्मरणम् (पृ. ४०) कहा है जो स्पष्ट करता है कि मेघ में शैल का आरोप नहीं किया गया है अपितु सदृशता के कारण मेघ को देखकर यक्ष को क्रीड़ा -शैल का स्मरण हो आया है।

द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ (७७)- कुबेर की नव निधियों में शंख व पद्म है।[१] ये सम्भवतः मङ्गलार्थ गृहद्वारों पर पुरुषाकार रूप में चित्रित की जाती थीं। महिम के शब्दो में तौ हि अधोमागे कलशमुद्रावालिख्य अग्रे पुरुषरुपावेव गृहद्वारशाखासु अद्यापि मनुष्यलोके मङ्गलार्थमालिख्येते।[२] सारोद्धारिणी ने इसी भाव को दिया है।[३] इन व्याख्याओं से ऐसा प्रतीत होता है। कि यह आकृतियां गृहद्वार के निचले भाग में चित्रित की जाती थीं।

पूर्ण. के शब्दो में लिखितवपुषौं द्वारपालत्वेन चित्रनिवेशितनिजलक्षणविशिष्टशरीरौ । शङ्खपद्मो शिरसि शङ्खेन लाञ्छितो निधिदेवताविशेषः शङ्खनिधि। , पद्मेन तु पद्मनिधिः, तौ । (पृ.११८) यहां शिरसि से ऐसा बोध होता है। कि सम्भवतः यह गृहद्वारों के ऊपर भाग में चित्रित की जाती हों।

भरत के मत में पाप-नाशार्थ एवं दुष्ट तत्वो के निवारणार्थ ये चिह्न चित्रित किये जाते है-

शङ्खपद्मौ निधी यत्र सुरभिर्मत्तकासिनी ।
वृषभैराचिता चित्रे तद्गृहं कल्मषं त्यजेत् ।।

शङ्खपद्मौ निधी चित्रे दृष्टवा दुष्टैर्विमुच्यते । (भरत. पृ. ६१)

अथवा सेवक स्वामी के प्रसादनार्थ उसके चिह्नो को चित्रित करता है। यहा पर यक्ष कुबेर का सेवक है। अतः निधि देवता कुबेर के चिह्नो को चित्रित करना यक्ष की कुबेर के प्रति चाटुकारिता का द्योतक है।

कृष्ण के मत में प्रावृट् काले द्वारे आचारात्शङ्खपद्मादीनि स्त्रियो लिखन्ति। (पृ. ४०)

सूर्यापाये (७७)- 'अपाये' के अर्थ व प्रयोग को सारो. ने इन शब्दो में व्यक्त किया है-सूर्यापाये सति भास्करस्याभावे सति । अपायो विपत् स च प्रस्तावात् दुर्दिनम् अपरागो वा । तदभिभूते खौ यथावस्थितां कियं न किञ्चिन्नूनामेव पुष्णाति।

---

१. महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ । मुकुन्दीलाश्च खर्वश्च निधयो नव । -ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 90.
२. ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 91.
३. तौ हि अधोभागे पुरुषरूपौ गृहद्वारशाखासु मङ्गलार्थम् आलिख्येते । सारो.टीका. -पृ.९८

यत् सूर्यापाये सूर्यापाये इति तन्न, अत्र सर्वथा छायाविनाशस्यानभिप्रेतत्वात्, यदत्र क्षामच्छायत्वमेवोक्तम्अतस्वाभिख्यां न पुष्यतीत्यवादि, यक्षे च कुशलिनि सर्वथा यदत्र छायाध्वंसस्यासंभवात् (पृ.९९) ।

पूर्ण. के शव्दो में सूर्यापाये भास्करस्य देशाद्देशान्तरप्राप्तो ।... अत्रोपमानेन भवनस्यापि स्वतः सिद्धायाः शोभाया अविनाशेऽपि स्वस्य विरहादनुज्जवलत्वम्, पुनः स्वसभागमे तस्य भविष्यदनुपमरामणीयकत्वं च द्योत्यते (पृ. ११९)

कृष्ण. ने इसी भाव को इन शब्दो में कहा है-सूर्यदृष्टान्तेन च स्वस्य पुनरपि गमनेन भवनस्य कान्तिमत्वं सूचितम् (पृ.४१) ।

श्यामा (७९)-स्थिर. (पृ.९४) एवं सारो. (पृ. १००) ने श्यामला अर्थ कर इसे यक्षिणी की वर्णाभिरामता का द्योतक कहा है । पूर्ण. (पृ. १२१) ने भी कुवलयदलश्यामवर्णा अर्थ लिया है। दक्षि. ने श्यामाश्यामवर्णा, हरित-वर्णेत्यर्थः अस्यार्थस्यानुकूलमेव वक्ष्यति श्यामास्वङ्गमि ति । यद्वा श्यामायौवनमध्यस्था प्रौढ़ा निष्क्रान्त यौवना इत्युत्पलमालायाम् (पृ. ५१) कहा है । मल्लि. (पृ. ७१) ने भी यौवनमध्यस्था अर्थ दिया है । चारि. के शब्दों में श्यामा यौवनमध्यस्था हरितवर्णा वा षोडषवार्षिकी (पृ. ९५) । वल्लभ. ने (पृ. ४३) एकवार प्रसूता कहा है । महिम ने अप्रसूता अर्थ लेते हुए कहा है-अप्रसूता भवेच्छ्यामा तन्वी च नवयौवना । [१] भरत ने श्याम का सौकुमार्यादि गुण सुख अर्थ लिया है-

शीते या चोष्णगात्री स्यादुष्णे च स्पर्शशीतला ।
प्रकृत्या सुकुमाराङ् गी सा श्यामा कथिता बुधैः ।। (भरत. पृ. ६२)

पर साथ ही केचित् कह अन्य अनेक अर्थ भी दिए हैं । [२]

कृष्ण. (पृ. ४१) ने भरत का मत दिया है । उनक मत में यहां वर्ण की दृष्टि से श्यामा अभिप्रेत नहीं क्योकि नायिका सर्वत्र गौरांगी ही वर्णित की जाती है । यहां श्यामा का अर्थ वर्ण की दृष्टि से श्यामा नहीं ले सकते । यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि नायिका अवश्य ही गौरांगी हो, श्यामवर्ण की भी अपनी अपूर्व सुषमा होती है । पर कवि ने यास्यत्युरू सरसकदलीस्तम्बगौरश्चलत्वम् (मेघ. ९३) कहा है । जब उरु गौरवर्ण है तो वह श्यामवर्ण कैसे हो सकती है । यहां श्यामा का अर्थ यौवनमध्यस्था भी नहीं लिया जा सकता क्योकि कवि ने यक्षिणी के लिए बालां शव्द का प्रयोग किया है । [३]अतः श्यामा का यौवन मध्यस्था अर्थ लेंने पर विरोधाभास हो जाता है । पूर्ण. के शव्दो में श्यामा यौवनमध्यस्थेत्यर्थोऽत्र न वर्णस्यावश्यवक्तव्यत्वात् बाला इति चानन्तमेवावस्थाया वक्ष्यमाणत्वात् (पृ. १२३) । अतः यहां श्यामा के द्वारा यक्षिणी की सुकुमारता ही घोषित की गई है आगे कवि

---

१. ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 91.

२. श्याम प्रियङ्गुमञ्जरीवत् श्यामदेहा वा । प्रियङ्गुकलिकेव श्यामवर्णेति केचित् श्यामाषोडशवार्षिकी तथा च, द्वयष्टवर्षा भवेत्श्यामे ति केचित् अप्रसूतेति केचित् भरत. -पृ. ६२

३. मेघ. - ८४,१०१

ने श्यामास्वङ्ग[१] कहा है। वहां भी श्याम सुकुमार लताओं का ही वाचक है।

बालां (८०)- स्थिर. (पृ.९५) ने मुग्धा अर्थ दिया है। पूर्ण. ने अष्टादशवर्षदेशीया कहा है। कुमारावस्था व यौवनस्था के मध्य की दशा का ग्रहण बाला के द्वारा होता है। इस सुकुमार अवस्था के कारण ही दुःखों को सहने में समर्थ न होने के कारण अन्य रूप की कल्पना की गई है।[२]

भरत. (पृ.६३) ने षोडश वर्षीया अर्थ देते हुए प्रमाण दिया है-बाला षोडश वार्षिकेति बलः। बालेति गीयते यावत्षोडशवत्सर मिति नागरसर्वस्वम्। चरणतीर्थ ने (पृ.९४) नवयौवना कहा है।

निपतति पुरा (८२)-स्थिर. (पृ.९७). वल्लभ. (पृ.४४), दक्षि. (पृ. ५३), चारि. (पृ.९८), मल्लि. (पृ. ७४), पूर्ण. (पृ.१२७), सारोद्धारिणी (पृ.१०२), भरत. (पृ.६४), कृष्ण (पृ.४३) आदि टीकाकारों ने यावत् पुरा निपातयोर्लट्[३] सूत्र के आधार पर पुरा के योग में निपतति भविष्यत्काल का द्योतक कहा है।

स्थिर. (पृ. ९७) पुरा को अग्र एवं वल्लभ. मल्लि. व समुति. शीघ्र अर्थ में लेते हैं। स्यात्प्रबन्धे पुरातीते निकटगामिके पुरा इत्यमरः (मल्लि. पृ. ७४) चरणतीर्थ इसे प्रथम का वाचक मानते हैं।[४]

इस सन्दर्भ में दक्षि. ने दो भाव दिये हैं-भविष्यत्कालद्योतकमव्ययमिदम्। पुरा निपतिष्यतीत्यर्थः। त्वां दृष्ट्वा सा भृशं मद्विरहाद् भूमौ निपतिष्यतीति यावत्। अस्मिन्नर्थेलिङ्गं तामुन्निद्रामवनिशयनाम् इति वक्ष्यमाणवचनम्। अथवा त्वद्दर्शनात् पुरा वक्ष्यमाणान् कुर्वती सा तवालोके भूमौ निपततीत्यर्थः। (पृ. ५३)

भरत. यहाँ अनेक सम्भावनाओं को व्यक्त करते हुए लिखते हैं-ते तब आलोके दर्शने सति पुरा निपतति त्वामालोक्य मूर्छिता सती भूमौ गात्रं पातयिष्यतीत्यर्थः केचित् पुर इति अग्रतो निपततति वर्तमानं बुद्धौ निधाय लट् प्रयुक्त इति व्याचक्षते। ननु मेघदर्शनात्तस्यामूर्छा मा भूदित्येतदर्थ गत्वा सद्यः कलभतनुतामित्याद्युक्तं तत्कथं

१. मेघ. - ८०,१०१

२. बाला अष्टादशवर्षदेशीया,-बालात्वाषोडशाब्दात्तदुपरि तरुणी त्रिशंतं यावत् इति रतिरहस्योक्तेः:, श्रीहर्षचरिते च कुमारी किंचिदुन्मुक्तबालभावे भूपितनवयौवने वयसि वर्तमाना इति, कादम्बर्यां च दिव्यत्वादपरिज्ञायमानवयः प्रमाणमप्यष्टादशवर्षदेशीयाभिवोपलक्ष्यमाणाम् इत्यष्टादशवर्षत्वोक्तेः: । बालाथवाभिनवयोवनाभूपिताङ्गी सा भामिनी भवमुदां परमं रहस्यम् इति बालभाव प्रशंसाः तत्र बालाशब्देन कौमारकयौवनमध्यवर्तिनी दशाभिधीयते, ततश्च मधुर सुकुमारवयोऽवस्थावरथायिन्यास्तस्या लेशतोऽपि दुःखानामसह्यत्वादन्यरूपत्वाशङ्का युञत एवेत्यर्थः । बालेति शब्देन रतिरसायनं वयस्तस्याविषमगिरिप्रपातपादपविटपकोटरगतमिवमधुनिरुपयोगमेवाविर्तत इति विषादो ध्वन्यते। पूर्ण. - पृ. १२५.

३. पाणिनी- ३।३।४

४. ते तव आलोके पुरा प्रथमं प्रथमावलोकने दृष्टिपथं सा निपतति पतिष्यति। चरणतीर्थ- पृ. ९७

निपततीति मूर्छया न निपतिष्यति, किन्तु वर्षाकाले प्रियवियुक्तया मया कथं स्थातव्यमिति परितापात्। अथवैवं व्याख्येम्, तवालोके उन्मेषदृष्टौं सा निपतिष्यति त्वद्गोचरों भविष्यति सा त्वया द्रक्ष्यते इत्यर्थः अन्ये तु आलोके ते त्वदीयच्छायामण्डले निपतति संक्रामति सति सा बलि व्याकुला अर्ध्यपूजोपहारपरा भवेत्।. ..केचितु तवालोके विद्योतरूपे पुरोऽग्रतो निपतति सति. (पृ.६४)।

शिखादास हित्वा (८५)-वल्लभ. ने चूडाशेखरमपास्य अर्थ दिया है। स्थिर. (पृ.१००) ने शिखा का अर्थ वेणी कर वेणी में बंधी हुई कुसुम लता को हटाकर कहा है। पूर्ण ने धम्मिलभूषणभूतनवकुसुममालिकाम्। हित्वा न पुनरपनीय तद्रदेन कौतुकेन सह तृणवद्दूर तस्त्यवत्वेत्यर्थः (पृ. १३५) कहा है। सुमति. ने मणिपुष्पाणि त्यक्त्वा (पृ. १८६) कहा है। सारो. टीकाकार ने दो विकल्प दिए हैं शिखादाम हित्वा कुसुस्त्रजं विहाय। अथवा या शिखा वेणी अन्यच्च दाम हित्वा इति योजनीयम् (पृ. १०५)।

भरत ने अनेक विकल्प दिए हैं-शिखादाम चूड़ामणिं हित्वा... चूड़ामणिः शिखादामे ति शर्वः। शिखादाम चूड़ास्त्रजमिति च व्याचक्षते। पुष्पचूड़ामणिर्धीरैः। शिखादामेति कीर्त्यते इति रन्तिरिति केचित्। कुसुमवन्धनी केशलता शिखा, तत्र दाममाल्य मिति कौमुदी (पृ.७०)।

कृष्ण ने (पृ. ४६) केशों को बांधने वाली डोरी अर्थ लिया है।

मल्लि. व चरणतीर्थ ने शिखा व दाम को अलग-अलग शव्द मानते हुए इस प्रकार व्याख्या दी है-मल्लि. दाम मालां त्यक्त्वा या शिखा वद्धा (पृ. ८०) चरणतीर्थ दामहित्वा कुसुमयुक्तकेशदोरकं विहाय त्यक्त्वा या शिखा एकवेणी चोटले इति लोके विना दोरकं बद्धा (पृ. १०२)।

चारि. (पृ.१०४) व दक्षि. ने शिखादास की जगह शिरोदाम पाठ लिया है। दक्षि. के शव्दो में शिरोदाम हित्वेति पाठः। शिखादामहित्वेति पाठे शिखाशव्द शिरः शव्द पयार्यो न भवति। घृणि ज्वाले अपि शिखे इत्मरसिंहवचने,य शिखाज्वालाकेकिमोल्योरि ति यादवप्रकाशवचनेऽपि शिखाशव्दस्य शिरः शव्दपर्यायत्वादर्शनात् (पृ. ५६)।

एकवेणीं करेण (८५)- एकवेणी से ऐसा प्रतीत होता है। कि सम्भवतः उस समय स्त्रियां केशों की अनेक वेणियां बनाती होंगी। पर प्रोपितभर्तृका के लिए एकवेणी धारण करने का नियम रहा होगा और यह वेणी पति द्वारा विरह के दिन बांधी जाती होगी। विरह समाप्ति पर इसी वेणी को खोलने का यक्ष संकेत कर रहा है। कवि ने अबलावेणिमोक्षोत्सुकानि [१] में भी इसी वेणी का उल्लेख किया है।

अधिकांशतः सभी टीकाकारों ने एकवेणी का अर्थ एकसंख्याभिमता वेणी लिया है। पूर्ण. ने इसकी व्याख्या में कहा है एकजटात्मकक्रेशवन्धनविशेपरूपां

---

१. मेघ. - ९६

वेणीं (पृ. १३६)

भरत. ने इसके दो अर्थ दिये हैं–एकवेणी केशरचनाविशेषं ... एकीकृत्य बद्धा वेणी एकवेणी न तु केशसमुदायस्यैकभूता वेणी, तस्या अव्यवहारात्। किंवा एका प्रशस्ता वेणी एकवेणी, तथा च रन्तिः–केवलश्रेष्ठयोरेकमपरस्मिन्नपि त्रिष्वि ति विरहिणानामयमप्याचारः। यदुक्तं–

यथा प्रोषितनाथानां व्यसनाभिद्रुताशया।
वेशः स्यान्मलिनस्तासामेकवेणीधरं शिरः।। (पृ०७०)

'करेण' के महत्व को पूर्ण. ने स्पष्ट करते हुए कहा है–एकवेणी रूप में हुए, केशों की गहनता व भार के कारण जो दुर्बल अंगुलियों के द्वारा नहीं हटाए जा सकते। अतः कर का प्रयोग हुआ है।[१]

शुद्धस्नानात् (८८)–स्थिर. (पृ.१०३) के मत में यदि वह कभी स्नान करती थी तो सुरभि तेल आदि से रहित केवल जल का प्रयोग करती थी। वल्लभ. (पृ. ४७) व चरणतीर्थ (पृ. १०१) ने इसी अर्थ को दिया है।

भरत. (पृ.६९) के मत में शुद्ध स्नान से तात्पर्य शुद्धार्थ स्नाता के लिए पति सम्भोग का विधान है प्रोषितमर्तृका का ऋतु स्नान करने पर दुःख निःश्वास निकलना स्वाभाविक है, कहा गया है–

ऋतुस्नाताः सनिश्वासं स्मरन्ति गतभर्तृका।
कान्तमत्यन्तसञ्जातमदनावेशविह्वलाः।। (भरत. पृ. ६९)

कृष्ण. ने इसका दो प्रकार से विग्रह देते हुए कहा है शुद्धं स्निग्धद्रव्याद्यभावेन यत् स्नानं तेन परुषं रुक्षम्। यद्वा शुद्धाय शुद्धये यत्स्नानम् इत्यन्वयः (पृ .४५)

याममात्रं (९४)–याम से तात्पर्य द्वौ यामप्रहरो समौ (मल्लि . पृ. ८५) स्थिर. मल्लि. सुमति., सारो., भरत. व कृष्ण आदि टीकाकारों ने प्रहर अर्थ लिया है। वल्लभ. (पृ.४९) ने क्षणमात्र अर्थ लिया है।

दक्षि.[२] व चारि. (पृ. ११०) के मत में याममात्र का प्रयोग क्रिया की दृष्टि से न होकर सम्भोग की दृष्टि से है। मल्लि. के शव्दो में शक्तयोरेकवारसुरतस्य यामावधिकत्वात्स्वप्नेऽपि तथाभवितव्यमित्यभिप्रायः। तथा रतिसर्वस्वे एकवारावधिर्यामो रतस्य परमो मतः चण्डशक्तिमतोर्यूनोरुद्भटक्रमवर्त्तिनोः इति (पृ. ८४-८५)

---

१. करेण न तु अङ्गुलीभिः। अनेन स्निग्धा सितबहुलबर्बरदीर्घसूक्ष्म-मृदुलानां भिन्नाग्राणांकेशानांवेव्याकारेणसंदष्टतया घनीभूयभाराय-माणत्वात्करकमलेनैव यत्नतोऽपसारणीयत्वम् न पुनरतिदुबंलैरङ्गुलिदलैः शक्यापसारत्वमिति द्योत्यते। पूर्ण. – पृ. १३६

२. ननु विरहिणां याममात्रं स्वापो न भवति। उक्तं च त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं। निमील्य नेत्रे सहसा व्यवुध्यत इति सत्यमिदं। न तत्स्वापापेक्षया याममात्रपदं प्रयुक्तं, किन्तु संभोगापेक्षया। सं भोगस्य परमावधिरेकवारो यामावसायिक इति कामतन्त्रो विदन्ति। तथा रतिविलासे–परमा तु रतिर्यूनामिष्टा यामावसायिकी इति दक्षि. – पृ.११

पूर्ण. ने मुहूर्तत्रयमात्रम् अर्थ लेते हुए लिखा है तावतोऽवधेन्यूनातिरिक्तया रमणीयत्वात्समागमसुखस्य तावता निर्वृत्तत्वेन तादृशदुःखावहत्वाभावात्। प्रथमयामे चिन्तासन्तापे निद्रयाविहीने द्वितीययामे श्रमेण स्वाभाविककालेशैत्याञ्च कथंचिन्निद्रोपपत्तेस्तृतीययामे पुनः प्रबोधाञ्चोत्तमस्त्रीणामतिचिरनिद्राया अयुक्तत्वाञ्च याममात्रमित्युक्तम् (पृ. १४३) ।

भरतानुसार –याममात्रमित्यनेन पूर्वं प्रहरव्यापी सम्भोगो ऽस्येति सूचितम्। किं वा निर्भरसुखानुभवार्थं यामग्रहणम् (पृ. ७३) । महिम के मत में उत्तम स्त्रियाँ प्रहरमात्र ही निद्रा को ग्रहण करती है । यह पद्मिनीत्व का सूचक है । कहा गया है–

पद्मिनी यामनिद्रा द्विप्रहरा च चित्रिणी ।
हस्तिनी यामत्रितया घोरनिद्रा च शंखिनी ॥ [1]

जालकैर्मालितीनाम् (९५)–मालती पुष्प है जिसे जाती नाम से भी कहा जाता है । जातक से तात्पर्य कलि अथवा समूह से है–

जालं तु कोरके संघ विश्वः (कृष्ण. पृ. ४९) ये पुष्प वर्षा में उत्पन्न होते है । दक्षि. (पृ. ६०, चारि. (पृ. १११) एवं पूर्ण. (पृ. १४४) के मत में ये रात्रि में विकसित होते हैं–

निलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्च पङ्कजैः ।
विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः ॥ (दक्षि . पृ. ६०.

वल्लभ. (पृ. ५०) व सारो. (पृ. ११३) ने इनका प्रभात में विकसित होने का उल्लेख किया है । चारि. (पृ. ११) दक्षि. (पृ. ७०) के मत में इस विशेषण से यक्षिणी की मालती पुष्पो से भी अधिक सुकुमारता घोषित की गई है । भरत. ने इसके अनेक भाव दिए हैं–किञ्च मालतीजालिकावत् सौकुमार्यस्या इति । किञ्च मालतीविटपवेक्षितं किल तदायतनं बोध्यमिति अन्येषामपि त्वं सन्धुक्षणकारी मालतीनामिति । पृ. ७४) ।

मानिनीं (९५)–मान से तात्पर्य मानश्चितसमुन्नतिरि त्यमरः (दक्षि. पृ. ६०), स्थिर. वल्लभ. दक्षि. चारि., मल्लि. भरत. आदि टीकाकारों ने मानिनी से तात्पर्य मनस्विनी लिया है । भरत. (पृ. ७४) ने मानपूजायाम् के आधार पर प्रतिव्रता होने से पूज्या अर्थ भी दिया है । सुमति. (पृ. १९१) ने मानिनी का स्त्री व सारो. (पृ.११३) ने कामिनी अर्थ लिया है पूर्ण. ने स्वचरित्र परिरक्षण के कारण अभिमानशालिनी अर्थ दिया है । अथवा इतने समय से दुःखी हृदया मेरे (यक्षिणी) आश्वासनार्थ किसी से सन्देश तक नहीं भेजा, इस कारण प्रणय कुपिता अर्थ दिया है । [2]

अविधवे (९६)–यक्षिणी के प्रति यक्ष की जीवित अवस्था द्योतनार्थ कवि

---

१. ed. G.R. Nandargikar (notes), p. 100.

२. मानिनीं स्वचारित्रपरिरक्षणाभिमानशालिनीम् ततोऽपि तव तथा संलापे न दोष इति भावः । अथवा, एतावतो दिवसान् दुःखितायाः मामश्वासनाय वार्तामात्रमपि न कस्याचिन्मुखेन कठिनहृदयेन प्रेषितमिति मयि प्रणयकोपवतीमित्यर्थः । पूर्ण. – पृ. १४५

ने इस सम्वोधन का प्रयोग किया है । वल्लभ. , चारि. पूर्ण., सुमति., कृष्ण., चरणतीर्थ आदि ने इसी भाव को दिया है । स्थिर. (पृ. ९६) व सारो. (पृ. ११४) के मत में-पुण्यजनजाया यक्षिणीमेघ के इस कथन पर -मैं तुम्हारे पति का समाचार लेकर आया हूँ अतः पति के विनाश की आशंका कर मृत न हो जाए -अतः यह सम्वोधन उसके प्रिय के प्राणान्वित होने का सूचक है ।

दक्षि. ने इस शव्द की शुद्धता के सम्वन्ध में लिखा है अविधवापदं कविसमये भ्रष्टमिति न मन्तव्यम् श्रीरामायणे प्रयोगात् -ये मामाहुः पितुर्गेहे पुत्रिण्यविधवेति च (पृ.६१)।

भरत. के शव्दो में अविधवे इत्यनेन तवभर्त्ता जीवति किन्तु त्वद्विरेहेण दुःखाधिक्यमिति सूचितम्। ननु अविर्गड्डरको धवोऽस्या इति ग्राभ्यतादोषोऽत्र यथा, या भरतप्रिये ति, अत्र यामो मैथुनं तदयुक्तस्य प्रियेति ग्राभ्यता, न च वाच्यम्, अविधवाशव्दस्य लोकसम्मतत्वात्, यदुक्तम् -

न तस्य ग्राभ्यता यस्तु शब्दः स्याल्लोकसम्मतः ।
भगिनी भगवतीत्यादि सर्वत्रैवानुमन्यते । इति (पृ. ७४-७५)

पथि श्राभ्यतां (९६)-अधिकांश टीकाकारों ने पथ में थकान को प्राप्त हुए अर्थ दिया है । भरत० ने 'केचित्' के द्वारा विश्राम अर्थ भी दिया है--केचितु पथि श्राभ्यतां विश्रामं कुर्वताम्, उपसर्गविनापि श्रमेर्विश्रामार्थतेत्याहुः (पृ.७५) विश्राम अर्थ संगत प्रतीत नहीं होता । जो पथिक विरहव्याकुल अबलाओं की वेणी खोलने के उत्सुक है, उनके द्वारा मार्ग में विश्राम कैसा ?

शब्दाख्येयम् (१००)- टीकाकारों ने इसकी भिन्न-भिन्न व्याख्या दी है-

वल्लभ. शव्दाख्येयं प्रकटवाच्यम् (पृ.५२) ।

दक्षि. -शव्दाख्येयं शव्दा एवाख्येयमभिधेयं यस्यतच्छव्दाख्येयं निरर्थकमित्यर्थः (पृ.६३) ।

चारि.-शव्द एवाख्येयोऽभिधेयो यस्ययद्वचनमाननशव्देनोच्चैः शव्देनाख्येयं वा (पृ.११५-१६)

पूर्ण. -शव्देन प्रकाशमेव कथयितुं योग्यम् । शव्द एवाभिधेयं यस्य तत् निरर्थकमिति केचित् । (पृ.१५२) ।

मल्लि. -शव्दाख्येयं शव्देन रवेणाख्येयमुच्चैर्वाच्यमपि यत् (पृ.९०) ।

सारो.-यद्वचः शव्दाख्येयं शव्देन श्रोत्रग्राह्येण आख्यायते कथ्यते यत् तत् प्रकटाख्यं न तु गोप्यं हस्तमृसंज्ञादिवाच्यम् (पृ.११८) ।

सुमति. -शव्दाख्येयं कथनीयं (पृ.१९५) ।

भरत.-शव्देन ध्वनिना आख्येयं व्यक्तकथनार्हम्, न रहस्यभूतम्, (पृ.७६) ।

कृष्ण.-शव्दाख्येयम् उच्चैः शव्दाख्येयमित्यर्थः । अहो महाननयोऽथजातो महद्वर्पणं वा जातो यत इत्यादिरूपम्। अन्यथा निभृतकथनार्थस्यापि शव्दाख्येयत्वात् (पृ. ५१) ।

चरणतीर्थ-शव्दाख्येयं शव्देन उच्चारणेन कथयितुं योग्यः (पृ. ११४) ।

अपि को ध्यान में रखते हुए यही अर्थ अधिक उचित प्रतीत होता है । कि प्रकट वचनीय होते हुए भी आननस्पर्शलोभ से जो कर्ण में कहने के लिए आकांक्षायुक्तथा ।

श्यामासु (१०१)-श्यामा से तात्पर्य श्यामा तु महिलाह्वया । लता गोविन्दी गुन्द्रा प्रियङ्गुः फलिनी फली अमर. (मल्लि . पृ. ९०) ।

स्थिर. (पृ.११८), दक्षि. (पृ. ६४), चारि. (पृ.११७) व मल्लि . (पृ. ९०) ने प्रियङ्गुलताओं में अर्थ दिया है । पूर्ण. व सारो. (पृ.११८) ने इसे फलिनी लताओं का वाचक कहा है पूर्ण. के मत में लताओं की जो वर्ण-कान्ति, कोमलता व तनुता आदि गुण हैं, उनमें उसके अंगों के उन गुणों को देखता हूँ।[१]

भरत. (पृ. ७७)- ने श्यामा को वर्णवाची मानते हुए श्यामलताओं में उसके अंगो की श्यामलता देखता हूँ अर्थ दिया है । यह अर्थ यहां मान्य प्रतीत नहीं होता । यक्षिणी के उरु जव कदलीस्तम्भ गौरः हौं तो उसके अन्य अंग श्यामल कैसे हो सकते हैं । अतः श्यामा वर्ण की दृष्टि से यहां अभिप्रेत नहीं है ।

कृष्ण. ने श्यामासु स्त्रीविशेषेषु (पृ १०१) कहा है, यह अर्थ भी उचित नहीं कहा जा सकता । यक्षिणी के प्रति अत्यन्त आसक्ति युक्त यक्ष का विरहकाल में अन्य स्त्रियों को देखना उसके एकनिष्ठ प्रेम का द्योतक न होकर व्यभिचारीपन का सूचक हो जाता है ।

चरणतीर्थ ने श्यामा को अत्यन्त कोमल चीण नामक धान्य विशेष का वाचक कहा है-तव शरीरं श्यामासु चीनाकेषु, अति मृदुकोमलतया चीणो इति धान्यविशेषः, तस्य अत्यन्तमृदुकोमलमसृणत्वाच्च, (पृ. ११५) नारी के अंगों की सुकुमारता प्रकृति सिद्ध है । यहां पर भी यक्ष का श्यामासु अर्थात् कोमल लताओं में यक्षिणी के सुकुमार अंगों का अवलोकन अभीष्ट है ।

त्वामालिख्य...नौ कृतान्तः (१०२)-टीकाकारों ने इस श्लोक के भाव को अलग-अलग प्रकार से कहा है। मल्लि. के मत में यक्ष यक्षिणी के चित्र को चित्रित कर उसके पैरों में नतमस्तक रूप में स्वंय को चित्रित करना चाहता है पर अश्रुवेग के कारण नेत्र अवरुद्ध हो जाते हैं । कृतान्त चित्र रूप में भी उन दोनों का संगम नहीं होने देता ।[२]

---

१. श्यामासु, फलिनीलतासु, न तु श्यामायाम् । अनेन देशकालदशविशेषवशात्तासां वैविध्येन प्रयत्नतोऽन्विष्य कस्याचिद्वर्णकान्तिम्, अन्यस्यां कोमलत्वम्, अपरस्या तनुत्वमित्यादि द्योत्यते । श्यामलकोमलत्वादिगुणयोगात्तदुपादानम् । कुवलयदल श्यामालता प्रविजृम्भते इ॑ंयुक्तत्वात् । पूर्ण. पृ.१५४

२. त्वत्प्रतिकृतिम्...शिलाया शिलापट्ट आलिख्य निर्मायात्मानं माम् । मत्प्रतिकृतिमित्यर्थः । ते तव । चित्रगताया इत्यर्थः चरणपतितं कर्तु तथा यावदिच्छामि तावदिच्छासमकालं... संगमलेखनपप्यावयोरसहमानं देव- ... । मल्लि.- पृ०.९१ मावयोः सङ्गं न सहत इति किमुवक्तव्यमित्यपि ...

भरत-ने यक्षिणी को चित्रित कर स्वंय को उसके चरणों में अवनत करना चाहता है, अर्थ करते हुए लिखा है-- 'ननु आलिख्येत्यनुपपन्नम्, यतो लिखनकाल एवास्त्रैर्दृष्टिरालुप्यते इत्यर्थः । अन्ये तु पूर्वार्द्धे कष्ट सृष्टया लिखननिर्वाहो ज्ञापितः, किन्तु चरणपतनकाले दृष्टिलोप इत्याहुः (पृ ७९) । इससे ऐसा प्रतीत होता है कि भरत अपने कथन के प्रति स्वयं ही विश्वस्त नहीं है । अश्रुवेग से नेत्रों के अवरुद्ध हो जाने के कारण लेखनकार्य तो असंभव हो सकता है पर स्वंय को चित्रगत यक्षिणी के चरणों में अवनत करना असाध्य नहीं कहा जा सकता ।

चारि. (पृ. ११८) व कृष्ण. (पृ. ५२) के मत में आलेखन कार्य इच्छान्तर्गत ही है क्योकि नेत्रों के अश्रुपूर्ण होने से लेखन कार्य असम्भव है । यह अर्थ मान्य नहीं कहा जा सकता जब आलेखन इच्छान्तर्गत है तब संगम भी इच्छान्तर्गत हो सकता है । इस दृष्टि से तो कूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती ।

मल्लि. का मत अधिक उचित प्रतीत होता है । रेवाप्रसाद[१] एवं शिवमन्यु भट्टाचार्य[२] ने मल्लि. के मत का ही समर्थन किया है । यक्ष अपना एवं यक्षिणी दोनों का चित्र चित्रित करना चाहता है । येनकेनप्रकारेण यक्षिणी को तो चित्रित कर लेता है । पर उसका चित्र देखते ही अश्रुवेग की प्रबलता के कारण नेत्र अवरुद्ध हो जाते हैं . और चरणपतित रूप में वह अपने को चित्रित नहीं कर पाता । अतः चित्र रूप में भी यक्ष-यक्षिणी का संगम नहीं हो पाता इसीलिए वह देव को उपालम्भ दे रहा है ।

स्थिर. (पृ.११९) व सारो.[३] ने आत्मानं की व्याख्या में निजाकारं कहा है जो यही स्पष्ट करता है कि यक्ष स्वयं को यक्षिणी के चरणों में अवनत हुए रूप में चिवित करना चाहता है । यह अर्थ लेने पर चतुर्थपाद की भी सार्थकता है ।

तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति (१०३)-स्थिर. (पृ.१२०) के मत में स्थल-देवताओं का तरु-किसलयों पर निवास होने के कारण उन पर ही नयनजल बिन्दुओं के पतन का उल्लेख किया गया है । पूर्ण. ने इसी भाव को देते हुए कहा है तासां तरुशिखरेष्ववस्थानात् किसलयानां च निरन्तरस्थितेरश्रुलेशानां तेष्वेव पतनस्यावश्वयंभावात् । ...किसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्तीत्यनेन कोमलारुणेषु, पल्लवेषु, स्थूलधवलवर्तुलानाम् अश्रुबिन्दूनामवश्यायशीकरणामिव परभागलाभात् चटचटध्वनिप्रादुर्भावाच्च स्फुटदृश्यत्वम् (पृ. १५८-१५९) ।

सुमति. (पृ.१९९) के मत में रात्रि के अन्तिम भाग में वनभूमि पर ओस की

---

१. सागरिका - विक्रमसंवत् २०२२, पृ. ३२७-३३०

२. वही - विक्रमसंवत् २०२४, पृ. ४९-५४

३. अत्र केचिदात्मानं स्वरूपेणेव तथा कर्तुमिच्छामिति...किञ्चास्त्रावलुप्तायां दृष्टो रूपलेख्याङ्कनमेव दुःखकरं न तु शरीरप्रणतिः । अन्यच्च तस्मिन्नपि आवयोरिति निर्देशादावयोरालेख्यगतयोरपि सङ्गमं न सहत इति [illegible] । सारो . -पृ. १२०

बूंदें गिरती है । यहाँ उसी के व्याज से वन -प्राणियों को दुःखी देखकर मानों वन-देवता अश्रुमोचन कर रहे हैं, यह ध्वनित किया गया है ।

मल्लि. के मत में भूमि पर देवताओं का अश्रुपात अमंगलकारी है -

महात्मगुरुदेवानामत्रुपातः क्षितौ यदि ।
देशभंगो महादुःखं मरणं च भवेद्ध्रुवम् ।। (मल्लि. पृ. ९२)

यक्ष के मरणाभाव के द्योतनार्थ देवताओं का अश्रुपात पृथ्वी पर न दिखाकर तरुकिसलयों पर दर्शाया गया है ।

सर्वावस्थासु (१०४)-वल्लभ. (पृ. ५५) एवं पूर्ण. (पृ.१६१) की व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि वे अवस्थाओं को ऋतुओं का बोधक मानकर ग्रीष्म, शरदादि सभी अवस्थाओं का भाव लेते हैं । मल्लि. (पृ. ९४) ने अवस्था को काल का वाचक कहा है । सारो. (पृ. १२३) एवं भरत. (पृ. ८०) ने दिन की पूर्वाह्न एवं अपराह्न आदि अवस्थाएं अर्थ लिया है ।

कौलीनात् (१०९)-कौलीन से तात्पर्य-

कौलीनं जनापवादः अमरः (पूर्ण. पृ. १६९)
स्यात्कौलीनं लोकवादे युद्धे पश्व हि पक्षिणाम् अमरः (ल्लि. पृ. ९७)
कुलीनत्वे च कौलीनं लोकाकीर्त्तौ च दृश्यते (भरत. पृ. ८२)

अधिकांश टीकाकारों ने जनापवाद अर्थ लेते हुए यही भाव दिया है कि वह यक्ष अन्य स्त्री में आसक्त हो गया होगा, इस प्रकार के लोकापवाद से । पूर्ण. के शव्दो में कौलीनात् रससुधार्णवविगाहविधुराणां पुरुषविशेषमजानतामितरजनाम् स्नेहः प्रवासाश्रयात् इत्यादिसामान्यवचनम् प्रमाणयतानुपपत्तिकात्प्रलापात् (पृ.१६९) ।

सारो. (पृ. १२६) टीकाकार ने यद्यपि उपरोक्त भाव को ही लिया है । पर पाठ आकौलीनात् दिया है । चरणतीर्थ (पृ. १२३) ने कौलीन्यात् पाठ दिया है ।

दक्षि. (पृ. ६८) एवं मल्लि. (पृ.९७) के मत में इतने समय तक तुम्हारा पति मृत्यु को प्राप्त हो गया होगा । अब वह नहीं आएगा, इस प्रकार के लोकापवाद से । ईश्वरचन्द्र विद्यासागर मरण रुप लोकापवाद अर्थ का खण्डन करते हुए कहते है-इयं व्याख्या न समीचीना प्रथमपादे अभिज्ञानदानात् कुशलिनं वदित्वेत्यनेनेव मरणशंकाया निवर्तनात् पुनर्द्वितीयपादे मरणशंकिनी मा भूरित्यमिधानमसंगतम् तस्मात् हे असितनयने कोलीनात् असंशयमेतावता कालेन स्नेहविलोपो जातः नातः परं स ते पतिस्त्वां स्मरिष्यसि इति लोकवादात् ...।[१]

भरत. ने केचित् कह कौलीन का कुलीन अर्थ लेते हुए लिखा है । केचितु कौलीनात् कुलीनत्वात्, मयि अविश्वसिनी मा भूः, अहं कुलभवः सत्यवादी न पृथकजनवत् मिथ्यावादी, ततोमयि विश्वासः करणीयः (पृ. ८२) ।

असितनयने (१०९)-वल्लभ. (पृ. ५७) ने इसका अर्थ कुलयाक्षि दिया है । स्थिर. (पृ.१२५,) सारो. (पृ. १२६) व चरणतीर्थ। (पृ.१२३) ने मेचकलोचने कहा

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 111

है । चारि. (पृ.१२४) व सुमति. (पृ. २०४) ने इसे सम्बोधन कह कृष्णनयन अर्थ किया है । सुमति . (पृ. २०३) ने एक अन्य अर्थ मृगनेत्र भी लिया है ।

भरत ने इस सम्बन्ध में दो विकल्प दिए हैं कृष्णत्वात् असितं नयनं यस्याः सा तथा, तत्सम्बोधनम् असितं विस्तीर्णत्वादबद्धं नयनं यस्या इति व्याचक्षते, तत्रषिञ् न बन्धे इत्यस्य क्ते सितम् (पृ. ८२) ।

अनुचितप्रार्थनावर्त्मनो (१११)-स्थिर. (पृ. १२८) वा सारो. (पृ. १२९) के मत में-दिव्यानुभाव के कारण प्राप्त हुई समस्त वांछित वस्तुएं वाले मेरा (यक्ष) यह याचना मार्ग अनुरूप है ।

दक्षि. (पृ. ७०) व पूर्ण. (पृ.१७२) के अनुसार आप जैसे महान् व्यक्ति को दूत-कार्य में नियुक्त करने के कारण मेरा यह याचना-मार्ग अनुचित है । कहा गया है- न हि प्रकृष्टाः प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हीतरे जनाः (पूर्ण. पृ. १७२)

सुमति. (पृ. २०६) के मत में जल क्योंकि अचेतन माना गया है । और दूतकार्य कोई चेतन ही कर सकता है । अतः उसमें याचना- पूर्ति का अभाव होने से याचना-मार्ग अनुचित है ।

प्रथम मत मान्य नहीं कहा जा सकता । कवि ने प्रथम श्लोक में ही अस्तंगमित महिमा कह दिया है । अतः दिव्यानुभावों के नष्ट हो जाने से यक्ष कोई विशेष व्यक्ति न होकर सामान्य व्यक्ति ही है । तृतीय मत भी उचित प्रतीत नहीं होता । यदि यक्ष को मेघ की अचेतना का बोध होता है तो वह उससे सन्देश- प्रेषण ही क्यो करवाता है । कवि ने पूर्व में भी कह दिया है-कामार्त्ता हि प्रणकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।[१] यहां द्वितीय मत ही मान्य है । इन्द्र जैसे महान् व्यक्ति के सचिव मेघ को दूतकार्य में नियुक्त करना ही अनुचित प्रार्थना वर्त्म है ।

इस प्रकार टीकाओं के माध्यम से कतिपय शब्दो की गहनभावाभिव्यक्ति यहां की गई है जिनसे स्पष्ट हो जाता है । कि कविद्वारा प्रयुक्त शब्द केवल अभिधार्थ को ही नहीं कहते अपितु काव्य सन्दर्भ में अनेक विशिष्टताओं व भावों को भी अपने कलेवर में संजोये हुए हैं । यद्यपि कई स्थलों पर टीकाकारों ने ऐसे अर्थों का दिग्दर्शन कराया है जो प्रसंग के अनुकूल नहीं, तथापि वह नवीन अर्थ उस टीकाकार की विद्धता के परिचायक हैं, जिसने अत्यन्त सूक्ष्मता व गहनता से प्रत्येक शब्द का अध्ययन करते हुए ऐसे नवीन भावों की उद्भावना की है ।

---

१. मेघ - ५

पाठ-भेद की दृष्टि से टीकाओं का अनुशीलन

मेघदूत जैसे लघु-गीति काव्य में भी असंख्य पाठ दृष्टिगत होते हैं। टीकाकारों ने लिंग, वचन, कारक, समास एवं अर्थ को ध्यान मे रखते हुए एक ही स्थल पर भिन्न भिन्न पाठ देकर अपने पाठ के औचित्य को तर्कसंगत युक्तियों से सिद्ध करने का प्रयास किया है। एकाध स्थल पर पूरा चरण ही भिन्न रूप में दे दिया गया है एवं कहीं श्लोक का कोई चरण अन्य श्लोक के साथ सम्बद्ध कर दिया है। पाठ की भिन्नता से अर्थ में अत्यन्त परिवर्तन दृष्टिगत होता है। यहां श्लोक संख्या-क्रमानुसार कतिपय पाठभेदों का टीकाकारों की दृष्टि से विवेचन प्रस्तुत है।

पूर्वमेघ

प्रथम दिवसे (२)

प्रथम दिवसे

वल्लभ. ने प्रथम दिवसे पाठ ग्रहण करते हुए लिखा है-आषाढस्य प्रशमदिवसे समाप्तिदिने ग्रीष्मावसाने। केचित्तु शकारथकारोर्लिपिसारूप्यमोहात् प्रथम इत्युचुः अर्थं कथमपि चैतमेवार्थं प्रतिपन्नाः प्रस्तुतत्वादादिदिनमित्येतत्वतीव विरुद्धम् (पृ.३) शाश्वत (पृ.७) ने यही पाठ दिया है। विष्णुपाद भट्टाचार्य [१] एवं कन्हैय्यालाल पोद्दार[२] जी इसी पाठ के समर्थक हैं। यदि इस पाठ को ग्रहण कर आषाढ़ का अन्तिम दिन अर्थ करते हैं तो मल्लि. के मत में हरिबोधिनी शुक्ल एकादशी तक चार मास में बीस दिन कम रह जाते हैं। [३] और आषाढ़ के अन्तिम दिन मेघ-दर्शन होने पर सन्देश प्रेषण श्रावण में ही होगा -तब एक समस्या यह है कि कवि ने आगे वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः कहा है, [४] और श्रावण में चातक स्वर मंगलकारी नहीं माना जाता-

न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सुकराः श्ववृक्रादयः।
शरथब्जागलीक्रौञ्चाः श्रावणे हस्तिचातकौ ।।[५]

प्रत्यासन्ने नभसि को आधार बनाकर प्रशमदिवसे पाठ लेना उचित नहीं। श्रावण वर्षाकाल है और वर्षाकाल में प्रिय विरह के कारण प्रियामरण की आशंका

१. OH. Vol. 6, 1958, p. 25-28.
२. हिन्दी मेघदूत-विमर्श, पृ. ९०
३. ed. G.R. Nandargikar, p. 3.
४. मेघ. ९९
५. दक्षि. टीका, श्लोक स.९

ही अधिक है। सारो. के शब्दो में-

शिखिनि कूजति गर्जति तोयदे।
स्फुरति जातिलता कुसुमाकरे।।
अहह। पांथ। न जीवति ते प्रिया।
नभसि मासि न यासि गृहं यदि।। [१]

दयिता जीविताम्बनार्थी यक्ष यदि श्रावण से एक दिन पहले मेघ द्वारा सन्देश भेजेगा तो यह स्वयं ही विचारणीय है कि कितना श्रावण बीत जाने के बाद यक्षिणी को सन्देश मिलेगा। अतः स्पष्ट है कि यक्ष ने सन्देश श्रावण में न भेजकर आषाढ़ में ही भेजा है।

स्थिर. दक्षि. चारि., मल्लि. पूर्ण., सुमति., कृष्ण., चरणतीर्थ आदि टीकाकारों ने प्रथम दिवसे पाठ को दिया है। इस पाठ के विषय में एकमत होते हुए भी प्रथम के अर्थ के विषय में टीकाकारों में वैमत्य दृष्टिगत होता है।

स्थिर. ने प्रथम का प्रवर अर्थ लेते हुए कहा है-आषाढस्य प्रथम दिवसे शुचेः प्रवरे दिने। आदिप्रवरो प्रथमावि प्रवरत्वं च कृत्यादिकर्मणाम्। ततः प्रारम्यमाण त्वायस्मिन् दिने स मास एव प्रतीयते (पृ. ५)।

चारि. ने प्रथम को आषाढ़ी अमावस्या एवं प्रथम एकादशां अर्थों में लिया है-आषाढस्य प्रथमः प्रवरश्चासौ दिवसश्च। यस्मिन् वासरे स मासः पूर्तिमियर्ति सा, आषाढ्यमावस्येति भावः। तस्य प्रवरत्वं च कृष्यादि कर्मणां तस्मिन्प्रारम्यमाणत्वात्। ...प्रथमः विष्णुदिवसः प्रथमैकादशीत्यर्थः (पृ.५)।

सुमति. इसका अर्थ पूर्णिमा देते हैं। दूसरे अर्थ में प्रथं अदिवसे विग्रह कर प्रथं को मेघ का विशेषण मान अदिवसे का एकादशी अर्थ देते हैं।

आषाढस्य प्रथमदिवसे प्रान्तदिवसे पूर्णिमायाम्। प्रथम इति वा विष्णुः प्रथमदिवसे तस्मिन् अदिवसे। एकादशी इत्यर्थः। प्रथमिति मेघस्य विशेषणम्। कथं भूतं मेघं प्रथमिति। ततः एकादशीदिने इति समाधानम्। (पृ.९६)।

विजयसूरि, जनार्दन व्यास आदि टीकाकारों ने प्रथम का प्रधान अर्थ कर आषाढ़ मास की पूर्णिमा भाव दिया है। [२]

मल्लि. (पृ. ३) ने प्रथम दिवसे का शुक्ल प्रतिपदा अर्थ दिया है। उनके अनुसार इस दृष्टि से चार मास में यद्यपि दस दिनों की अधिकता रहती है, पर प्रशम दिवसे पाठ लेने पर बीस दिनों की न्यूनता देखते हुए दस दिनों की अधिकता गौण ही है।

भरत. ने आदि दिन अर्थ किया है। आषाढ़ से लेकर कार्तिक तक पांच मास हो जाते हैं। इस दोष को दूर करने के उन्होने कई विकल्प दिये हैं-

ननु यथाषाढस्य प्रथमदिवसे मेघस्य संदर्शनम् तदा कथं शापान्तो मे भुजगशयना दुत्थिते शार्ङ्गपाणौ मासानेतान् गमय चतुर इति सङ्गच्छते यत आषाढादयः

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 7.
२. Proc. AIOC. 26 p.426.

कर्तिकान्ताः पञ्चमासाः स्युः । उच्यते, मेघो वार्ता श्रावणे श्रावष्यति तदपेक्षया चत्वारो मासाः,किञ्च मेघं दृष्टवा कष्टसृष्टया आषाढं गमयित्वा श्रावणे वार्ता प्रस्थापिता अतस्तदपेक्षया चत्वारो मासाः । वक्ष्यते हि-तस्य स्थित्वा कथमपी-त्यादि, प्रत्यासन्ने नभसी त्यादि च । किं वा कामे नानवस्थितचित्तत्वात् संख्यामविभाव्य यथोक्तम् । (पृ ४)

भरत द्वारा दिये गए इन विकल्पो को उचित नहीं कहा जा सकता । मेघ जैसे तीव्रगामी के लिए यह कहना कि उसने एक महीना लगा दिया, अनुचित है । और यदि यह कहें कि मेघ का दर्शन यक्ष ने आषाढ़ में किया पर सन्देश श्रावण में भेजा तो भी ठीक नहीं । यक्ष जैसे कामातुर के लिए मेघ-दर्शन के बाद सन्देश भेजने में इतना विलम्ब हो ही नहीं सकता । और अनवस्थित चित्त के कारण उचित संख्या न दे पाने रूप विकल्प का तो मल्लि. के इन शब्दो से ही खण्डन हो जाता है-

ननून्मत्तस्य नायं विवेक इति चेन्न । उन्मत्तस्य नानर्थस्य प्रतीकारार्थ प्रवृत्तिरपीति सन्देश एव मा भूत् । तथा च काव्यरम्भ एवाप्रसिद्धः स्यादित्याहो मूलच्छेदी पाण्डित्याप्रकर्षः (पृ. ३) । भरत. ने केचित् कह प्रथमदिवसे के आषाढी पूर्णिमा, शुक्ल एकादशी एवं प्रथं को मेघ विशेषण मान अदिवसे के अविद्यमान दिवस एवं रात्रि अर्थों को देने वाले टीकाकारों को मतों का खण्डन किया है ।[१] इस विषय में विद्धत् समाज ने भी काफी अन्वेषण किया है । श्री रन्जन सूरिदेव ने प्रथमदिवसे से तात्पर्य आषाढ़ षष्ठी लिया है-आपञ्चम्यास्तु तिथयः कृष्णवत् परिकीर्तिताः अर्थात्, पंचमी पर्यन्त शुक्लपक्ष की तिथियां कृष्णपक्ष के समान मानी गई है । इसके आधार पर वे आषाढ़ शुक्ला षष्ठी से चतुर्मास का प्रारम्भ मान हरिबोधिनी कार्तिक शुक्ल एकादशी तक जो पांच दिन की अधिकता रह जाती है उसे मास तिथि के दैनिक वृद्धि क्षय में खपा लेते हैं ।[२] रेवाप्रसाद ने यह कहते हुए उनके मत का खण्डन किया है कि रंजन जी प्रबोध शुक्ल एकादशी को ही मानते हैं, इस दृष्टि से पुनःबढ़ते हुए दिनों की संख्या दस ही हो जाएगी क्योकि अगले कृष्ण पक्ष के पांच दिन न्यायतः शुक्लपक्ष में जुड़ जाएंगे । अतः रंजन सुरिदेव का मत माननीय नहीं है ।

इस सन्दर्भ में रेवाप्रसाद द्विवेदी का मत विशेष रूप से दर्शनीय है । उन्होने प्रथम दिवसे पाठ को मूल मानते हुए स्थिर. व चारि. की व्याख्या के आधार पर

---

१. केचितु आषाढस्य प्रथमदिवसे प्रधानदिवसे पूर्णिमायामित्यर्थ यतः आषाढी पूर्णिमा यस्मिन् मासे स आषाढ़ इति पूर्णिमायेवाषाढ़ संज्ञोत्पत्तेः पूर्णिमाया अत्र प्राधान्यमिति व्याचक्षते । तन्न कष्टककल्पितत्वात् । केचितुं प्रथं ख्यातं मेघं अदिवसे विष्णुदिवसे शुक्लैकादश्या किं वा अदिवसे अविद्यमान दिवसे मासावसाने , किं वा अदिवसे रात्राविति व्याचक्षते । एतदपि न कृत्यम्, अनुपादेयत्वेन कुकवित्वापत्तेः । भरत. पृ.४

२. मेघदूत: एक अनुचिन्तन पृ. ७४

प्रथम को प्रवर अर्थ में लिया है और प्रथम दिवसे से तात्पर्य आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी लिया है। इसी एकादशी व द्वादशी की सन्धि को भगवान् विष्णु का शयन पर्व कहा है। यह दिन हरिवोधिनी एकादशी केसमान प्रमुख मानकर उत्सव रूप में मनाया जाता होगा। इस दृष्टि से आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक पूरे चार मास हो जाते हैं।[१] अतः यह दिन शेषान्मासन्गमय चतुरो को देखते हुए पूर्णतया उचित प्रतीत होता है। विश्वनाथ भट्टाचार्य ने भी आषाढ़ की प्रथम शुक्ल एकादशी को ही मेघ का दर्शनकाल कहा है।[२]

केतकाधानहेतोः (३)

कौतुकाधानहेतोः

दक्षि. ने कौतुकाधानहेतोः पाठ देते हुए लिया है-

कौतुकं कामविषयोत्सुक्यम् कौतुकार्पणहोतोरित्यर्थः कौतुकं विषयाभोगे हस्ते सूत्रे कुतूहले। कामे ख्याते मङ्गले च इति यादवः। केतकाधानहेतोरिति पाठे गर्माधानहेतोरित्य इत्रदमत्यन्तश्लाघ्यविशेषणं न स्यादिति बोधव्यं कोतुकाधानहेतोरिति विशेषणं मनोरथस्थितं मेघस्वागतादिकार्य विस्मृत्य च परवशो वमूवेत्यर्थस्य कारणत्वेनोक्तम्। (पृ. ३)।

चारि. व मल्लि. ने दक्षि. का अनुकरण कर इसी पाठ को मान्यता दी है कौतुकाधानेहेतोरभिलाषोत्पादनकारणस्य। कौतुकं चाभिलाषे स्यादुत्सवे नर्महर्षयोः विश्वः (पृ.४)। इस पाठ को ग्रहण करने पर काम उत्सुकता रूप कारण पुनरुक्तिमात्र प्रतीत होता है। कवि ने इसी श्लोक के उत्तरार्द्ध में-

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।। (मेघ. ३)

कह मेघ-दर्शन कामाभिलाषा उत्पन्न करने का कारण कहा है। शायद दक्षि. केतकाधानहेतोः के सरलार्थ पर ही जाते हैं। उसमें छिपी ध्वनि को नहीं देख पाते। केतकाधानहेतोः द्वारा कवि का अभिप्राय केवल केतकपुरुषों की उत्पत्ति बताना अभीष्ट नहीं है अपितु विरही यक्ष पर पुष्प रूप बाण से प्रहार करना अभिप्रेत है। कहा गया है-

सुशीतानि सुगन्धीनि वनानि च सरांसि च।
सम्भोगेष्वनुकूलानि दहन्ति विरहे भृशम् ।।[३]

इस सुगन्धि युक्त केतक, पुष्पो की उत्पत्ति वर्षाकाल में मानी गयी है-

केतकी नीपकुटजैः शाद्वलैः सेन्द्रगोपकैः।
मेघवातैः सुखस्पर्शैः प्रावृटकालं प्रदर्शयेत् ।।[४]

स्थिर., बल्लभ., पूर्ण., सना. सारो., सुमति., भरत., कृष्ण. आदि टीकाकारों

---

१. The Vikram (ka.vi), Vol. x, 1967, p. 17-30
२. Proc. AIOC,1972, UJJAIN, p. 429-30.
३. भरत., पृ.२
४. कृष्ण, पृ.१

ने केतकाधानहेतोः पाठ ही दिया है। स्थिर. ने इसकी व्याख्या में कहा है-

केतकी कुसुमोत्पादन निदानस्य अनेनोद्दीपन विभावत्वादवलोकनमपि कर्त्तुमशक्यम् (पृ०६) पूर्ण के शब्दों में - 'परिमलबहुलकेतकीकुसुमनिकरोत्पादननिमित्तभूतस्य। अनेन कुसुमास्त्रसहाय्यसंनाहो ध्वन्यते। (पृ. ९)। भरत. ने केतक प्रयोग के महत्व को इसी रूप में व्यक्त किया है। केतकेति केतकानां काष्ठस्वाभानामचेतनानामपि विकारकारित्वेन विरहिदुः सहत्वं मदनबाणकारणतया दुर्दशत्वञ्च ध्वनिः (पृ.५)।

इन अर्थों को देखते हुए यहां केतक पाठ ही अधिक उचित प्रतीत होता है। सम्भवतः दक्षि. भी यदि केतकाधानहेतोः के उपरोक्त भावों को दृष्टिगत करते तो वह इसी पाठ को ग्रहण करते।

कृष्ण. ने केतकाघानहेतोः का अर्थ केतक पुष्पो की उत्पत्ति का कारण मेघ कहा है साथ ही उन्होने केतक की दो अन्य व्यत्पत्तियां भी दी हैं-यद्धा, कं जलं तत्र इतं चारं कुर्वन्ति इति केतकाः तेषामाधानं रक्षणं तद्धेतोरलकाया इत्यस्य वा विशेषणम्। के शिरोजलमाख्यातं कं सुखेऽपि प्रकीर्तितम् इत्येकाक्षरकोषः।(पृ. ५)

केतक के ये दोनों अर्थ व्युत्पत्ति की दृष्टि से सराहनीय कहे जा सकते हैं पर प्रसंग को देखते हुए यह अर्थ यहां सम्बन्ध नहीं होते। सम्भवतः इसीलिए कृष्णपति ने स्वयं केतकानां यदाधानं हेतोः कारणस्य, तदानीमेव तेषामुत्पत्तेः। कहा है।

प्रत्यासन्ने नभसि (४)

प्रत्यासन्ने मनसि

दक्षि. ने प्रत्यासन्ने मनसि पाठ को ग्रहण कर-प्रत्यासन्ने प्रकृतिस्थे मनसि चेतसि। ध्यानव्याकुलिते हृदये पुनः प्रतिष्ठते सतीत्यर्थः। (पृ.४) कहा है। उनके मत में यदि नभसि पाठ ग्रहण करते है तो ये समस्याएं आती हैं-

प्रत्यासन्ने नभसि इति पाठे नभः शब्दः श्रावणमास वचनः। .. तदा प्रस्तुतमाषाढं विहाय विलम्वनमयुक्तमिति मन्तव्यम्। किं च श्रावणमासे-मासानन्यान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा इति वचनं स्यादयुक्तमिति।। अन्येत्वाहुः नभः शव्दो वर्षर्तुवाचकः, वर्षासमये समागते दयिताजीवितलम्बनार्था स्वप्रवित्तिं जीमूतेन हारयिष्यन्निति वर्षासमयात् प्रागेव तस्य चिन्तेति। तदप्यसंगतम्। इत्यौसुक्पादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे इति तात्कालिककार्यचिन्तानिर्देशात्। (पृ.४)

पर उनके ये विकल्प पुष्ट नहीं कहे जा सकते। मेघ-सन्देश श्रावण में न भेजकर आषाढ़ में ही भेज रहा है। अतः विलम्ब का कोई स्थान ही नहीं रहा जाता और मासानन्यान् गमय चतुरो में भी कोई बाधा नहीं आती क्योकि आषाढ़ की शुक्ल एकादशी से कार्तिक शुक्ल एकादशी तक पूरे चार महीने हो जाते हैं। जहां तक वर्षा ऋतु से पूर्व ही प्रिया के जीवनार्थ सन्देश भेजने की चिन्ता है वह असंगत न होकर संगत ही है। रोगी को औषधि रुग्णावस्था में ही दी जाती है। मृत्यु, होने पर नहीं। अतः कामातुर यक्षिणी के लिए वर्षा से पूर्व ही सन्देश भेजना उचित है।

वर्षा का प्रारम्भ श्राव्ण में कहा गया है । अतः प्रत्यासन्ने नभसि ही इस बात का द्योतक है कि वह वर्षा से पूर्व ही सन्देश भेजना चाहता है । अतः दक्षि. का नभसि की जगह मनसि पाठ ग्रहण करने का कोई ठोस आधार प्रतीत नहीं होता ।

चारि. ने पाठान्तर के रूप में मनसि पाठ दिया है । अन्य सब टीकाकारों ने नभसि पाठ ही दिया है। जहां तक नभसि के अर्थ का सम्बन्ध है । स्थिर., वल्लभ., सारो., सुमति., शाश्वत आदि टीकाकारों ने इसे श्रावण मास का वाचक कहा है। पर साथ ही कुछ स्थलों पर नभसि को श्रावण के साथ-साथ आकाश व मेघ का वाचक भी कहा गया है । स्थिर. के शब्दो में-समुपस्थिते श्रावणे मासि । सलिलभरावनततोयवाहनिवहपिहितत्वेन वियति वा निकटतामिवागते । (पृ.७)

वल्लभ. ने नभसि का गमन अर्थ विकल्प रूप में दिया है-यदि वा जलदिनिचित्वात्प्रत्यासन्ने निकटवर्त्तिनीव नभसि गमन इति व्याख्येयमिति केचित् गगन एव जीमूतो वार्ता नयति । (पृ.४)

कृष्ण ने इसे आकाश, मेघ व श्रावण तीनों अर्थों में लिखा है -नभसि आकाशे प्रत्यासन्ने निकटवर्तिनि सति अर्थान्मेघे । यद्वा, नभसि मेघे प्रत्यासन्ने सति । यद्वा, नभसि-श्रावणे जलदे व्योम्नि नभः क्लीवं धनुर्धरः इति मेदिनिः । (पृ.५)

यहां नभसि का श्रावण मास अर्थ अधिक रुचिकर है । श्रावण वर्षाकाल है जो प्रवासी प्रियाओं के लिए अत्यन्त दुःसहनीय है-

अहह पांथ न जीवति ते प्रिया ।
नभसि मासि न यासि गृहं यदि ।।[१]

अतः नभसि पाठ ही अधिक रुचिकर है ।

दयिताजीवितालम्बनार्थं

दयिताजीवितालम्बनार्थी

दयिताजीवितालम्बनार्थां

सुमति., सारो., एवं चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है । सुमति ., के शब्दो में निजभार्यायाः जीवितव्यरक्षणार्थम् (पृ.९७) । चरणतीर्थ ने प्रियायाः जीवितस्य जीवितव्यस्य आलम्बनार्थं धारणाय (पृ.६) कहा है । स्थिरदेव ने विकल्प रूप में इस पाठ को देते हुए कहा है-आलम्बनार्थमिति यदि पाठान्तर तदालम्बनायेर्त्थः । (पृ.८)

वल्लभः, मल्लि., पूर्ण., व कृष्ण. ने द्वितीय पाठ लेते हुए यक्ष के विशेषण रूप में इसे माना है । वल्लभ. के शब्दो में यतोऽसौ दयिताया जीवितालम्बनं प्राणसंधारणमर्थयते । (पृ.४)

स्थिर., दक्षि., चारि., सना.,शास्वत. व भरत. ने यहां तृतीय पाठ को लिया है । उन्होने इसे प्रवृत्तिम् का विशेषण माना है । भरत.के शब्दो में दयितायाः प्रियायाः जीवितस्य प्राणधारणस्यावलम्बनमवष्टम्भः स्थैर्यमर्थ प्रयोजनं यस्यास्तादृशीं,

---

१. ed. G. R. Nandargikar (Notes), p. 7.

प्रबलविरहपीड़ादायित्वात् प्राणास्त्यक्षतीत्याशङ्क्य विरहिण्याः कान्तवार्ताश्रवणस्य प्राणाधारकत्वात् स्ववार्त्ता प्रस्थाप्यत इति भावः । (पृ. ६)

प्रणयकृपणाः (५)

प्रकृतिकृपणाः

पुरातन टीकाकारों वल्लभ., स्थिर. दक्षि. पूर्ण. व परमेश्वर ने प्रणय कृपणाः पाठ लिया है और प्रणय का अर्थ याचना किया है-

स्थिर.-प्रणयकृपणाः दीनाः प्रणयेन याचनेन कृपणाः भवन्ति (पृ.९) ।

वल्लभ.-प्रणयकृपणाः प्रार्थनादीना भवन्ति (पृ.५) ।

पूर्ण० -प्रियाप्रवृत्तिकथनतत्प्रदर्शनतत्समीपगमनादियाञ्चयादीनवृत् .यः (पृ १२) ।

प्रणय के याचना अर्थ को देखते हुए यही पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है । कवि ने अर्थान्तरन्यास का प्रयोग किया है । यहां ययाच क्रिया की प्रधानता है और उसी का समर्थन कवि ने कामार्त्ता हि प्रणयकृपणाः चेतनाचेतनेषु के द्वारा किया है । [१]

चारि., मल्लि., सना., शाश्वत., सुमति., भरत., कृष्ण. व चरणतीर्थ ने प्रकृतिकृपणाः पाठ दिया है । यह पाठ लेने पर प्रकृति किसी विशेष भाव को व्यक्त नहीं करता । कामार्त्ता हि कृपणाः के द्वारा ही कामातुरों का स्वभाव व्यक्त हो जाता है । इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् के द्वारा भी कवि ने यक्ष की प्रवृत्ति को बता दिया है ।

अतः अर्थान्तरन्यास द्वारा कवि का अभिप्राय यही है कामार्त्त चेतन के समान अचेतन से भी याचना करता है और यह अर्थ प्रणयकृपणाः के द्वारा ही स्पष्ट होता है ।

चातकस्तेसगन्धः (१०)

चातकस्तोयगृध्नुः

चातकस्ते सगर्वः

चातकस्ते सदर्पः

चातकस्ते सगर्धः

चातकस्ते सबन्धुः

वल्लभ.व कल्याण मल्लि. ने चातकस्तोयगृध्नुः पाठ दिया है । स्थिर. ने इस पाठ का खण्डन करते तोयगृध्नुरित्यपरः पाठ एव । स तादृशस्य शुभस्य सूचकत्वे न घटते (पृ. १५) । कवि का अभिप्राय मेघ को मार्ग की अनुकूलता बताना व शुभ शकुन निर्देश करना प्रतीत होता है ।ऐसी स्थिति में यह पाठ मान्य नहीं कहा जा सकता ।

स्थिर., चारि., सुमति., भरत. व चरणतीर्थ ने चातकस्ते सगर्वः पाठ दिया है । स्थिर. ने गर्व को हर्ष अर्थ में लिया है- सगर्वः सहर्षः इति शुभचेष्टाकथनम्

१. The Vikram (Ka. Vi), Vol. IX, p. 18-19.

(पृ. १४)। सुमति. के शव्दो में सगर्वः सहर्षः जललाभात् (पृ. १०२) । चारि (पृ. १४) ने गर्व का अभिमान अर्थ दिया है । गर्व से तात्पर्य–

गर्वो नाम कुलैश्वर्य्यरुपविघ्नाबलादिभिः ।
इष्टार्थविषयोत्पत्तेर्जायते नीचगोचरः ।। (भरत.पृ.११)

सारो., लक्ष्मी. महिम. रामनाथ व हरगोविन्द ने इसी पाठ को दिया है ।[१]

सना. ने सदर्पः पाठ देते हुए दर्प का अर्थ हर्ष किया है– सदर्पो हृष्टः प्राप्तभीष्टजलकत्वात् (पृ. २१)

गर्व अथवा दर्प का प्रयोग अभिमान के लिए ही होता है ओर अभिमान के कारण जो ध्वनि होगी उसमें मधुरता का अभाव होगा । अतः मधुर को दृष्टिगत कर यह पाठ भी मान्य प्रतीत नहीं होता ।

सर्गधः पाठ यद्यपि उपलब्ध टीकाओं में दृष्टिगत नहीं होता पर भरत ने सगर्ध इति क्वचित् पाठः, तत्र गृधु अभिकांक्षायांधञ् , गर्धस्तृष्णा तत्सहितः, किन्त्वेवं शाकुन विरोधो दुष्परिहरः (पृ ११)कह स्वंय ही इस पाठ का खण्डन कर दिया है ।

सुशील कुमार ने कुछ प्रतिलिपियों में चातकरस्तेसबन्धुः पाठ का उल्लेख किया है ।[२]

दक्षि., मल्लि., पूर्ण., व कृष्ण. ने चातकस्ते सगन्धः पाठ दिया है । दक्षि. के शव्दो में सगन्धःसगन्धो बन्धुरिष्यते इति हलायुधः । पितृपैतामहानमात्यान् , कुर्वीत दृष्टापदानत्वात् ते ह्येनमपचरन्तमपि न त्यजन्ति सगन्धत्वात् (अधि.१ अध्याय ८, पृ. ४) इति कौटिल्येन बन्धुविषये सगन्धशब्दः प्रयुक्तः । (पृ. ८–९)

मल्लि. ने गन्ध को गर्व अर्थ में लिया है, साथ ही–सगन्धः सगर्व । सम्बन्धीति केचित् । गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः इत्युभयत्रापि विश्वः । (पृ.८ कहा है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे सम्बन्धी अर्थ भी मान्य है ।

मेघ व चातक का अभीष्ट सम्बन्ध कहा गया है–यद्यपि चातकपक्षी , क्षपयति जलधरमकालवेलायाम् । तदपि न कुप्यति जलदो गतिरिह नान्या यतस्तस्य ।[३]

कवि ने अगले ही श्लोक में अव्यापन्नाम् भातृजायाम् कहा है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि कवि यहां वायु की अनुकूलता व वाम भाग में चातक की स्थिति कह शुभ शकुन सूचित कर रहा है । चातक का वाम भाग में होना शुभ माना गया है–

वर्हिणश्चातकाश्चाषा ये च पुं संज्ञिता खगाः ।
मृगा वां वामगा हृष्टाः सैन्यसम्पदबलप्रदाः ।।[४]

कालिदास ने अन्यत्र भी सगन्धः का सम्बन्धी अर्थ में प्रयोग किया है–सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति ।[५] अतः सगन्धः के सम्वन्धी अर्थ को दृष्टिगत करते हुए यही

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 13.
२. Meghduta - S.K. De (Sahitya Akndami) 1970. p. 5.
३. हिन्दी मेघदूत–विमर्श – पृ.२७
४. भरत. टीका– पृ.११
५. अभि.शा. अंक– ५

पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। मेघ रूप सम्बन्धी को देखकर चातक का मधुर स्वर करना यहां अभिप्रेत है।

गर्भाधानक्षणपरिचयात् (१०)

गर्भाधानक्षमपरिचयात्

गर्भाधानक्षमपरिचयं

गर्भाधानस्थिरपरिचया

दक्षि. एवं पूर्ण ने क्षमपरिचयात् पाठ लिया है। क्षम का शक्त अर्थ लेते हुए दक्षि. ने कहा है-क्षमशब्दः शक्तवाचकः। क्षितिक्षान्त्योः क्षमायुक्ते क्षमंशक्ते हिते त्रिषु इत्यमरः। गर्भाधानशक्तःपरिचयो (पृ. ९)। पूर्ण ने भी अपत्योत्पादनशक्तादभ्यासात् (पृ. १९) अर्थ दिया है। पर शक्त अर्थ किसी विशेष भाव को व्यक्त नहीं करता। गर्भाधान शब्द के द्वारा ही मेघ की क्षमता का बोध हो जाता है।

सना., शाश्वत, रामनाथ, हरगोविन्द व भरत. ने क्षमपरिचयं पाठ लेकर इसे मेघ का विशेषण मानते हुए भवन्तं के साथ सम्बद्ध किया है। लेकिन इसे कर्मपद मान लेने पर नूनमावद्धमालाः की इतनी उपयोगिता नहीं रह जाती। यहां बलाकाओं का पंक्तिबद्ध होकर मेघ का स्वागत करने का कारण गर्भाधान इच्छा है। अतः परिचयात् पाठ ही अधिक उचित है।

वल्लभ. ने गर्भाधान स्थिरपरिचया पाठ देते हुए गर्भाधानेन स्थिरः परिचयो यासां (पृ. ८) कहा है। जिससे यह भाव निकलता है बलाकाएं पूर्वकाल में ही मेघ-समय में गर्भ धारण कर चुकी है- यह अर्थ उचित नहीं। यक्ष मार्ग के आकर्षणों का उल्लेख कर मेघ को जाने के लिए प्रोत्साहित कर रहा है। अतः यहां यक्ष का अभिप्राय तत्कालीन गर्भाधान से ही है। इस दृष्टि से स्थिरपरिचया पाठ मान्य नहीं कहा जा सकता।

स्थिर., चारि., मल्लि., सारो., सुमति, कृष्ण. व चरणतीर्थ ने गर्भाधानक्षणपरिचयात् पाठ दिया है। अर्थ के सम्बन्ध में टीकाकार एक मत नहीं हैं। स्थिर.[1] व चारि.[2] ने क्षण का अर्थ समय करते हुए परिचय से तात्पर्य संगम से लिया है। सुमति. (पृ. १०२) ने क्षण का अर्थ क्षणमात्र किया है-गर्भाधान में क्षणमात्र संगम के कारण से। मल्लि. ने क्षण का उत्सव अर्थ लेते हुए कहा है-तस्याधानमुत्पादनं तदेव क्षणः उत्सवः। सुखहेतुत्वादिति भावः। निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः इत्यमरः। तस्मिन्परिचयादभ्यासाद्धेतोः (पृ. ९) उनके मत में गर्भाधान काल सुख का हेतु होने से उत्सव रूप ही है।

---

१. गर्भास्याधानं धारणं तस्मिन् क्षणे समये परिचययस्तस्मात् सन्तोप्याहुरपत्यार्थ दम्पत्योः सङ् गमं मिथः। ताः किल जलदसंपर्काद्गर्भ विभ्रतीति प्रवादः। स्थिर. - पृ १५

२. तस्मिन् क्षणे समये परिचयः सङ्गस्तस्मादाबद्धमाला। चारि. - पृ. १४

सारो. ने-गर्भाधानक्षणपरिचयात्, गर्भग्रहणावसरात् त्वदीयगर्जितश्रवणेन तासां गर्भः समुत्पद्यते। गर्भाधानं हि महिलानां महानुत्सवः। यत्समागमे महोत्सवो भवति को नाम तस्य सेवां न कुर्यादिति [१] कहा है। अर्थ को दृष्टिगत कर यही पाठ अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। बलाकाएं मेघों के सम्पर्क से गर्भ धारण करती है-गर्भ बलाका दधतेऽभ्रयोगान्नाके निबद्धा वलयः समन्तात् [२] अतः गर्भाधान अवसर पर बलाकाओं का पंक्तिबद्ध होकर मेघ का स्वागत करना उचित ही है।

प्रायशो ह्यङ्गनानां (११)

प्राणमप्यङ्गनानां

दक्षि. व पूर्ण. ने द्वितीय पाठ ग्रहण करते हुए प्राण को बल का वाचक कहा है-

दक्षि.-कुसुमसदृशप्राणं कुसुमसदृशबलं। प्राणो वायो बले स्थैर्ये पुंसि भूम्न्यसुवाचकः। इति केशवस्वामी (पृ.१०)

पूर्ण.-कुसुमसदृशप्राणं प्राणः बलम्। प्राणस्तु प्रणये जीवे जीविते परमात्मनि। इन्द्रिये वायुर्भेदे च बलान्तर्यामिणोरपि इति वैजयन्ती। (पृ. २२)।

यहां बल अर्थ किसी विशेष भाव को व्यक्त नहीं करता कुसुमसदृशं के द्वारा ही नारीहृदय की सुकुमारता व्यक्त हो जाती है। अतः यह पाठ रुचिकर नहीं कहा जा सकता।

अन्य सब टीकाकारों ने प्रायशोह्यङ्गनानां पाठ ही दिया है जिसका भाव है कि विप्रयोग में प्रायः आशाबन्धन स्त्रियों के सुकुमार हृदय को रोके रखता है।

उच्छिलीन्ध्रातपत्रां (१२)

उच्छिलन्ध्रातपत्रां

उच्छिलिन्ध्रावन्ध्यं

उच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां

उत्सिलीन्ध्रामवन्ध्यां

उच्छिलिन्ध्रातपत्रां

वल्लभ. ने उच्छिलिन्ध्रामवंन्ध्यं पाठ ग्रहण कर लिखा है यन्महीमवनिमुच्छिलिन्ध्रामुद्भूतशिलिन्ध्रारव्यकुसुमां विधातुं शक्नोति। तानि हि मेघ गर्जितेन जायन्ते। अतएव तदवन्ध्यं सफलम्। (पृ. ९) वे अवन्ध्यं से तात्पर्य मेघगर्जन की सफलता लेते हैं।

दक्षि. उत्सिलीन्ध्रामवन्ध्यां एवं पूर्ण. व मल्लि. ने उच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां पाठ दिया है। मल्लि. ने इसके व्याख्या में कहा है-महीमुच्छिलीन्ध्रामुद्भूतकन्दलकाम्। कन्दल्या च शिलीन्ध्रा स्यात् इति शब्दार्णवे अतएवावन्ध्यां सफलां कर्तुं प्रभवति शक्नोति शिलीन्ध्राणां भाविसस्यसम्पत्ति- सूचकत्वादिति भावः तदुक्तं निमित्त निदाने कालाभ्रयोगादुदिताः शिलीन्ध्राः सम्पन्नसस्यां कथयन्ति धात्रीम् इति (पृ. १०) वे

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 13.

२. हिन्दी मेघदूत-विमर्श, पृ. ४८

अवन्ध्या को मही का विशेषण मानते हैं।

अवन्ध्यं अथवा अवन्ध्यां ये दोनों पाठ ही मान्य प्रतीत नहीं होते। जहां तक पृथ्वी की अवन्ध्यता का प्रश्न है वह तो उच्छिलीन्ध्राम् के द्वारा ही स्पष्ट हो जाती है। और मेघ की वन्ध्यता का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योकि वन्ध्यता स्त्रियों में पाई जाती है। अतः यह विशेषण पुल्लिङ्गवाची मेघ का कैसे हो सकता है?

सम्भवतः इसी को दृष्टिगत कर चारि., सना., शाश्वत, भरत व कृष्ण ने उच्छिलीन्ध्रातपत्रां पाठ कहा है। स्थिर. व सुमति. ने उच्छिलन्ध्रातपत्रां एवं चरतीर्थ उच्छिलिध्रातपत्रां कहा है। इन तीनों पाठों में मात्रा में भिन्नता है। स्थिर. के शब्दो में उच्छिलन्ध्रातपत्रां उद्गतानि शिलन्ध्राणि तान्येवातपत्राणि यस्यां ता। एतेन मेघश्लाघा। यस्य शब्दमात्रादपि वसुन्धरा एवं विधां सम्पदमादधाति तस्य व्यापारः किं वा न विधास्यतीति (पृ.१८)। सुमति. के शब्दो में-उच्छिलमिति उत् ऊर्ध्वं भूमिस्फोटकानि छत्रकाणि तान्येव आतपत्राणि छत्राणि यस्यां सा उच्छिलन्ध्रातपत्रा तामुच्छिलन्ध्रातपत्राम् (पृ. १०४) अतः आतपत्रां पाठ ही सार्थक है।

दृष्टोत्साहः (१४)

दृष्टोच्छ्रायः

चारि. सना., भरत. व कृष्ण. ने दृष्टोच्छ्रायः पाठ लिया है-

चारि.-दृष्ट आलोकित उच्छ्राय अधिक्यं यस्य स त्वं (पृ.१९)

सना.-दृष्टोच्छ्रायः वीक्षितोन्नतिः। (पृ.३१)

भरत.-दृष्टउच्छ्राय उन्नतिर्यस्य (पृ.१६)

उच्छ्राय से तात्पर्य वे उन्नति लेते हैं तब यह भाव निकलता है कि मेघ के अत्यधिक उन्नत होने के कारण सिद्धांगनाओं को वह पर्व्रत शिखर प्रतीत हो रहा है और उसके पतन की आशंका से भययुक्त हैं, यहीं उनकी मुग्धता है।

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., पूर्ण., मल्लि., सुमति., चरणतीर्थ ने दृष्टोत्साहः पाठ लिया है। उत्साह से तात्पर्य उद्यम से है-

स्थिर.-दृष्टोत्साहोऽवलोकितोद्यमो (पृ.२०)

वल्लभ.-दृष्टोत्साहः दृष्टोद्यमः। (पृ.१०)

कवि ने मुग्धांगनाओं की मुग्धता व त्रास का वर्णन किया है, जो मेघ को पर्वत शुंग समझकर पवन के उद्यम से ले जाया हुआ जान रही है और उसके गिर जाने की आशंका से भय युक्त है, यही उनकी मुग्धता है।

यद्यपि कवि का अभिप्राय मेघ की उन्नतता दर्शाना अभीष्ट है पर यह भाव तो इससे भी ध्वनित हो जाता है कि मेघ की उन्नता के कारण ही वह उसके यथार्थ रूप को जानने में असमर्थ है और उसे पर्वत शुंग मान वायु द्वारा आहरण किया हुआ समझ रही है। यदि दृष्टोच्छ्रायः पाठ लेते हैं तो मुग्ध एवं चकितचकितं विशेषणों की इतनी उपयोगिता नहीं रह जाती। दृष्टोत्साहः पाठ मान्य प्रतीत होता है।

किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण (१६)

किंचित्पश्चात्प्रवलय गतिं भूय एवोत्तरेण

किंचित्पश्चात् प्रगुणय गतिं भूय एवोत्तरेण

किंचित्पश्चात् व्रज लघुगतिः किंचिदेवोत्तरेण

इस चरण के पाठ व अर्थ को टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न रूप में कहा है। वल्लभ. ने द्वितीय पाठ देते हुए लिखा है मालमुद्धारं क्षेत्रं पश्चादनन्तरमुत्तरेणोत्तरस्यां दिशि भूयो बहुतरं गतिं प्रवलय व्यावर्तय। मालं हि दक्षिणास्थं तेन चोत्तराशागन्व्येति गति प्रवलनम्...प्रवलनं स्फिरणम् उचरेणेत्योनबन्तः। (पृ. ११)

स्थिर. ने तृतीय पाठ लिया है साथ ही प्रगुणय के स्थान पर प्रचलय पाठ का उल्लेख किया है-त्वमुदीचीं प्रस्थितोऽपि किंचिन्मनाक् पश्चान्मालं पाश्चात्यसीमांन्तं दक्षिणाश्रितमारुह्य तस्योपरि स्थित्वा...क्षणमात्रं कृतविलम्बश्च भूयः पुनरप्युत्तरेणेव दिग्भागेन गतिं गमनं प्रगुणय सज्जीकुरु। प्रवलय वा व्यावर्तय (पृ. २२-२३)।

सारो. रामनाथ [१] न सना. ने चतुर्थ पाठ दिया है, पर इस पाठ को लेने से विरोधाभास ही प्रतीत होता है।

दक्षि., चारि., पूर्ण., मल्लि., सुमति., भरत. कृष्ण. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ को ग्रहण किया है। मल्लि. व पूर्ण. ने पश्चाद्व्रज को समस्त रूप में लिया है। अर्थ की दृष्टि से भी भिन्नता है-

दक्षि.-मालेन पश्चादगमनं तदुत्तरेण गमनं चाम्रकूटाख्यो पर्वते विश्रान्त्यथ-मुक्तमित्यवसेयम्। (पृ.१४)

चारि.-किञ्चित्पश्चादीषत्पश्चिमेन लघुगतिर्मन्दगमनः सन् व्रज गच्छ। भूयः पुनरपि उत्तरेणेव व्रज। (पृ. २१)

पूर्ण.-किंचित् पश्चात् पश्चिमां दिशमुद्दिश्य मार्गसौन्दर्यानुरोधेन। लघुगतिः शीघ्रगमनः, विश्रमशैलाभावात्। उत्तरेण उत्तरदिग्भागेनः भूयः पुनः, अंगीकृताया उत्तरदिशो मध्ये परित्यागात्। एवकारो भिन्नक्रमः, उत्तरेणैव प्रस्तुतेनेत्यर्थः (पृ. ३१)

मल्लि.-किंचित्पश्चात् व्रज गच्छ। लघुगतिस्तत्र निर्वृष्टत्वात्क्षिप्रगमनः सन्। लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् इत्यमरः। भूयः पुनरप्युत्तरेणेवोत्तरमार्गेणेव व्रज॥(पृ. १४)

सुमति.-भूयः पुनरपि उत्तरेणेव उत्तरस्यां दिशि एव व्रज गच्छ। किं कृत्वा पश्चात्पूर्वस्यां दिशि मालं मालाख्यं देशं किंचित्स्तोकमात्रमारुह्य (पृ १०८)

भरत.-लघुगतिः शीघ्रगतिः सन् किञ्चिदीषत्पश्चात् पश्चिमेन किञ्चिदुत्तरेण व्रज गमिष्यसि। ...लघुगतिरित्यनेन जलबिन्दुवर्षणं सूचितम्, अशीघ्रगतो हि धारावर्षे गन्धो न स्यात्। लघुगतिरिति स्वकार्यगमनत्वरयोक्तमित्यन्ये। (पृ. १८)

चरणतीर्थ-हे मेघ, त्वं भूयः पुनरपि उत्तरेण व्रज गच्छ। कुतः शीघ्रगतिः एत्वं

१. Fresh Light on Kalidasa's Meghduta, p.73

लघुगतिर्भूत्वा व्रज । ...वधूनां लोचनैः पीयमानः स्याः तदा त्वं किंचित् लघुगतिः अल्पवेगो भूत्वा पश्चात् पुनरेव उत्तरेण उत्तरदिशि व्रज गच्छ। (पृ. १८)

अधिकांश ने लघुगति का अर्थ शीघ्रगति लिया है चरणतीर्थ ने इसका अर्थ अल्पगति किया है । उन्होंने भाव ही एकदम भिन्न लिया है । जनपदवधुओं के नेत्रों से देखा जाने के कारण कुछ समय के लिए मन्दगति कर लेना तत्पश्चात् उत्तर की ओर जाना-यह भाव मान्य नहीं कहा जा सकता । कवि ने तो मेघ के मार्ग में अनेक स्त्रियों व नदी रूपी नायिकाओं का अवलोकन कराया है उनके कारण यदि मेघ मन्दगति हो जाता है, तो यक्ष जैसे विरही का सन्देश कब तक यक्षिणी तक पहुंचेगा, यह कल्पना से परे है । और सद्यः सीरोत्कषणसूरभि भी इसका द्योतक है कि मेघ ने तभी जलवर्षण किया । जल रहितता के कारण यहां कवि उसकी शीघ्रगति का उल्लेख कर रहा है। इसे अल्पगति का बोधक नहीं माना जा सकता।

अन्य पाठों की अपेक्षा प्रथम पाठ अधिक रुचिकर प्रतीत होता है । कवि ने मेघ को उत्तर दिशा में प्रस्थान का निर्देश दिया है। भूय एवोत्तरेण यह स्पष्ट करता है कि माल की स्थिति उत्तर दिशा में नहीं है । किञ्चित् पश्चात् का सम्बन्ध माल से है अर्थात् मेघ कुछ पश्चिम में स्थित माल पर चढ़कर शीघ्रगति से फिर उत्तर की ओर ही जाए । यही भाव उचित प्रतीत होता है ।

स्निग्धेवणीसवर्णे (१८)

सर्पवेणीसवर्णे

दक्षि. एवं पूर्ण. ने सर्पणीवेणीसवर्णे पाठ दिया है । दक्षि. के शव्दो में सर्पवेणीसवर्णे वेणीकेशबन्धः । सर्पस्य वेणी सर्पस्य वेष्टनम् । वर्णतः संस्थानतश्च सर्पवेणी समान इत्यर्थः ।

नीलालके मेघचये मेचके स्तनचूचुके ।
मण्डले कृष्णसर्पाणां सर्पवेणी निगद्यते ।। (पृ.१५)

पूर्ण. के शव्दो में -सर्पवेणीसवर्णे सर्पवेणी नाम मेचकरुचिः कश्चित् पदार्थ सर्पसदृशाकारः । नीलालके मेघचये स्तनचूचुके । मण्डले कृष्णसर्पाणां सर्पवेणी निगद्यते इति दिवाकरः । कामिनी केशवन्धविशेषो वा तत्समानच्छाये । सर्पवेणीति कृष्णभुजंगभोगमण्डलमिति केचित् । (पृ. ३३)

स्थिर. वल्लभ., मल्लि., सारो., सना., शाश्वत., सुमति., भरत . कृष्ण व चरणतीर्थ ने स्निग्धवेणी सवर्णे पाठ को लिया है । सन्दर्भ को दृष्टिगत कर यह पाठ अधिक उचित प्रतीत होता है । विरहावस्था में यक्ष को हर क्षण अपनी प्रिया का ही स्मरण है, मेघ भी उसे प्रिया की स्निग्ध वेणी समान प्रतीत हो रहा है । भरत. के शव्दो में -चिक्कणकेशविन्यास विशेषसमान नीलवर्णे त्वयि...गिरेः स्तनकारतां तर्कयन् स्वनारीवेणीं स्मृतवानिति वेण्या दृष्टान्तयति, तद्वेण्याश्च शापसमये अरुक्षत्वात् स्निग्धेति विशेषणम् । विरहित्वाद्वा तामेव पश्यतीति काष्ण्यें वेणीमेव दृष्टान्तयति, तथा च-सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे इति अन्यच्च,-

पश्यामि तामित इतः पुरतश्त पश्चादन्तर्वहिः परित एव च वर्तमानामि ति। स्निग्धश्चासौ वेणीसवर्णश्चेति केचित्। (पृ. २०)

कालिदास वैदर्मी रीति के कवि हैं और यहां श्रृंगार-रस के वर्णन में सर्प जैसे कठोर शब्दो के प्रयोग का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता।

जग्ध्वारण्येषु (२१)

दग्धारण्येषु

स्थिर., वल्लभ., पूर्ण., सारो., लक्ष्मी., महिम., सुमति,., सना., शाश्वत., रामनाथ, भरत., कृष्ण. व चरणतीर्थ ने दग्धारण्येषु पाठ दिया है।

दक्षि. व मल्लि. ने जग्ध्वारण्येषु पाठ लिया है नन्दगीर्कर ने इस पाठ को तीन कारणों से अमान्य कहा है-

(क) यदि जग्ध्वा पाठ लेते हैं तो श्लोक में दृष्ट्वा जग्ध्वा व आघ्राय इन तीन क्त्वार्थक प्रत्ययान्त शब्दो के होने के कारण या तो तीन च होने चाहिए अथवा एक च होना चाहिए जबकि श्लोक में दो च उपलब्ध होते हैं।

(ख) अधिक सुरभि में, अधिक विशेषण की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती।

(ग) कन्दली का प्रयोग श्लोक के पूर्वाद्ध मे हुआ है। जबकि जग्ध्वा उत्तरार्द्ध में है। अतः दूरान्वय दोष आ जाता है।

उनके मत में यदि दग्धारण्येषु पाठ लें तो इन दोषों का कोई स्थान नहीं रह जाता-

(क) श्लोक में तब दो ही क्त्वार्थक प्रत्ययान्त शब्द रहेंगे। प्रथम च तो नीप व कन्दली के साथ दृष्टवा सम्बद्ध हो जाएगा और दूसरा आघ्राय के।

(ख) तब अधिक शब्द की भी सार्थकता हो जाती है क्योंकि तप्तवनों में वर्षा के जल से जो सुगन्ध ठती है वह अधिक सुगन्धियुक्त होती है।

(ग) और जब जग्ध्वा पाठ ही नहीं है तो दूरान्वय का तो कोई स्थान ही नहीं रह जाता।[१]

पर नन्दगीर्कर के ये प्रमाण पुष्ट नहीं कहे जा सकते-

(क) तीन कार्यों की अभिव्यक्ति एक अथवा दो च के द्वारा पूर्णतया हो जाती है। उसके लिए तीन च तो किसी भी प्रकार अपेक्षित नहीं। उदाहरणार्थ- दृष्टवा जग्ध्वा आघ्राय च अथवा दृष्टवा जग्ध्वा च आघ्राय च।

(ख) पृथ्वी स्वभावतः गन्धवती है। गर्मी से तप्त पृथ्वी पर वर्षाकाल में जिस विवेश गंध की अभिव्यक्ति होती है उसी के द्योतनार्थ अधिकसुरभि कहा गया है।

(ग) यदि पूर्व चरण में पठित, दृष्टवा का सम्बन्ध द्वितीय चरण के कन्दली के साथ हो सकता है। तो तृतीय चरण का जग्ध्वा कन्दली के साथ सम्बद्ध क्यो नहीं हो सकता?

इसके अतिरिक्त मृगों का भोजन कन्दली कहा गया है-कन्दली चेति

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 25.

मृगवृक्षप्रभेदयोः इति धरणिः । (भरत. पृ. २२) अतः सारंग अर्थात् मृग कन्दली को देखकर नहीं अपितु खाकर ही हर्षित होंगे इस भाव को दृष्टिगत करने से जग्ध्वा पाठ का ही औचित्य प्रतीत होता है । दक्षि. ने इस पाठ की व्याख्या में कहा है-जग्ध्वेति पाठः । जग्ध्वा भक्षयित्वा । अद भक्षणे इत्यस्माद्धातोः अदोजग्धिर्ल्यप्तिकिति (२.४.३६) इति जग्ध्यादेशः ननूर्वीगन्धस्य वक्ष्यमाणत्वाद् दग्धारण्येष्विति पाठ एव युक्त इति । तन्न । दाहमन्तरेणापि वसुधागन्धस्य सम्भवात् । उपरत्र वक्ष्यति च... 'त्वं निष्पन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धिसम्पर्करम्यः ' इति अरण्येषु, सर्वशेषमिदम् । अधिकसुरभि स्वभावत एव उर्व्या गन्धवत्यापेक्षया अधिकशव्दः प्रयुक्तः । (पृ० १८)

मल्लि. ने जग्ध्वारण्येषु पाठ मानते हुए लिखा है दग्धाण्येषु इति पाठे दग्धम् इत्यधिकविशेषणम् अर्थवशात्कन्दलीश्च दृष्टवैत्यन्वयो द्रष्टव्यः (पृ. १७- १८) ।

विश्राम हेतोः (२५)

सभी टीकाकारों ने इसी पाठ को दिया है, पर उसकी शुद्धता व निष्पत्ति के विषय में टीकाकारों में वैमत्य है-

वल्लभ.ने-विश्राम शव्दः कवीनां प्रमादजः (पृ. १६) कह इस पाठ को असाधु कहा है । इस शव्द की सिद्धि के विषय में कुछ टीकाकारों के मत इस प्रकार हैं-

स्थिर.-वो श्रमेरिति विभाषया दीर्घः । (पृ. ३३)

दक्षि.-विश्रामहेतोः नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यनाचमेः (७.३.३४) इति प्रतिपेधात् विश्रामहेतोरिति वक्तव्यम् विश्रामहेतोरित्यस्य रुपसिद्धिश्चान्द्रव्याकरणेने त्यनुसन्धेयम् । (पृ. २१)

सना.- विश्राम इति नञा निर्दिष्टस्यानित्यत्वात् वौ श्रमेः दीर्घः । (पृ. ५३)

मल्लि.-विश्रामो विश्रमः खेदापनयः । भावार्थे घञ्प्रत्ययः । स एव हेतुः तस्य विश्रामहेतोः विश्रामकार विश्रामार्थमित्यर्थः । षष्ठी हेतुप्रयोगे इति षष्ठी। विश्रामेत्यत्र नोदात्तोपदेशस्यमान्तस्यानाचमेः इतिपाणिनीयेवृद्धिप्रतिषेधेऽपि विश्रामो वा इति चन्द्रव्याकरणे विकल्पेन वृद्धि विधानादूपसिद्धिः । (पृ.२१) कृष्ण.-विश्रामहेतोः ''पथि विश्रम्य गन्तव्यमि'' त्युक्तेः । यद्यपि पुरुषोत्तमादिभिर्विश्रम इति चान्द्रव्याकरणसाधित्वात् कविभिर्विश्राम इति प्रयुज्यते । तथा च मुरारिः-विश्रामशाखिनं वन्दे इति । (पृ.१८) दक्षि., मल्लि., व कृष्ण. ने चान्द्रव्याकरण के आधार पर विश्राम की सिद्धि की है । काशीनाथ बापू पाठक लिखते चान्द्रव्याकरण में विश्रामो वा सूत्र ही प्राप्त नहीं होता । सम्भवतः मल्लि. ने जैनेन्द्र सूत्र विश्रामो वा (५.२.४१) के आधार पर विश्राम रूप की सिद्धि की हो । शाकटायन (४.१.२३३) व हेमचन्द्र में (४.३.५६) यह सूत्र प्राप्त होता है ।[१]

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः (२९)

१. ed. K.B. Pathak, p. 83.

वेणीभूतप्रतनुसलिलां तामतीतस्य सिन्धुं-

वेणीभूतप्रतनुसलिला सा त्वतीतस्य सिन्धुः-

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः-

वल्लभ. ने वेणीभूतप्रतनुसलिलां तामतीतस्य सिन्धुं पाठ दिया है । स्थिर. ने कर्मकारक का खण्डन करते हुए कहा है केचितु सिन्धुमिति कर्मपदं पठन्ति । तदा कार्श्यं कर्तृतां त्यजतीति । न स सदन्वयः । (पृ. ३८)

वल्लभ. की व्याख्या मे कुछ नहीं लिखा पर व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि तां सिन्धुं को निर्विन्ध्या का वाचक मानते हैं । [१]

दक्षि.- ने सा त्वतीतस्य सिन्धुः पाठ देते हुए कहा है-

सा त्वतीतस्येति पाठः । अतीतस्यातिक्रान्तस्य, भविष्यत इति शेषः । सिन्धुर्नदी ... तामतीतस्य इति पाठमादृत्य सिन्धुरीति नद्यन्तरमुच्यत इति केचिद् वदन्ति । तदानीमर्थश्चापुष्टः अत्र देशे सिन्धुरिति कापि नदी नास्ति । काश्मीरेषु सिन्धुः प्रवहतीत्यनुसन्धेयम् । (पृ. २३)

सरस्वती तीर्थ ने इसी पाठ को दिया है । [२] मल्लि. ने अर्थ तो दक्षि. का ही ग्रहण किया है पर पाठ सावतीतस्य सिन्धुः दिया है । [३] कृष्ण ने भी सावतीतस्य पाठ दिया है ।

दक्षि. व मल्लि. का मत मान्य नहीं कहा जा सकता । सिन्धु शव्द यहां निर्विन्ध्या के लिए प्रयुक्त न होकर दक्षिण सिन्धु के लिए प्रयुक्त हुआ है । कवि ने इससे पूर्व श्लोक में निर्विन्ध्या का वर्णन करते हुए वीचिक्षोभस्तनित विहगश्रेणि काञ्ची गुणायाः एवं दर्शितावर्तनाभेः जैसे विशेषणो का प्रयोग किया है और यहां कवि जिस नदी का वर्णन कर रहा है उसे वेणीभूतप्रतनुसलिला एवं पाण्डुच्छाया जैसे विशेषणों से अलंकृत कर रहा है । ये परस्पर विपरीत विशेताएं किसी एक नदी की नहीं मानी जा सकती । वैसे भी कवि ने पूर्व श्लोक में ही निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाम्यन्तरः संनिपत्य कह मेघ से निर्विन्ध्या को सन्तुष्ट करने की प्रार्थना कर ली है । अतः वेणीभूतप्रतनुः श्लोक की व्याख्या में मल्लि. का यह लिखना-निर्विध्याया विरहावस्यां वर्णयंस्तन्निराकरणं प्रार्थयसे (पृ. २४) किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता । [४]

स्थिर., पूर्ण., सना., शाश्वत. सुमति. भरत. एवं चरणतीर्थ ने वेणीभूत प्रतनुसलिलां तामतीस्य सिन्धुः पाठ लिया है । स्थिर. के शव्दो में तां निर्विन्ध्या अतिक्रान्तस्य अग्रे सिन्धुनामधेया नदीं (पृ.३८) निर्विन्ध्या को पार करने के बाद

---

१. वल्लभ. - पृ. १८

२. ed. K.B. Pathak , p. 18.

३. असौपूर्वोक्ता सिन्धुनदी निर्विन्ध्या...तामतीतस्य इति पाठमाश्रित्यं सिन्धुर्नाम नद्यन्तरमिति व्याख्यानं तु सिन्धुर्नाम कश्चिन्नदः काश्मीरदेशेऽस्ति नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यमित्याचक्षते । मल्लि. - पृ. २५

४. IHQ-25-1949, p. 277-78.

मार्ग में सिन्धु नामक कोई अन्य नदी मिलेगी उसी की कृशता व पाण्डुता का वर्णन कवि कर रहा है। पूर्ण. ने सिन्धुरिति नाम्ना प्रसिद्धा कापि नदी (पृ. ४५) कह सिन्धु को निर्विन्ध्या से भिन्न नदी माना है।

दक्षि. व मल्लि. ने तामतीस्य पाठ को केवल इसी आधार पर अमान्य ठहराया है क्योकि उन्हे उज्जयिनी मार्ग में पड़ने वाली किसी सिन्धु नदी के बारे में ज्ञात नहीं था लेकिन आधुनिक अन्वेषणों में से यह सिद्ध हो गया है कि मार्ग में काली सिन्धु की स्थिति है। सम्भवतः यदि वे भी इस नदी की स्थिति से अवगत होते तो तामतीतस्य पाठ को ही ग्रहण करते।

प्राप्यावन्तीन् (३०)

प्राप्यवन्तीम्

सना., शाश्वत., भरत. , व कृष्ण. ने प्राप्यावन्तीम् पाठ देते हुए अवन्ति को पुरी अथवा देश का वाचक कहा है। इस विषय में भरत विशेष रूप से उल्लेखनीय है-अवन्ती पुरीं देशं वा प्राप्य...केचितु प्राप्यांवन्तीनिति पठित्वा अवन्तिशब्दो जनपदवचनः पुलिङ्गः ततो द्वितीया बहुवचनं 'मालवा स्युरवन्तयः' इति पुरुषोत्तमकोष इत्याहुः। केचित् अवन्तिशब्दः स्त्रीलिंग एव देशवाची प्राप्यावन्तीरिति द्वितीया बहुवचनान्त एव पाठ इत्याहुकिन्तु प्राप्यवन्तीमित्येव ईवन्तावन्तीशब्दस्य द्वितीयैकवचनान्तस्य पाठो बहुप्राचीनपुस्तकेषु दृष्टवाद्बहुसम्मतः। (पृ. २९-३०) वे प्राचीन पुस्तकें कौन सी हैं इसका कोई उल्लेख नहीं है जबकि तथ्य यह है कि अधिकांश पुरातन टीकाकारों ने अवन्तीन् पाठ ही दिया है।

कृष्ण. ने यहां विल्कुल भिन्न अर्थ दिया है। वे विशाला को उज्जयिनी से भिन्न पुरी कह अवन्ती को उज्जयिनी का ही वाचक मानते हैं-हे जलद अवन्तीं पूर्व कथितां विशालानाम्नी पुरीं व्रज।...कश्चितु अवन्ती प्राप्य पूर्वोद्दिष्टामुज्जयिनीमनुसर इति व्याख्यातवान्। तन्न, चारु, अवन्त्या एव नाम उज्जयिनीति। (पृ. २१)

उनका यह मत माननीय नहीं है। विशाला उज्जयिनी से भिन्न कोई पुरी नहीं है-विशालोज्ञयिनी समा इत्युत्पलः (मल्लि. पृ.२३) और अवन्ति यहां उज्जयिनी का वाचक न होकर मालव जनपदों का वाचक है।

अधिकांश टीकाकारों ने अवन्तीन् पाठ देकर मालव जनपद अर्थ लिया है-

स्थिर.-अवन्तीन् मालविकाभिधानाज्जनपदान् (पृ. १८)

वल्लभ.- अवन्तीन् नाम देशान् प्राप्य (पृ. ३८)

पूर्ण. -मालविषयं प्राप्य...मालवाः स्युरवन्तयः इति वैजयन्ती। (पृ. ४६)

दक्षि.-प्राप्यावन्तीन् (पृ.२४)

मल्लि.-तानवन्तीम् तन्नाम जनपदान्प्राप्य (पृ. २५)

सुमति.-अवन्तीन्मालवदेशान्प्राप्य (पृ. १२३)

अवन्तीन् का प्रयोग मालव जनपदों के लिये हुआ है। मौर्य्य साम्राज्य से गुप्तराजाओं के काल में इन मालव जनपदों की राजधानी उज्जयिनी रही है।

यावद्धत्येति धातुः (३४)

यावदभ्येति भानुः

वल्लभ. ने अभ्येति पाठ देते हुए यावदर्कश्चक्षुगोर्चरतां चक्षुर्दृश्यत्वमुपैति । प्रातः सन्ध्यासमयपर्यन्तमित्यर्थः । (पृ. २०)

सारो. ने इसी पाठ को अपनाते हुए कहा है तावत्काले स्थातव्यं भानुः सहस्त्रकिरणो नयनविषयं यावदभ्येति भानुरिति । भानुरस्तमयते इति मन्यन्ते तन्न युक्तं लोकाचारेण सन्ध्यायां गमनस्य निषिद्धत्वात् । तथा अत्रैव तां कस्याञ्चिद्भवनवलमौ इति श्लोके रात्रिनिवासस्य सूर्योदयं यावदवस्थानस्य च वक्ष्यमाणत्वात् ।[१]

इस पाठ को लेने का तात्पर्य होगा कि यदि मेघ मध्याह्न में महाकाल में पहुंचता है तो वह दिन व रात्रि वहां व्यतीत कर अगले दिन प्रातः काल शिवपूजा में पटह कार्य करने के बाद उस दिन भी वहीं रहे, क्योकि आगे कवि ने रात्रि में वहीं की किसी भवन वल भी पर मेघ को विश्राम करने को कहा है और उससे अगले दिन सुवह (दृष्टे सूर्येपुनरपि) मेघ वहां से प्रस्थान करेगा । इस दृष्टि से दो दिन महाकाल मन्दिर में ही लग जाएंगे । जो यक्ष जैसे कामातुर के सन्देश प्रेषण की व्यांकुलता को देखते हुए उचित नहीं कहे जा सकते । अतः अभ्येति पाठ मान्य नहीं कहा जा सकता ।

स्थिर., सुमति., महिम. सना. शाश्वत. भरत. एवं कृष्णपति ने अभ्येति पाठ ही दिया है । पर अर्थ के विषय में वह एक मत नहीं है । स्थिर. के शव्दो में नयनविषयं यावत् अभ्येति भानुः भास्वान् विलोचनगोचरे चरति वा अस्तमयते इत्यर्थः (पृ. ४४) जिससे यही भाव प्रतीत होता है । कि मेघ को तब तक रुकने को कहा गया है जब तक सूर्य नयनों का विषय रहता है अर्थात् अस्त होने पर ही सन्ध्या पूजा में पटह कार्य करना ।

शाश्वत ने इसी अर्थ को लिया है-यावत् भगवान् भानुरादित्यो नयनविषयं लोचनगोचरम् अभ्येति आगच्छति । एतेन सन्ध्या सूच्यते, अस्तमयकालं यावदित्यर्थः (पृ. ६५) उन्हें भी सायंकालीन पूजा ही यहां अभिप्रेत है ।

पर अभ्येति पाठं लेने पर सायंकालीन भाव की प्रतीति स्पष्ट नहीं हो पाती जबकि यह निश्चित है कि कवि का अभिप्राय यहां सायंकालीन पूजा से ही है ।

दक्षि., चारि., पूर्ण. व मल्लि. ने अत्येति पाठ लिया है । मल्लि . के शव्दो में यावद्यावता कालेन भानुः सूर्यो नयनविषयं दृष्टिपथमत्येत्यतिक्रामति । आ अस्तमयात् स्थातव्यमित्यर्थः । (पृ. ३१) अर्थात् सूर्य द्वारा नयनविषय को अतिक्रान्त कर लेने पर सायंकालीन पूजा में मेघ पटहकार्य करेगा । यह पाठ लेने पर सायं पूजा रूप अर्थ की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है एवं इस पाठ द्वारा किसी भी काल में मेघ का महाकाल पहुँचने पर एक दिन से अधिक रुकने का औचित्य नहीं ठहरता । यदि मेघ पूर्वाह्न में भी व पहुँचता है तो वह पुरा दिन वहीं रुककर सायंपूजा में

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes). p. 45.

पटहकार्य करेगा और वो रात्रि वहीं व्यतीत कर अगली सुबह आगे प्रस्थान कर जाएगा। अतः अत्येति पाठ की ही औचित्यता है।

मा च भूः (३७)

मा स्म भूः

स्थिर., वलल्भ., चारि., पूर्ण., सारो., मल्लि., कृष्ण., चरणतीर्थ ने मा स्म भूः पाठ किया है। पर दक्षि., सना., शाश्वत, रामनाथ व भरत ने मा च भूः पाठ ग्रहण किया है दक्षि. के शब्दो में चकारो दर्शयतिक्रिययां सेवासमुच्चयार्थः (पृ. २८)

सना. ने च की उपयोगिता इन शब्दो में कही हैचकारः- पूर्वपिक्षया समुच्चये, न केवलमुर्वी दर्शय तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा च भूरित्यर्थः। (पृ.७०) भरत. के शव्दो में एवं तोयोत्सर्गे जलत्यागे यत् स्तनितं गर्जितं तेन मुखरो वाचालः सशब्दो मा च भूर्नैव भविष्यसि, ध्वनिना तु तोयोत्सर्गेण स्तनितेन च मुखरो दुर्जनो मा च भूः, च शब्द एवार्थे। ...किंवा त्वं मुखरो मा भूः, ताश्च विक्लवा मा भुवन्। च शब्दः समुच्चये। (पृ. ३५)

प्रो. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इस पाठ के समर्थन में कहा है-एकस्य कर्तुः क्रियाद्वयसम्वन्धाच्चकारवानेव पाठः साधीयान्।[१]

विवृतजघनां (४१)

पुलिनजघनां-

विपुलजघनां-

स्थिर., वल्लभ., सना., शाश्वत व भरत ने पुलिनजघनां पाठ दिया है। स्थिर. के शब्दो में पुलिनमेव जघनं यस्याः अर्थान्तरे च पुलिनमिव जघनं यस्याः (पृ. ५३), वल्लभ. ने पुलिनेव जघनं यस्याः सा (पृ. २४) कहा है।

भरत के मत में-पुलिनजघनां शीतलविशालत्वात् पुलिनमिव जघनं यस्याः.. जघनस्य पुलिनोपमानेन शैत्यादिगुणवत्वसूचनात् वरवर्णिनीत्वमुक्तं। (पु. ३८)

पुलिन पाठ से भावसौन्दर्य व्यक्त नहीं होता। संस्कृत साहित्य में जघनों की तट से उपमा दृष्टिगत नहीं होती। कवि ने यहां सलिल रूप वस्त्रावरण से रहित नदी रुपी नायिका का चित्रण करते हुए अर्थान्तरन्यास के रूप में चतुर्थ चरण दिया है लेकिन पुलिन जघनां पाठ से अनावरणता रूप अर्थ व्यक्त न होने के कारण अर्थान्तरन्यास भी घटित नही होता। सम्भवतः टीकाकारों ने नदीं रूपी नायिका के वृक्ष रूप हस्त व जल रूप वस्त्र को देखते हुए तटों की जघन रूप में कल्पना कर यह पाठ दे दिया हो।

चारि., सारो., महिम., सरस्वतीतीर्थ, सुमति. व चरणतीर्थ ने विपुलजघनां पाठ दिया है। सुमति. ने-विपुलजघनां रम्यजघनप्रदेशां (पृ. १३८) एवं चारि. ने विपुलजघनां पीनजङ्घां स्त्रीं (पृ. ५२) कहा है। अर्थान्तरन्यास को देखते हुए यह पाठ भी रुचिकर नहीं है।

---

१. G.R. Nandargikar (Notes), p. 45.

दक्षि., पूर्ण., मल्लि. व कृष्ण. ने विवृतजघनां पाठ दिया है। पूर्वार्द्ध नें कवि ने नदीं रूपी नायिका के हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधो नितम्बम् के कारण ही मेघ को प्रस्थानं ते कथमपि सखे कहा है। इसी भाव की पुष्टि में चतुर्थ चरण द्वारा कहा है-कि कोई भी रसास्वादी आवरणरहित जघन प्रवेश वाली नारी की अवहेलना करने में समर्थ नहीं है। अतः तुम भी जलरूप वस्त्र से रहित मुक्तरोध नितम्ब नदी को छोड़कर जाने में समर्थ न होंगे- यह भाव विवृतजघनां द्वारा ही पूर्णतया स्पष्ट होता है।

कुवलयदलप्रापि (४४)
कुवलयपदप्रापि-
कुवलयदलक्षेपि-
कुवलयदलभ्राजि-
कुवलयदलस्पर्धि-

वल्लभ. ने कुवलयदलप्रापि पाठ लेकर इसे वर्ह का विशेषण कहा है। कुवलयपदप्राप्युत्पलस्थानारुढम्। (पृ. २५)

दक्षि.,[१] चारि.[२] एवं पूर्ण. ने कुवलयदलक्षेपि पाठ दिया है। पूर्ण. के शव्दो में कुवलयदलक्षेपि विकसितारुणदलकेसरपरिवेषभासुर विकसितेन्दीवरानुकारि अथवा स्वभारणदशायां पूर्वावस्थितावतंसकुवलयनिरासि। (पृ.६८)

कल्याणमल्ल ने कुवलयदलप्रापि पाठ माना है। साथ ही विकल्प रूप में कुवलयदलभ्राजि पाठ देते हुए कहा है-- कुवलयदलप्रापि इन्दीवरपत्रवत् शोभनशीलम् अथवा कुवलयदलेन भ्राजत इति क्विप्, इन्दीवरदलालङ्कारशोभनशीले दधतीति कर्णस्य विशेषणम्।[३]

चरणतीर्थ ने कुवलयदलस्पर्धि पाठ देकर नीलोत्पलदलेन सह स्पर्धते इति ईदृशं बर्ह (पृ. ५२) कह इसे बर्ह का विशषेण कहा है।

स्थिर., मल्लि., सुमति., सना., शाश्वत., भरत. एवं कृष्ण ने कुवलयदलप्रापि पाठ दिया है। स्थिर. ने इसे बर्ह व कर्ण दोनों के विशेषण रूप विकल्पो में लिया है-श्रवण कुवलयदलानुकारि कर्णविशेषणं वा। कुवलयदलं प्राप्नोतीति क्विप् तस्मिन् कुवलयदलालंकारयोग्यइत्यभिहितं भवति। (पृ .५६)

मल्लि. ने इसके दो अर्थ इदए हैं --कुवलयस्य दल पत्रंतत्प्रापि तद्योगि यथा तथा कर्णे करोति। दंलेन सह धारयतीत्यर्थः। यद्वा कुवलयस्य दलप्रापि दलभ्राजि दलार्हे कर्णे करोति। विवबन्तात्सप्तमी। दलं परिहत्य तत्स्थाने बर्ह धत्तं इत्यर्थः।

---

१. कुवलयदलनिन्दकमित्यर्थः। दक्षि. - पृ. ३१
२. कुवलयदलक्षेपि। शोभाधिक्यात् कुवलयानां नीलोत्पलानां दलानि पत्राणि क्षेप्तुंतिरस्कर्त्तु शीलं यस्य यद्वत्। कुवलयदलप्रापीति पाठे सप्तम्यन्तं कर्ण विशेषणम्। चारि.-पृ. ५६
३. ed. J.B. Chaudhry (Intro), p. 23.

(पृ.३९)

भरत. के शव्दो में कुवलयस्य नीलोत्पलस्य दलं पत्रं प्राप्नोतीति क्विप्। णिन्प्रत्ययान्तस्य विशेषणसमा इत्यन्ये। केचित्तु नीलोत्पलदलं प्राप्तुंसदृशीकर्त्तुं शीलं यस्य तथा, बर्हविशेषणमिदभित्याहुः। (पृ. ४०)।

कृष्ण. ने कुवलय की एक भिन्न व्युत्पत्ति देते हुए कहा है- कुः पृथिवी तस्या वलयमिव शोभा शोभाकरत्वात्। तस्य दलं पत्रं तत्प्राप्तं करोतीति कुवलयदलसहितंतद्बिमर्तीत्यर्थः (पृ. २७)।

कुवलयदलप्रापि पाठ उचित प्रतीत होता है। यद्यपि प्रापि में ताच्छील्येणिनि से णिन् प्रत्यय होकर यह बर्ह का विशेषण भी कहा गया जा सकता है। तब यह भाव होगा कि 'कुवलयपत्र सदृश सौन्दर्य युक्त बर्ह को' यह भाव मान्य नहीं कहा जा सकता। बर्ह धारण करने का कारण पुत्रप्रेम है। यहां कवि का अभिप्राय मयूरपिच्छ की कमल से उत्कृष्टता दर्शाना अमिप्रेत नहीं। अतः पुत्रप्रेम्णा को दृष्टिगत कर प्रापि णिन् प्रत्ययान्त न होकर क्विवन्त है तब यह सप्तम्यन्त कर्णे का विशेषण बन जाता है। और यह अर्थ अभिव्यक्त होता है-कुवलय पत्र धारण किये हुए कर्ण में बर्ह लगाती है।

पावकेस्तं मयूरं (४४)

आप्याययेस्तं मयूरं-

सना., भरत. व कृष्ण. ने आप्ययेस्तं मयूरं पाठ दिया है। सम्भवतः उन्होने चतुर्थ चरण में पठित शब्द को ध्यान में रखकर यह पाठ अपनाया है-

सना.-मयूरमपि त्वं आप्ययेः प्रीतं करिष्यसि। ...पश्चात् प्रीणनानन्तरं नर्तयेथाः नर्तयिष्यसि। (पृ. ७९)

भरत.- तं मयूरं त्वं प्रथमाप्याययेः तर्पपिष्यसि स्वनिष्यन्दशीतलवातेने-त्याक्षेपात्। पश्चादाप्यायनान्तरं गर्जितध्वनिभिस्तं नर्तयेथाः नर्तयिष्यसि। (पृ. ४०)

कृष्ण.-तं मयूरं आप्याययेः जलैः प्रीणयेः। (पृ. २७)

यह भाव इतना रुचिकर नहीं है क्योकि मयूरों का नर्तन ही उनकी प्रसन्नता का द्योतक है। और जहां तक पश्चात् का सम्बन्ध है कवि ने पूर्व श्लोक में स्कन्द की पूजा का वर्णन किया है। अतः पश्चात् से तात्पर्य है स्कन्द पूजा के अनन्तर उसके वाहन मयूर को भी प्रसन्न करना।

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., चारि., पूर्ण., मल्लि., सुमति., शाश्वत. चरणतीर्थ आदि ने पावकेस्तं मयूरं पाठ ही दिया है। और पश्चात् से तात्पर्य स्कन्द पूजानन्तरम् किया है। शाश्वत ने आप्याययेः पाठ के सम्बन्ध में कहा है पूर्वं तं मयूरं प्याययेः सन्तर्पयेः पश्चात् नर्तयेः इति योजना। इदं च नातिसुन्दरम्। यतः पूर्वं प्यायनं पश्चात् नर्तनम् इति केयं वाचोयुक्तिः ? यतः प्रीतत्वेनेव नर्तनम् उपपद्यत इति। (पृ. ७९)

अधिगमनम् (१०३)

अभिगममपां

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., पूर्ण., मल्लि., सना., सुमति. कृष्ण. व चरणतीर्थ ने अभिगममपां पाठ देते हुए अर्थ भिन्न- भिन्न किया है-

स्थिर.-अभिगमं अभिसन्बन्धं (पृ. ६१)

वल्लभ.-अभिगमं सेवनं विधाय (पृ. २८)

दक्षि.-अभिगमभिमुखत्वेन गमनम् (पृ. ३४)

पूर्ण.-अभिगमं प्राप्तिम्, पानमित्योचित्यात्सिध्यति । (पृ.७६)

मल्लि.-अभिगमं सेवां कृत्वा (पृ. ४४)

सुमति.-अभिगमं संगमं कृत्वा (पृ. १४८)

चरणतीर्थ- अभिगमं पानं कृत्वा (पृ. ५६)

शाश्वत एवं भरत ने अधिगमं पाठ दिया है-

शाश्वत.- अधिगमम् ग्रहणम् (पृ. ८५)

भरत.-अधिगमं ग्रहणं कृत्वा (पृ. ४३)

त्वमपि भविता

त्वमसि भविता

दक्षि., पूर्ण., व मल्लि. ने त्वमसि भविता पाठ दिया है । सम्भवतः इस पाठ में व्याकरणात्मक अनुपयुक्तता को देखते हुए दक्षि. ने असि को मध्यम प्रतिरूपक अव्यय कहा है-

असीति मध्यमप्रतिरूपकमव्ययमिदम् । तथा माघकाव्ये-स्वयमेव शन्तनु तनूज यमसि गणमर्ध्यमभ्यधाः । (स. १५ श्लोक २०) इति । भविता, तृजन्तमिदम् । अन्तः शुद्धौभवितासि भविष्यसीत्यर्थः (पृ. ३४)

इससे त्वम् की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती । सम्भवतः इसी दोष को देखते हुए मल्लि. ने असि को अव्यय न कह क्रिया रूप में लिया है । भविता ण्वुल् तृचौ इति तृच् । असि सद्य एव पूतो भविष्यसीत्यर्थः । वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा इति वर्तमानप्रत्ययः (पृ. ४४)

पूर्ण. ने असि के सन्दर्भ में लिखा है- भविता असि भविष्यसि । भवितेति तृजन्तमिदं रूपं भविष्यत्काल (पृ. ७७)

यदि भविता भविष्यतकाल का बोधक है तो वर्तमानकालिक असि की क्या उपयोगिता है ?[१] और यदि असि भविता से तात्पर्य भवितासि (लट् प्र.पु. ए. व.) से ही है तो कवि असि भविता के स्थान पर भवितासि पाठ का ही प्रयोग करता ।

स्थिर., वल्लभ., सुमति. सना. शाश्वत. भरत. व कृष्ण. ने त्वमपि भविता पाठ दिया है । यही पाठ संगत प्रतीत होता है । अपि से तात्पर्य है कि न केवल बलमद्र शुद्ध हो गये थे अपितु तुम भी शुद्ध हो जाओगे । वल्लभ. के शब्दो में

१. OH.Vol. 6. 1958, p. 36-37.

निश्चेतनस्त्वमत्यन्तः स्वच्छोभ्यन्तरनिर्मलो भविता भविष्यसि । ...भवितेतितृजन्तः । (पृ. २८)

सुमति. ने अपि को अन्तः शुद्धः के साथ सम्बद्ध कर लिया है . त्वमन्तः मध्ये शुद्धोऽपि जलनैर्मल्यान्निःपापोऽपि भवान्मेघः वर्णमात्रेणेव कृष्ण श्यामो भविता न त्वन्तः । (पृ. १४८) यह अर्थ उचित प्रतीत होता है । कवि का अभिप्राय इतना ही है कि बलभद्र के समान मेघ भी पवित्र हो जाएगा । अपि का सम्बन्ध त्वम् के साथ है, शुद्धः के साथ नहीं ।

ये त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः कायभङ्गाय तस्मिन् ।
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयिष्यन्त्यलङ्घ्यम् । (५४)

अथवा

ये संरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन् ।
मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम् ।।

५४ श्लोक के पूर्वार्द्ध के दो चरण टीकाओं में उपरोक्त दो भिन्न रूपों में प्राप्त होते हैं । दक्षि., चारि., मल्लि. , पूर्ण., व महिम. ने द्वितीय पाठ मुक्ताध्वानं से तात्पर्य छोड़े हुए मार्ग वाले लिया है –

दक्षि.– मुक्ताध्वानं शरमाणां मार्ग मुक्त्वा दूरगामिनम् (पृ. ३७)
मल्लि.– मुक्तोऽध्वा शरमोत्प्लवनमार्गों येनतं भवन्तम् (४७)
पूर्ण.–तत्संचरणसरणिपरिहारेण विश्रमार्थ क्वचित्कोणे निषण्णम् (पृ. ८३)

यह पाठ अर्थ को देखते हुए मान्य नहीं कहा जा सकता । यदि मेघ द्वारा पहले ही शरमों का मार्ग छोड़ दिया गया है तो शरमों का अकारण ही मेघ पर हमला करने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता और जब मेघ शरमों के मार्ग में है ही नहीं तो उनके ऊपर ओलों की वृष्टि भी कैसे कर सकता है ? सम्भवतः सुमति. ने मुक्ताध्वानं पाठ की इस अनौचित्यता को जान लिया था तभी उन्होने द्वितीय पाठ देते हुए मुक्ताध्वानं की जगह मुक्तध्वानं पाठ ग्रहण करते हुए मुक्तकृतगर्जाखशव्दम् (पृ. १५३) अर्थ लिया है जिसका तात्पर्य है कि मेघ की उच्च गर्जना को सुनकर शरभों ने लङ्घन का प्रयास किया ।

आर.सी. हजरा ने पाठ तो मुक्ताध्वान ही कहा है पर मुक्त + अध्वानं विग्रह न मानकर मुक्त + आ + ध्वन् + घञ् विग्रह दिया है और अर्थ उच्च गर्जन किया है । [१]

स्थिर., वल्लभ., सना., भरत. व कृष्ण. ने प्रथम पाठ दिया है जो अधिक उचित प्रतीत होता है । कवि ने उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास का प्रयोग किया है और वह तभी घटित होता है जबकि पूर्वार्द्ध में लङ्गयिष्यन्त्यलङ्घ्यम् पाठ हो । शरभों का जो मेघ का लङ्घन रूप कार्य है वह निष्फल है क्योकि मेघ अलंघनीय है। जो भी इस प्रकार के निष्फल कार्यों को करते हैं वे तिरस्कार के पात्र होते हैं । इस रूप

१. IHQ-25-1949, p.281-82.

में वहां अर्थान्तरन्यास की पूर्णतया संगति हो जाती है। प्रथम पाठ का यह अर्थ-- 'तुम्हारी उच्च ध्वनि को न सहन करते हुए दर्पोत्सेक से यदि वे शरभ तुम अलंघनीय को लाघंने का प्रयास करें-किसी प्रकार के वैषम्य को लिए हुए भी नहीं है।

भरत. ने प्रथम पाठ लेकर मुक्तध्वनिं का अर्थ त्यक्तगर्जितं (पृ. ४६) दिया है जो उचित नहीं। यह अर्थ लेने पर असहनाः शव्द व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। यहां प्रथम पाठ लेते हुए 'मुक्ताध्वनि का उच्चगर्जन ' अर्थ ही अभीष्ट है।

करकादृष्टिहासावकीर्णान् (५४)

करकावृष्टिपातावकीर्णान्

दक्षि., चारि. मल्लि. व पूर्ण. ने 'करकावृष्टिपातावकीर्णान् ' पाठ दिया है। पूर्ण. के शव्दो में तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान् संकुलमेघोपलवर्षपातन विशीर्णान् (पृ. ८४) लेकिन 'पात ' शव्द का कोई औचित्य न प्रतीत नहीं होता क्योकि करकावृष्टि के द्वारा ही दृष्टिपात रूप भाव की प्रतीति हो जाती है।

स्थिर., वल्लभ., सना., शाश्वत., सुमति., भरत. व कृष्ण. ने करकावृष्टि हासावकीर्णान् पाठ दिया है। हास से तात्पर्य उपहास से है। वल्लभ. के शव्दो में तुमलकरका वृष्टिहासावकीर्णान्विषमोपलवर्षस्मिताच्छादितान्कुर्वीथाः । (पृ. ३०)

सुमति. ने हास के प्रयोग को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है करकवृष्टि हास्यमिषेण उपहासास्पदं कुर्याः । तुमुलकरकाणां वृष्टया हासेन धवलत्वात्करक-वृष्टिरूपेणैव हासेन अवकीर्णाः प्रेरिताः (पृ. १५३) हास का रूप धवल माना गया है। कवि ने आगे कैलास के धवल शिखरों की उपमा शिव के अट्टहास से की है। [१] करकावृष्टि का रूप भी धवल है। अतः मानों मेघ करकावृष्टि रूप में शरभों के लंघन रूप असम्भव कार्य का उपहास कर रहा है। भरत के शव्दो में-

वृष्टिर्वर्षणं सैव हासो हास्यं शुक्लत्वान् तेनावकीर्णान् विक्षिप्तान् (पृ. ४६)

भरत. ने हासावकोर्णान् पाठ लेते हुए लिखा है-क्वचित्तु करकावृष्टिघातावकीर्णानिति पाठः, तत्र करकावृष्टिभिस्तास्ताडयेरित्यर्थः (पृ. घातावकीर्णान् पाठ उपलव्ध टीकाओं में दृष्टिगत नहीं होता।

हासवकीर्णान् पाठ उपयुक्त है। इससे दो भावों की अभिव्यक्ति होती है -+

(क) मेघ उपलवृष्टि के द्वारा शरभों के निष्फल लंघन रूप कार्य का मानों उपहास कर रहा है।

(ख) उपलवृष्टि धवल है और हास का रूप भी श्वेत कहा गया है। अतः मानों उपलवृष्टि हास रूप ही है।

इस सम्वन्ध में करक शव्द भी उल्लेखनीय है। कवि ने करकावृष्टि शव्द का प्रयोग किया है। दक्षि. ने करक को पुल्लिंगवाची कहा। करको घनोपलः। घनोपलस्तु करके इति यादवः। करकाणाम् आ (वृष्टिः) समन्ताद् वृष्टिपातः। (पृ. ३७) अतः वे करका के आ को समन्तात् अर्थ में ले लेते हैं। चारि ने दक्षि.

१. मेघ - ५८

के विग्रह का ही अनुकरण किया है-करकाणां वर्षोपलानाम् आ समन्ताद् दृष्टिपातः वर्षोपलस्तु करकः अभिधानचिन्तामणिः (पृ.६५-६६)

मल्लि. ने करका का पुल्लिग व स्त्रीलिंग दोनों में प्रयोग कर यहां उसे स्त्रीवाचक ही कहा है । यदत्ररकशब्दस्य घनोपलस्तु करकः इति यादववचनात्करकशब्दस्य नियतपुलिङ्गताभिप्रायेण करकाणामावृष्टिःइति केषाञ्चिद्व्याख्यानं कमण्डलो च करकः सुगते च विनायक इति नानार्थे पुंस्यपि वक्ष्यतीति पदलोपतोभयलिङ्गताप्रकाशनात् । यादवस्तु पुलिंङ्गताविधाने तात्पर्य न तु स्त्रीलिंगतानिषेध इति न तद्विरोधोऽपि । करक करङ्के स्याद्दाडिमे च कमण्डलो पक्षिभेदे करे चापिकरका न धनोपल इति विश्वप्रकाशवचने तुभयलिङ्गता व्यक्तैवेति न कुत्रापि विरोधवार्ता । अतएव रुद्रः वर्षोपलस्तु करका करकोऽपि च दृष्यते इति । (पृ. ४७-४८)

सुमति. के मत में करक का प्रयोग तीनों लिंगों मे होता है- करकोऽव्दोपले त्रिलिङ्गः करकः करका करमकमिति (पृ. १५३)

उर्ध्वमुद्धतपापाः (५५)

दूरमद्धतपापाः

सारो., सना., रामनाथ, हरगोविन्द, महिम., भरत. व कृष्ण. ने दूरमुद्धतपापाः पाठ दिया है-

सारो.-दूरं यथा भवति तथा पापाः गतकल्मषाः ।[१]

सना.-शरीरत्यागात् दूरं यथास्यात्तथा उद्धतपापा निष्पापाः सन्तः (पृ.९१-९२)

भरत.-दूरं विप्रकृष्टम् उद्धतम् उत्क्षिप्तं त्यक्तं पापं यैः । (पृ. ४६)

कृष्ण.-दूरमत्यर्थेन (पृ. ३२)

दूरम् पाठ की यहां कोई उपयोगिता दृष्टिगत नहीं होती उद्धतपापाः के द्वारा ही पाप रहितता का बोध हो जाता है ।

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., चारि., मल्लि., पूर्ण., सुमति.व चरणतीर्थ ने ऊर्ध्वम् पाठ दिया है और अधिकांश ने ऊर्ध्वम् का अनन्तर अर्थ दिया है ।

स्थिर.-ऊर्ध्वं अनन्तरम् (पृ.६८)

वल्लभ.-करणविगमादूर्ध्वं देहपातादनन्तरम् (पृ.३१)

मल्लि.- करणस्य क्षेत्रस्य विगमादूर्ध्वं देहत्यागानन्तरम् । (पृ.४८)

पूर्ण.-ऊर्ध्वं अनन्तरम् (पृ. ८५)

चरणतीर्थ-जीवनिर्गमनान्तरं (पृ.६२)

चारि. व सुमति. ने ऊर्ध्वं को स्थिरगणपदप्राप्तये के साथ सम्बद्ध कर उन्नत अर्थ लिया है ।

चारि.-उर्ध्वं स्थिरं च तत् गणानां पदं स्थानं च प्राप्तये (पृ. ६७)

सुमति.- श्रद्धासहिताः पुरुषाः उर्ध्वमुर्ध्वगतिं स्थिरगणपदप्राप्तये (पृ. १५४)

ऊर्ध्वंम् को स्थिरगणपदप्राप्तये के साथ सम्वद्ध करने पर दूरान्वय दोष हो

१. ed. G.R. Nandarjikar (Notes) p. 72.

जाता है। इसका अनन्तर अर्थ ही अधिक उपयुक्त है।

प्रतिदिशमिव (५८)

प्रतिदनिशमिव

प्रतिदिनमिव

वल्लभ. ने प्रतिनिशमिव पाठ दिया है। एवं दक्षि, मल्लि. पूर्ण० व कृष्ण ने प्रतिदिनमिव पाठ ग्रहण किया है। दोनों ही पाठ उचित प्रतीत नहीं होते। कवि ने कैलास के उच्च शिखरों का वर्णन किया जो अपनी विशदता से मानों आकाश को व्याप्त किये हुए है। विशदता का भाव निशा अथवा दिन किसी के द्वारा व्यक्त नहीं होता।

स्थिर. चारि., सना., शाश्वत., सुमति., भरत. व चरणतीर्थ ने प्रतिदिशम् पाठ किया है। यही पाठ माननीय है, विस्तार का भाव दिशा से पूर्णतया अभिव्यक्त हो जाता है।

विहरेत् (६०)

विचरेत्

स्थिर., मल्लि., पूर्ण., शाश्वत., सारो., सुमति., भरत., कृष्ण व चरणतीर्थ ने विचरेत् पाठ दिया है। वल्लभ. दक्षि . चारि. विहरेत् पाठ मानते हैं क्रीडाशैल को दृष्टिगत कर विरहेत् जिस काव्य-सौन्दर्य को लिये हुए है, वह भाव विचरेत् के द्वारा अभिव्यक्त नहीं होता। पूर्ण. ने विहरेदिति वा पाठः क्रीडेत् (पृ. ९१) पाठ का समर्थन किया है।

सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु (६०)

सोपानत्वं व्रज मणिशिलारोहणाग्रयायी

सोपानत्वं कुरु मणिशिलारोहणाग्रयायी

सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणाग्रयायी

सोपानत्वं कुरु सुखपदस्पर्शमारोहणेषु

स्थिर. ने सोपानत्वं व्रज मणिशिलारोहणाग्रयायी पाठ दिया है। सुमति. ने इसी पाठ को देते हुए व्रज के स्थान पर कुरु पाठ को लिया है। दक्षि., मल्लि., पूर्ण. व चरणतीर्थ ने कुरु को देते हुए मणिशिला न कह मणितट कहा है। पर मणितट या मणिशिला दोनो ही विशेषणों से पर्वत पर चढ़ने पर दुरुहता ही परिलक्षित होती है।

वल्लभ. ने सोपानत्वं कुरु सुखपदस्पर्शमारोहणेषु एवं सना., शाश्वत. भरत. व कृष्ण. ने सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु पाठ दिया है। यहां पर कवि पार्वती की सुकुमारता को लक्ष्य कर मेघ को सोपान रूप हो जाने के लिए कहता है। उसका अभिप्राय पर्वत की कठोरता बताना नहीं है। क्रीडाशैल ही इसका द्योतक है कि वह पर्वत चढ़ने में दुरूह तो कदापि नहीं है, जबकि मणितट या मणिशिला पाठ से पर्वत की कठोरता ही अभिव्यक्त होती है। अतः सोपानत्वं व्रज

पदसुखस्पर्शमारोहणेषु पाठ अधिक उचित प्रतीत होता अर्थात् आरोहण में चरणों के लिए सुखकारी स्पर्श वाले सोपान रूप को प्राप्त कर।

वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं (६१)

जनितसलिलोद्गारमन्तः प्रवेशात्

कुलिशवलयोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं

वल्लभ. ने जनितसलिलोद्गारमन्तः प्रवेशात् पाठ दिया है । और उसकी व्याख्या में जनितसलिलोद्गारं वर्षन्तं (पृ. ३४) कहा है। यह पाठ उचित प्रतीत नहीं होता। इससे पूर्व श्लोक में ही कवि ने मेघ को स्तम्भितान्तर्जलौघः कहा है। यहां जनितसलिलोद्गार विरोधाभास को प्रकट करता है और इस पाठ से मेघ के यन्त्र धारागृह रूप की भी अभिव्यक्ति नहीं होती।

स्थिर., व चरणतीर्थ ने कुतिशवलयोद्घटटनोद्गीर्णतोयं एवं दक्षि. चारि., मल्लि., पूर्ण., सुमति., सना., शाश्वत, व कृष्ण ने वलय का पूर्व प्रयोग करते हुए वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं कहा है। मेघ के यन्त्रधारमय रूप की अभिव्यक्ति इसी पाठ से होती है। यद्यपि वह मेघ सोपान रूप हो जाने से स्तम्भितान्तर्जलौघः है पर उस कैलास पर देवयुतियों ने हाथों मे जो मणिजटिल कंगन पहने हुए हैं उन मणियों का मेघ से संघर्षण होने पर मेघ का यन्त्रधारामय हो जाना ही यहां दर्शाया गया है। मल्लि. के शव्दो में सुरयुक्तयो वलयकुलिशानि कङ्कणकोटयः। शतकोटि-वाचिना कुलिशशव्देन कोटिमात्रं लक्ष्यते तैरुद्घटनानि प्रहारास्तंउद्गीर्णमुत्सृष्टं तोयं येनं तं त्वां यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां कृत्रिमधारागृहत्वं नेष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति।(५३) येनं तं त्वां यन्त्रेषु धारा यन्त्रधारास्तासां कृत्रिमधारागृहत्वं नेष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति ।(५३)

भरत. ने यही पाठ अपनाया है वे उद्गीर्ण की जगह उदीर्ण पाठ लेते हैं-

सुरयुवतयो देवाङ्गनाः, धारणात् वलयकुलिशैः हेमकङ्कणस्थहीरकैर्यानि उद्घाटनानि तैरुदीर्णतोयं निर्गतजलं त्वां यन्त्रधारागृहत्वं जलयन्त्रमन्दिरत्वम्, अवश्यं नेष्यन्ति प्रापयिष्यन्ति। (पृ. ४९)

भाययेस्ताः (६१)

भापयेस्ताः

भीषयेस्ताः

स्थिर., सारो., व सुमति. ने भापयेस्ताः एवं चरणतीर्थ ने भीषयेस्ताः पाठ दिया है। दोनों ही पाठ यहां मान्य नहीं है क्योकि भी से प्राप्त आत्व एवं पुक् आगम[1] (भापयेः) एवं षुक् आगम आत्मनेपद रूप[2] (भीषयेः) प्रयोजक के पय के हेतु रूप का निर्देश करते हैं। इस स्थल पर प्रयोजन (मेघ) स्वयं भय का हेतु नहीं है अपितु वह साधन (गर्जनों के द्वारा) भय कर उत्पन्न कर रहा है।

अतः यहां भाययेस्ताः पाठ उचित है। वल्लभ. दक्षि., चारि., मल्लि., पूर्ण., सना., शाश्वत., एवं भारत० ने इसी पाठ को दिया है। मल्लि के शब्दों में

---

१. पाणिनि ६.१.५९ एवं ७.३.३६.

२. वही १.३.६८ एवं ७.३.४०

भाययेस्त्रासयेः अत्र हेतुभयाभावादत्मनेपदं पुगागमः षुगामश्च न (पृ. ५३)

धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानि स्ववातै
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ।। (६२)

अथवा

धुन्वन्वातैः सजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि ।
च्छायाभिन्नः स्फटिकविशदं निर्विशेः पर्वतं तम् ।।

श्लोक संख्या ६२ के उत्तरार्ध में ये दो चरण उपरोक्त दो रूपों में दृष्टिगत होते हैं। वल्लभ. ने द्वितीय पाठ को ग्रहण करते हुए अन्तिम चरण की व्याख्या में लिखा है-छायया प्रतिबिम्बेन भिन्नो द्विधाभूतस्त्वं सितमणिनिर्मलं तं पर्वतं निर्विशेरुपमभुञ्जीथाः (पृ. ३४) उन्होने छायाभिन्न से तात्पर्यप्रतिबिम्ब रूप से द्विधाभूत मेघ लिया है।

स्थिर. ने यहां एक पाठ ही दिया है। उन्होने प्रथम चरण तो प्रथम पाठ वाला व द्वितीय चरण द्वितीय पाठ वाला ग्रहण किया है-

धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानि स्ववातै ।
श्छायाभिन्नः स्फटिकविशदं निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ।।

छायाभिन्नः की व्याख्या वल्लभ. के ही समान है।[१] भरत. व कृष्ण. ने वल्लभ. के ही पाठ का अनुकरण किया है। पर निर्विशेः पर्वतं तम् के स्थान पर निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् कहा है। भरत. ने छायाभिन्नः का विसर्गयुक्त पाठ न देकर छायाभिन्नस्फटिकविशदं में समास कर छायाभिन्न की अनेक रूप से व्याख्या की है।

छायया कान्त्या भिन्नेः पद्मरागाविभेदेन विपरिणतैः स्फटिकैर्विशदं उज्ज्वलं तं नगेन्द्रम्....किं वा छायया मेघप्रतिविम्वेन भिन्नः स्फुरितः स्फटिकस्य विशदः शुप्रता यस्य तादृशम्, छायाभिन्नेन सोभाविशिष्टेन स्फटिकेन विशदमिति केचित्। छाया भिन्न इति सविसर्गपाठे प्रतिबिम्वद्धिघामृतस्त्वं निर्विशेरित्यर्थः । निवि-सर्गपाठेऽपिसोऽर्थो घटते-- कादियुक्ते शषसो विसर्गस्य लुग्वेत्युक्तेः । (पृ० ५०)

भरत सजलपृषतैः के स्थान पर जलद ललितैः पाठान्तर रूप में देते हैं सजलपृषतैरित्यत्र जलदललितैरिति पठित्वा जलदेति सम्बोधनम् ललितमन्दैरिति व्याचक्षते केचित्। (पृ. ५०)

वल्लभ., भरत. आदि का पाठ विशेष रुचिकर न हीं कहा जा सकता। सन्दर्भ में को देखते हुए छायाभिन्नः अथवा स्फटिकविशदं विशेषणों का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता यहां प्रतिविम्ब रूप से द्विधाभूत होकर पर्वत को भोगने का क्या प्रयोजन है, यह स्पष्ट नहीं हो पाता और यहां तक पर्वत की स्फटिक विशदता का प्रश्न है वह तो पूर्व में ही कवि त्रिदशवनितादर्पणस्य एवं कुमुदविशदैः जैसे शव्दों द्वारा केलास की धवलता का वर्णन कर चुका है। यह विशेषण यहां केवल पुनरुक्ति मात्र प्रतीत होता है।

---

१. छायया प्रतिबिम्बेन भिन्नो द्विधाभूतः । स्थिर. – पृ. ७५

कवि कैलास पर मेघ की सुन्दर क्रियाओं का दिग्दर्शन कराना चाहता है। मानसरोवर से जल-ग्रहण, ऐरावत की मुखपट प्रीति एवं कल्पवृक्षों को हिलाना रूप ललित चेष्टाओं से मेघ द्वारा उस पर्वत का भोग करना अभिप्रेत है। इस दृष्टि से प्रथम पाठ ही मान्य है। दक्षि., मल्लि ., पूर्ण., सुमति. व चरणीर्थ ने प्रथम पाठ ही दिया है। दक्षि., मल्लि. व सुमति. ने न्यंशुकानीव वातैः कहा है। उन्होने स्ववातैःन कह अशुंकानि के साथ इव सम्बद्ध कर दिया है।

उत्तरमेघ

अलंक बालकुन्दानुविद्धं (६५)
अलके बालकुन्दानुवेधो
अलके बालकुन्दानुवन्धः
अलके बालकुन्दानुविद्ध
अलका बालकुन्दानुविद्धा

स्थिर., वल्लभ., सुमति., सारो., भरत. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ लिया है। भरत के मत में यद्यपि अलकाश्चूर्णकुन्तला इत्यमरः तथापि अर्धर्चादित्वात् क्लीवत्वमपि स्वभाववक्राण्यलकानि तासा मिति भारविः (पृ ५३)

दक्षि. ने प्रथम पाठ का खण्डन कर द्वितीय पाठ ग्रहण करते हुए कहा है-अलंक बालकुन्दानुविद्धमित्यपपाठः। अलकशब्दस्य पुलिङ्गत्वात्। अलकाश्चूर्णकुन्तला इत्यमरः। अलके बालकुन्दानुवेध इति पाठः। अस्मिन् पाठे रीतिमङ्गश्च न भवति। (पृ. ४४)

चारि. प्रथम पाठ का खण्डन कर तृतीय पाठ अलके बालकुन्दानुबन्धः देते हैं- अलके कुटिलकेशविन्यासे इहापि जात्याख्यायामेकवचनं बालानां कुन्दानां कुन्दकुसुमानामनुबन्धः सम्बन्धो अलकंबालकुन्दानुविद्धमित्यसदृशः पाठः। अलकाश्चूर्णकुन्तला इति पुंस्त्वनिर्देशात्। प्रक्रमभङ्गदोषपोषप्रसङ्गाच्च। (पृ. ७८)

मल्लि. चतुर्थ पाठ अलके बालकुन्दानुविद्धं ग्रहण करते हुए कहते हैं अलके कुन्तले जातावेकवचनम्। अलकेष्वित्यर्थः। बालकुन्दैः प्रत्यग्रमाध्यकुसुमैरनुविद्धम्। अनुवेधो ग्रन्थनम्। नपुंसके भावेक्तः।... अलकं इति प्रथमान्तपाठे सप्तमीप्रक्रमभङगःस्यात्। नाथस्तु नियतपुलिङ्गताहानिश्चेति दोषान्तरमाह। तदसत् स्वभाववक्राण्यलकानि तासाम्. निर्धूतानयलकानि पाटितमुरः कृत्स्नोऽधरः खण्डितः इत्यादिषु प्रयोगेषु नपुंकलिङ्गता दर्शनात्। (पृ. ५९)

मल्लि. के इस सन्दर्भ के विषय में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कहा है-सप्तमी प्रक्रमभङ्गभिया सप्तम्यन्तपाठकल्पनं न समीचीनम्। यदि सप्तभ्यन्तः पाठः कालिदासस्याभिमतः स्यात्, तदाऽसौ बालकुन्दाविद्धम् इत्यत्र बालकुन्दानुवेधः इत्येव प्रणयेत् इति।[१]

पूर्ण. ने अलका बालकुन्दांनुविद्धा पाठ लेते हुए कहा है- अलका

१. संस्कृत साहित्य परिषद् (५.९६) १९३३-३४. पृ. १३२

बालकृन्दानुविद्धा इति पाठः अलकाश्चूर्णकुन्तला इत्यमरसिंहेनालकानां पुलिङ्गविधानात् प्रयोगबाहुल्यदर्शनाच्च । (पृ. १००-१०१)

मेदिनीकार के द्वारा अलकाः कुबेरपुर्यामस्त्रियां चूर्णकुन्तले कह अलक शब्द का पाक्षिक नपुसंकलिंग द्योतित किया गया है । फिर भी अलक का नपुसंकलिंग में प्रयोग माननीय नहीं कहा जा सकता । पाणिनीय लिंगानुशासन में क उपधायुक्त अकारान्त शब्दो का पुलिंग विधान किया गया है उनमें से चिबुक आदि शब्दो का नपुंसकलिंग में एवं कण्टक आदि शब्दो का पुलिंग व नपुंसकलिंग दोनों में प्रयोग कहा गया है । अलक शब्द का चिबुंकादि एवं कण्टकादि किसी में भी उल्लेख नहीं है जिससे यह स्पष्ट है कि अलक नियत पुलिंगवाची है । हर्षवर्धनं कृत लिंगानुशासन में तो स्पष्ट रूप से अलक का पुलिंगवाची शब्दो में पाठ है , उसे दृष्टिगत कर दक्षि. कृत अलके बालकुन्दानुवेधो पाठ अधिक रुचिकर प्रतीत होता है ।[१]

आननश्रीः (६५)

आनने श्रीः

दक्षि., मल्लि., भरत व कृष्ण. ने द्वितीय पाठ ग्रहण किया है । दक्षि. के शब्दो में पाण्डुतामानने श्रीरिति सप्तम्यन्तः पाठः । आनने कान्तिर्लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुता नीतेत्यर्थः । (पृ. ४४)

मल्लि. ने लिखा है-आनने मुखे लोध्रपुष्पाणां शैशिराणां रजसां परागेण.. पाण्डुता नीता श्रीः शोभा । (पृ. ५६)

स्थिर., वल्लभ., चारि., पूर्ण., सुमति. व चरणतीर्थ ने आननश्रीः को समस्त पद माना है । ईश्वरन्द्र ने इसी पाठ का समर्थन किया है ।[२] आनने श्रीः के द्वारा वह सौन्दर्य व्यक्त नहीं होता जो आनन श्रीः के द्वारा होता है ।

सितमणिमयानि (६६)

शितमणिमयानि

सुमति. ने शितमणिमयानि पाठ देकर इन्द्रनीलमणिरचितानि (पृ. १६७) अर्थ दिया है । महिम. ने इन्द्रनीलमणिसमूहनिर्भितानि अर्थ देते हुए कहा हैअत्र केचित् सितमणिमयानि पठन्ति तन्न युक्तं । यतो मरकतेष्वेव प्रतिबिम्बितानि नक्षत्राणि कुसुमप्रकरायन्ते । तत्र स्फटिककुट्टिमेषु सदृशवर्णवान्नक्षत्राणां कुसुमप्रकरोपमा न समधटि[३] उनकी व्याख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि वे भी शित मणिमयानि पाठ ही उचित मानते हैं ।

अन्य अधिकांश टीकाकार, स्थिर. वल्लभ., दक्षि., चारि. पूर्ण., सारो., कृष्ण व चरणतीर्थ सितमणिमयानि पाठ देते हैं । अधिकांश सितमणि से तात्पर्य स्फटिक मणि लेते हैं । भरत ने अपनी व्याख्या में इसके अर्थ के विषय में अनेक विकल्प

---

१. संस्कृत साहित्य परिषद् (१५,१६) १९३२,३४ पृ. १३२
२. सं. सा. परि. १५-१६, १९ ३२-३४
३. ed. G. R. Nandargikar (Notes), p. 81.

दिये हैं ।

सितमणिमयानि स्फाटिक-हीरकघटितानि तथा ज्योतिषां ग्रहनक्षत्राणां छायाः प्रतिबिम्बान्येव कुसुमरचना पुष्पाकारा येषु तानि तथा । ननु शङ्खक्षीरन्यायेन कथं सितमणिभूमौ तारकाप्रतिबिम्बमुत्पद्यते ? अन्यमणि योगातिस्वच्छात् प्रतिभाति प्रतिबिम्बं यथादर्पणे शुभ्रपुष्पम् । किंवा सिता विशुद्धा मणयः पद्मरागमरकतादयः सितमणिर्विशुद्धरत्नं सामान्यस्य विशेषपरत्वात् इन्द्रीलमणिरिति केचित् । शितेति तालव्यशकारं पठित्वाः शिताः कृष्णा मणयः इन्द्रनीलमणय इत्यर्थ इति व्याचक्षते केचित् । (पृ. ५३-५४)

चरणतीर्थ के शब्दो में सितानि उज्ज्वलानि प्रभायुक्तानि मणयः रत्नानि येषु तानि रत्नजटितानि । (पृ. ७५)

ज्योतिश्छायाकुसुमरचना. (६६)

ज्योतिश्छायाकुसुमरचिता.

ज्योतिश्छायाकुसुमखचिता.

स्थिर., वल्लभ., चारि., सुमति., भरत., कृष्ण., चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है । दक्षि., मल्लि., व सारों ने द्वितीय पाठ अपनाया । अर्थ की दृष्टि से स्थिर. (पृ. ८०,) वल्लभ. (पृ. ३६), चारि. (पृ. ८०), सुमति. (पृ. १६७), मल्लि. (पृ. ५८), सारो. (पृ.८५), भरत. (पृ. ५३), चरणतीर्थ (पृ. ७५) आदि ने यही भाव दिया है कि मणि जटिल उन महलों पर जो तारों का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है वही मानो उन महलों पर हुई कुसुम रचना की है ।

कृष्ण ने इस अर्थ का खण्डन करते हुए लिखा है नक्षत्रप्रतिबिम्बवत् कुसुमरचनं येषु यद्वा ज्योतिश्छायासहितकुसुमरचनं यत्र । केचितु ज्योतिश्छायेव कुसुमरचना यत्रेति वदन्ति हर्म्यस्यात्युच्चतावबोधेऽपि उपक्रान्तरासान्निध्यात् । (पृ. ३७)

पूर्ण. ने तृतीय पाठ अपनाते हुए इस प्रकार व्याख्या की है- ज्योतिश्छायाकुसुमखचितानि ज्योतिषां नक्षत्रग्रहताराणां प्रतिबिम्बैः पुष्पोहारैः संमिश्राणि । अथवा छायामिः कुसुमैश्च संकीर्णानि । अनेन हर्म्यशृङ्गाणां तारापथसंनिकृष्टत्वम्, मणिकुट्टिमानां प्रसादसंपञ्च ध्वन्यते । (पृ. १०३)

प्रथम अर्थ अधिक रुचिकर प्रतीत होता है । कवि ने पूर्व में ही अलका के आकाश स्पर्धि महलों का वर्णन किया है ।[१] अतः यहां पर सितमणिमय उन महलों में यदि नक्षत्रों का प्रतिबिम्ब पुष्प रूप में भासित हो रहा है तो कोई अत्योक्ति नहीं है ।

रतिफलम् (६६)

रतिरसम्

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., चारि., मल्लि., सारो., पूर्ण., सुमति, कृष्ण. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ लिया है । सारो. के शब्दो में रतिफलं रति रेकान्तक्रीडेव

१. मेघ. - ६४

फलं यस्य तत्। सुरतकेलिकार्यं न तु कलहादिजनकम् (पृ. ८४) सुमति. ने लिखा है रतिफलं संभोगवर्धकम् (पृ. १६७) मल्लि. ने मद्य का नाम रतिफल कहा है-तद्रतिफलाख्यं मधु मद्यमासेवन्ते। (पृ. ५८)

भरत., सना., रामनाथ हरगोविन्द ने रतिरसम् पाठ लिया है। भरत. के शब्दो में रतो रसोऽनुरागोरतेरास्वादो यस्मात् तत्तथा, रतिरनुरागः स एव रसोद्भवस्तमिव रूपकं मूर्तानुरागरतेरास्वादोः इति शर्वः। (पृ. ५४)

प्रियतमभुजालिङ्गतोच्छवासितानां (६७)

प्रियतमभुजोच्छ्वासितालिङ्गितानां

प्रियतमभुजालिङ्गितोच्छवासितानां

स्थिर., वल्लभ., सारो. एवं सुमति. ने प्रथम पाठ दिया है। वल्लभ के शब्दो में भर्तृभुजबन्धनपीड़ितानाम् (पृ. ३७) सारो. ने लिखा है-प्रियतमस्य वल्लभस्य भुजालिंगनं बाहु परिरम्भणं तेनोच्छवासितानां प्रवलश्वासभाजिनीनां पीड़ितानाम्। (पृ. ९१) क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने इसी पाठ को उचित कहा है।[१]

दक्षि., चारि., मल्लि., पूर्ण., एवं भरत. ने द्वितीय पाठ दिया है। दक्षि. के शब्दो में - 'बलात्कारात् सञ्जातोच्छ्वासत्वादुच्छ्भवासितं प्रियतमभुजदृढालिङ्गितानामित्यर्थः (पृ. ४६)। मल्लि. के शब्दो में प्रियतमानां भुजैरुच्छवासितानि। श्रान्त्या जलसेकाय वा प्रशिथिलितान्यालिङ्गितानि यासां तासां स्त्रीणां (पृ. ६१) पूर्ण के शब्दो में-प्रियतमानां भुजैः संजातोच्छवासं यथा तथा गाढमुपगूढ़ानाम्। (पृ.१०८) भरत. ने इस पाठ की व्याख्या में कहा है। प्रियतमेन भुजाभ्यामुच्छवासितम्। उद्यतश्वासीकृतम् आलिङ्गितं आलिङ्गनं यासाम् उच्छावासितम् च यथा स्यातथा आलिङ्गितानां वा गाढ़ालिङ्गतानामित्यर्थः किं वा प्रियतमेन भुजाभ्यामुच्छ्वासितानां पुरुषायितार्थ देहोपरिभृतानाम्आलिङ्गितानाञ्च। (पृ. ५६)

कृष्ण. व चरणतीर्थ ने तृतीय पाठ को दिया है। चरणतीर्थ के शब्दो में प्रियतमानां भर्तृणां यानि आलिङ्गितानि तैः उच्छ्वासिताः श्वासोच्छवासगतिं प्राप्ताः। (पृ. ८३)।

तन्तुजालावलम्बाः (६७)

यन्त्रजालावलम्बाः

स्थिरदेव के अतिरिक्त अन्य सभी टीकाकारों ने प्रथम पाठ लिया है। दक्षि. ने इसकी व्याख्या में कहा हिमजलपातनिवारणार्थमुपरि वद्धे विताने प्रलम्बमानानि मुक्तादामस्थानीयानि तन्तुजालानि अवलम्बमानास्तन्तुजालावलम्बाः। यद्वा तन्तुमयं जालमानायः तन्तु जालम्। प्रसादानामुपरितलेषु मेकादीनामवतरणनिषेधाय जालं वितन्वन्तीतिप्रसिद्धम् अत्रचन्द्रकान्तमणिबद्धरचनतन्तुजालं विवक्षितम्। (पृ. ४६-४७) पूर्ण. के शब्दो में वितानाधोभागे सूत्रसमूहग्रथिताः, गुलिकाकाराः

---

१. सं.सा. परि., [illegible], पृ. १३४

मालात्मनावलम्बमानाः । (पृ. १०८)

स्थिर. ने द्वितीय पाठ देते हुए कहा है-यन्त्रजालावलम्बाः यन्त्राणि पुत्रिकावप्रभृतिनि तद्युक्तेषु जालेषु वातायनेषु अवलम्बन्ते ते तथोक्ताः । सारो. (पृ.९१) एवं चारि. (८४) ने अपनी व्याख्याओं में इस पाठ का उल्लेख किया है ।

चन्द्रपादैर्निशीथे (६७)

श्चोतिताश्चन्द्रपादैः

प्रेरिताश्चन्द्रपादैः

चोदिताश्चन्द्रपादैः

वल्लभ. ने द्वितीय पाठ को देते हुए कहा है-चन्द्रपादैः शशिकिरणैः श्चोतिताः स्त्राविताः । (पृ. ३७)

सारो. व चरणतीर्थ ने तृतीय पाठ दिया है । सारो. (पृ.९१) ने प्रेरिताः का अर्थ चोदिताः एवं चरणतीर्थ ने (पृ. ५६) नोदिताः किया है ।

भरत. एवं कृष्ण. ने चतुर्थ पाठ अपनाया है । भरत के शब्दो में प्रेरिताः स्पष्टः ।। (पृ. ५६)

स्थिर. दक्षि., चारि., मल्लि., पूर्ण. एवं समुति. ने प्रथम पाठ दिया है । भाव को देखते हुए यह पाठ अधिक रुचि प्रतीत होता है । अंगो की अत्यधिक सुरतजन्य थकान दर्शाने के लिए निशीथे शब्द पूर्णतया सार्थक है । मल्लि . (पृ. ६१) ने निशीथे का अर्धरात्रि अर्थ दिया क्षितिशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने भी इस पाठ का समर्थन करते हए कहा है-निशीथे इति अत्यायतरतसम्भूतस्य श्रमस्य प्रावल्यं ध्वन्यते । यतः स्वत एव शीतलतरेण मध्यरात्रसमयेनाप्यपनेया ग्लानिश्चन्द्रकान्तजलबिन्दुसन्तानैखलुप्यते इति ।[१]

नवजलकणैर्दोषम् (६८)

सलिलकणिकादोषम्

स्वजलकणिकादोषम्

बल्लभ. एवं पूर्ण. ने प्रथम पाठ दिया है । स्थिर., दक्षि., चारि., मल्लि. एवं सारो. द्वितीय पाठ के समर्थक हैं ।

स्वजलकणिकादोषम् एवं नवजलकणैर्दोषम् -इन दोनों पाठों को उचित न मानते हुए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर एक अन्य पाठ देते हैं । इनके मत में उभावेव पाठौ न समीचीनोस्वजलकणिकादोषमित्यत्र आलेख्यदूषणे स्वजलकणिकानां करणत्वात् स्वजलकणिकाभिर्दोषमित्येवं रूपस्यासमस्तस्यैव प्रयोगस्यौचित्यात् नवजलकणैरित्यत्र च नवेति विशेषणस्यानुपयोगात् तस्मात् । निजजलकणैर्दोषम् इत्येवं रूप एव पाठः समीचीनतया प्रतिभाति ।[२]

यक्षाङ्गनानाम् (६९)

---

१. सं. सा.पारि. २५-२६, ११२२-२७, पृ. १२४

२. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 84.

बिम्वाधराणाम्

स्थिर., वल्लभ., चारि., सारो., सुमति., व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है। ईश्वचन्द्र ने इसी पाठ को उचित कहा है।[१]

दक्षि., मल्लि., पूर्ण., भरत. एवं कृष्ण. ने बिम्बाधराणां पाठ दिया है। दक्षि. के शव्दो में-

बिम्बफलमिवाधरो यासां ता विम्बाधरा इति स्त्रीणां नामधेयम् (पृ. ४५) मल्लि., (पृ. ६०) ने भी दक्षि. के ही अर्थ का अनुकरण किया है। पूर्ण. ने इस पाठ के महत्व को इन शब्दो में कहा है-बिम्बाधराणां पुनःपुनः प्रियैर्गाढ़लीढ़तया स्फुटोपलब्धबिम्बीफलसाम्यं दन्तवासो यासाम्। अनेन तादृशामघरमणीनामेव रागराज्यनिर्वहणगर्वदुर्वारत्वादितराङ्गनां कः साहायकावकाश इति ध्वन्यते। (पृ. १०४) क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने इस पाठ को उचित मानते हुए कहा है-अस्माकं तु विम्बाधराणाम् इत्येव पाठः समीचीनतया प्रतिभाति यद्यपि यक्षाङ्गनानाम् इत्युक्तावेव तासांमनितरसाधारणारुपलावण्यादि प्रतीयते, तथापि सामान्यापेक्षया विशेषस्यैव सहृदयहारित्वाद् विशेंषेण बिम्बाधराणामित्युक्तिरेव कामपि चमत्कारकणिकां प्रादुष्करोति।[२]

क्लृप्तच्छेद्यैः (७०)

पत्रच्छेद्यैः

पत्रच्छेदैः

वल्लभ., चारि., एवं भरत. ने प्रथम पाठ दिया है। उनके शव्दो में-

वल्लभ.-क्लृप्तच्छेद्यैः रचितविच्छित्तिविशेषैः (पृ.३८)

चारि.-क्लृप्तं रचितं छेद्यं छेदो येषां तैः (पृ. ८५)

भरत.- क्लृप्तं विरचितं छेद्यं छेदार्ह पत्रं येषां तैः। छेद्यमिति भावे ध्यण् वा। (पृ.५४)

भरत. ने एक अन्य पाठ क्लृप्तच्छैदेरिति क्वचित् पाठः लिखा है पर उपलब्ध टीकाओं में यह पाठ कहीं दृष्टिगत नहीं होता।

स्थिर., सारो., व सुमति. ने द्वितीय पाठ ग्रहण किया है। स्थिर. व सारो. ने पाठान्तर के रूप में तृतीय पाठ को भी दिया-

स्थिर.-पत्रच्छेद्यैश्च छेद्यं छेदनीयं पत्रं लतादि (येषां) तादृशैः ... पत्रच्छैदैरिति पाठान्तरे नागवल्लीदलकिसलयैः (पृ.८५)

सारो०-पत्रच्छैद्यैश्च पत्राणां दलानां छेदं खण्ड बर्हन्तीति पत्रच्छेद्यानि तैः। छेद्यं छेदनीयं पत्रलतादि। पत्रच्छेदै रिति पाठान्तरे पत्राणां छेदो भंगो येषु तानि तैः नागवल्लीदलशकलैः (पृ.८५)

सुमति.-पत्रच्छैद्यैः नागवल्लीपत्रषण्डैः (पृ. १६८) मल्लि., कृष्ण. व चरणतीर्थ ने तृतीय पाठ देते हुए कहा है-

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 88.

२. सं. सा. परि, १५-१६, १९३२-३४, पृ. १३३-३४

मल्लि.-पत्राणां पत्रलतानां छेदैः खण्डैः। (पृ. ६३)
चरणतीर्थ-नागवल्लीशकलैः (पृ. ७६)

मुक्तालग्नस्तनपरिमलैच्छिन्नसूत्रैश्च हारै. (७०)
मुक्तालग्नस्तनपरिमलच्छिन्नसूत्रैश्च हारै।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै.
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरैश्छिन्नसूत्रैश्च हारै.
मुक्ताजालैस्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः

स्थिर., वलल्भ.एवं सारो. ने प्रथम पाठ दिया है। स्थिर. वा सारो. ने अन्य पाठ को भी पाठान्तर रूप में दिया है।

स्थिर.-मौक्तिकेषु लग्नः सम्बद्धः स्तनयोः परिमलो मलयजादीनां आमोदो येषां तैः मुक्ताजालस्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः यदि पाठः तदा मुक्ताजालैः उत्तमाङ्गालंकारैः तथा स्तनो परिसरन्ति स्तनपरिसराः पूर्वं पश्चात् छिन्नसूत्राश्च ये हाराः तैः। पीनस्तनतटसंघट्टत्रुटिततनुभिः इत्यर्थः (पृ. ८४)

वल्लभ.-मुक्तामणिषु लग्नः स्तनपरिमलः कुचामोदोयेषां तैच्छिन्नसूत्रैर्मुक्ताहारैश्च (पृ. ३८)

सारो.-मुक्तासु मौक्तिकेषु लग्नः सम्बद्धः स्तनयोः परिमलो मलयजादीनाम् आमोदो येषु ते मुक्तालग्नस्तनपरिमलास्तैः। ..अथवा समस्तं-मुक्तासु लग्नो योऽसौ स्तनपरिमलः कुचसम्मर्दस्तेन छिन्नानि सूत्राणि येषां तैः। कठिनस्तनतटसंघट्टत्रुटिततन्तुभिरित्यर्थः। अथवा मुक्ताजालैः मुक्तानां जालानि वृन्दानि येषु ते तैः। ... मुक्तालग्नस्तपरमलच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः पाठः मुक्ताजालैस्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्चहारैः इति पाठान्तरम्। (पृ. ८५)

चारि. एवं सुमति. ने द्वितीय पाठ देते हुए कहा है-

चारि.-मुक्तासु मौक्तिकेषु लग्नः स्तनानां कुचानां परिमलः सौगन्ध्यं येभ्यस्तैः। छिन्नानि त्रुटितानि सूत्राणि तन्तवो येषां तैः (पृ. ८५)

सुमति.-मुक्तासु लग्नो योऽसौ स्तनपरिमलः कुचसंमर्दः तेन छिन्नानि सूत्राणि येषां ते तैः मुक्तालग्नस्तनपरिमलच्छिन्नसूत्रैः कठिनस्तनसंमर्दिततन्तुभिरित्यर्थः। (पृ. १६८)

मल्लि. एवं चरणतीर्थ ने तृतीय पाठ दिया है। मल्लि. के शब्दों में मुक्ताजालैमौक्तिकसरैः शिरोनिहितैरित्यर्थः। तथा स्तनयोः परिसरः प्रदेशस्तत्र छिन्नानि सूत्राणि येषां तैर्हारैश्च सूच्यते ज्ञाप्यते (पृ.६३)

भरत. ने चतुर्थ पाठ देकर मुक्ताजाल से तात्पर्य मुक्तासर नामक आभूषण लिया है। अपनी व्याख्या में उन्होने दो अन्य टीकाकारों के मत भी दिये हैं।

मुक्ताजालैर्मुक्तानां जालैराभरणभेदैर्जालसूत्रावलीन्यायेन परिहितैमौक्तिकस्तया हारैः स्वनामख्यातैर्मुक्ता- कलापालङ्कारैश्च..मुक्ताजालं मुक्तासर इति प्रसिद्धं मण्डनम्। तथा च-मुक्तासरं परिदध्यादूर्वोः कण्ठे पयोधरे इति, वेष्टनं स्यात् परिसर इति शर्वः पुरुषोतमस्त्वाह, मुक्ताजालैर्मुक्तासमूहैः हारैर्हाराकारैः स्तनं परिसरन्तीति स्तनपरिसरास्तैः पचादित्वादजिति। केचितु मुक्ताजालैर्मुक्तासमूहैरर्थाद

धम्मिल्लादिमण्डनोपयुक्तैस्तथा स्तनपरिसरैः कञ्चुलिकाभिस्तथाहारैः छिन्नसूत्रैरिति त्रयाणामेव विशेषणमित्याहुः । स्तनपरिसरः स्तनपरस्तेन स्तनपरिसर स्तनपर्यन्ते वा छिन्नं सूत्रं येषां तादृशैः स्तनपरिसरेरित्यपपाठो प्रयोजकदोषापातादन्वयाभावाच्चेति बृहस्पतिः । किन्त्वयमस्य प्रमादः पूर्वटीकाकारैः स्तनपरिसरेरित्यस्यैवव्याख्यातत्वात् प्राचीनवहुपुस्तकेषु तत्पाठस्य दृश्यमानत्वाच्च । (५४५५)

कृष्ण, ने पांचवां पाठ दिया है पर स्तनपरिसर की व्याख्या में कुछ नहीं लिखा है-छिन्नं सूत्रं येषां तादृशैर्हारैः मुक्ताजालैरलकादिच्युतमौक्तिकपटलैरित्यर्थः । यद्वा हरिहर सम्बन्धिभिर्मुक्ताजालैः । (पृ. ३७)

गृहादुत्तरेणास्मदीयं (७२)

गृहानुत्तरेणास्मदीयं

वल्लभ:, दक्षि., चारि., मल्लि., पूर्ण. एव भरत. ने द्वितीय पाठ दिया है । वल्लभ. के शब्दों में उत्तरेणेत्येनवन्तः । तद्योगे च गृहानित्येनपा द्वितीया । पञ्चम्यन्तः पाठस्त्वनार्यः (पृ. ३९) । इस प्रकार वे उत्तरेण को एनप् प्रत्ययान्त कह उसके योग में एनपा द्वितीया (पृ. २-३-३१) से गृहान् में द्वितीया मानते हैं । दक्षि. (पृ.४८), चारि. (पृ.८८), पूर्ण. (पृ. १११), मल्लि. , (पृ. ६५) एवं भरत. (पृ. ५८) ने इसी भाव को दिया है ।

मल्लि. एवं भरत. ने विकल्प रूप में प्रथम पाठ को भी दिया है । मल्लि. के शव्दो में-धनपति गृहादिति पाठे उत्तरेण इति नैनप्प्रत्ययान्तं किन्तु तोरणेन इत्यस्य विशेषणं तृतीयान्तं । धनपतिगृहादुत्तरस्यां दिशियत्तोरणं बहिर्द्वार तेन लक्षितामित्यर्थः (पृ. ६५) । भरत. के शव्दो में गृहादुत्तरेणेति पाठे । विशेषेऽपि सामान्यप्रवृत्ते दिर्क्शब्देन योगे पञ्चमी । (पृ.५८)

स्थिर., सुमति., सारो. लक्ष्मी., महिम., मेघराज, कृष्ण. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है । वे तोरणेन को एनप् प्रत्ययान्त न कह तृतीयान्त मानते हैं स्थिर. के शव्दो में धनपतिगृहात् धनदमन्दिरात् उत्तरेण उत्तरिदिग्विमागेन विशेषितम् इत्यंभूतलक्षणातृतीया । धनपतिगृहात् अत्र एनप्रत्ययाभावात् न द्वितीया । (पृ. ८६) । सारो. (पृ. ९३) ने यही भाव दिया है । पर कृष्ण तोरणेन को एनप् प्रत्यय युक्त मानते हुए भी गृहात् में पंचमी ही मानते है । ठनके शव्दो में यद्यपि एनपा द्वितीयेति द्वितीया प्राप्ता, तथापि दूरान्तिकेति सूत्राद् 'अन्यतरस्यामि ' ति मण्डूकप्लुति-न्यायेनानुवर्त्य पञ्चम्यपीति ध्येयम् (पृ. ३९) .

आर.सी. हजरा ने यहां उत्तरेण को तद्धित प्रत्यय एनप् युक्त कहते हुए भी गृहात् में पंचमी ही कही है ।[१] बाणभट्ट की कादम्बरी[२] एवं हर्षवर्धन कृत नागानन्द में[३] इस प्रकार के प्रयोग दृष्टव्य हैं ।

---

१. IHQ, 25. 1949 p. 282-84.

२. इतश्च नातिदूरे तस्माद्भारतवर्षादुत्तरेणानन्तरे पुरुपनाम्नि । निर्णयसागर प्रैस -पृ. २५९

३. यावदहमस्यस्मादुत्तरेणानन्तरे [illegible] प्रदक्षिणीकृत्य स्वाम्देशमनुतिष्ठामि । Ed. Neruvker, Act Iv, p. 56.

न ध्यास्यन्ति (७३)

ना ध्यास्यन्ति

स्थिर. (पृ. ८८), वल्लभ. (पृ. ४०), पूर्ण. (पृ.११३), सारो. (पृ.९४), भरत. (पृ.५८), एवं चरणतीर्थ (पृ.८७) ने प्रथम पाठ देते हुए न स्मरिष्यन्ति अर्थ दिया है। पूर्ण. ने इसकी व्याख्या में कहा है-न ध्यास्यन्ति न तु गमिष्यन्ति, मनसापि न चिन्तयिष्यन्तीत्यर्थः । (पृ.११३)

दक्षि. चारि., मल्लि. व सुमति. ने द्वितीय पाठ देते हुए इस प्रकार व्याख्या दी है-

दक्षि.-अध्यास्यन्तीति पाठः । आध्यानमुत्कण्ठा आध्यानमुत्कण्ठोत्कलिकेसमेइत्यमरः (पृ.४९)

चारि.- नाध्यास्यन्ति नोत्कण्ठिष्यन्ति । च स्मरिष्यन्ति (पृ.८९)

मल्लि.-नाध्यास्यन्ति आध्यानमुत्कण्ठास्मरणम् इति काशिकायाम् । (पृ.६६)

सुमति.-न अध्यास्यन्ति न चिन्तयिष्यन्ति । (पृ. ९७५)

कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः (७४)

कनककदलीवेष्टनः प्रेक्षणीयः

कनककदलीवेष्टितप्रेक्षणीयः

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., चारि., मल्लि., पूर्ण., सारो.,. भरत. कृष्ण व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है। महिम व हरगोविन्द ने द्वितीय पाठ दिया है।[१] ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने द्वितीय पाठ उचित मानते हुए कहा है-अयमेव पाठः साधीयान् । समस्तपक्षे कनककदलीनां वेष्टनमेकमेव कीड़ाशैलस्य प्रेक्षणीयत्वे हेतुः । असमतस्तपक्षेतु इन्द्रनीलरचितशिखरत्वं कनककदलीवेष्टनत्वश्चेत्युभयं तत्र हेतुर्भवति। एतदेव युक्ततरं प्रतिभाति ।[२]

सुमति. ने तृतीय पाठ दिया है। यहां ईश्वरचन्द विद्यासागर के मत को दृष्टिगत कर द्वितीय पाठ ही रुचिकर कहा जा सकता है।

तालैः शिञ्जद्वलयसुभगैः (७६)

तालैः सिञ्जद्वलयसुभगैः

तालैः शिञ्जावलयसुभगैः

सभ्रूभङ्गैः करतललयैः

वल्लभ., पूर्ण., सारो., एवं भरत. ने प्रथम पाठ देते हुए भिन्न-भिन्न व्याख्याएं दी है-

वल्लभ.-शिञ्जेरात्मनेपदित्वात्छिञ्जदिति प्रयोगः प्रमादजः । अनित्यो वानुदचेदात्मनेपदविधिः । (पृ. ४१)

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 88.

२. सं.सा. परि., १५-१६, १९३२-३४, पृ. १३५

पूर्ण.-शिजि अव्यक्ते शब्दे इत्ययं धातुरात्मनेपदी, अतः परस्मैपदित्वं चिन्त्यम् (पृ. ११७)

सारो.-शिङक्ते इति अच्। शिञ्ज इवाचरति इत्यायि लोपे परस्मैपदम्। ननु शिञ्जतेरात्मनेपदित्वात् आनशा भवितव्यं यतः शिञ्जदित्यासाधोपदम्। अत्र समाधीयते। शिजि अव्यक्ते शब्दे। अतएव सिङक्तेपचादित्वात् अच्। स इवाचरतीत्यायि लोपे सति परस्मैपदं शिञ्जतीति वक्षमाने शन्तृङ्। (पृ. ९८)

भरत.-शिञ्जदिति क्वचिदात्मनेपदिनोऽपि पर स्यादिति शतः। परिष्वजति पाञ्चाली मध्ययं पाण्डुनन्दन मित्यादयो बहवः प्रयोगा दृश्यन्ते। शिञ्जैर्घञ्थ कः, ततः क्विः ततः शतृरित्यन्ये। (पृ. ६०)

स्थिर., महिम., सुमति. व चरणीर्थ ने दन्त्यसकारवान् परस्मैपदी द्वितीय पाठ दिया है। स्थिर. के शब्दो में ननु सिञ्जतेरात्मनेपदित्वादानशा भाव्यम्। अतः सिञ्जत् इत्यसाधुपदम्। अत्र समाधीयते। सिक्तिः: सिञ्जः इवाचरतीति आयि लोपे सति परस्मैपदं ततः शतृट्तया न दोषः (पृ . ९१)

दक्षि., चारि., मल्लि., व कृष्ण ने शिञ्जि को आत्मनेपदी कह तृतीय पाठ लिया है-

दक्षि.-शिञ्जा शिञ्जितं शिञ्जावन्ति पलयानि शिञ्जावलयानि। शाखावृक्षवत्त समासः। शिञ्जद्वलयसुभगैरिति पाठे शिञ्जि अव्यक्ते शब्दे इत्ययं धातुरात्मनेपदी। तस्मात् परस्मैपदं न भवति। (पृ.५०)

चारि.-शिञ्जा शिञ्जितं तत् युक्तानि वलयानि तै: सुभगैः रभ्यैस्तालैः करतलास्फालनवाद्यैः कृत्वा नर्तिता। सिञ्जद्वलयसुभगैरित्यशुद्धपाठः। सिञ्जिअव्यक्ते शब्दे इत्यस्यात्मनेपदित्वात्। यद्धा सिञ्जनं सिञ्जः घञर्थे क विधानम्। सर्वप्रातिपदिकेभ्य् इत्येके। इत्याचारे क्विप्। तदन्तात् शतृ प्रत्ययः। (पृ. ९२)

मल्लि.-शिञ्जा भूषणध्वनिः। भूषणानां तु शिञ्जि इत्यमरः। भिदादित्वादङ्। शिञ्जिधातुरयं तालव्यादिर्न तु दन्त्यादिः। शिञ्जाप्रधानानि वलयानि तैः (पृ. ६९)

सारो. एवं मल्लि. के पाठान्तर के रूप में चतुर्थ पाठ दिया है। सारो. के शव्दो में-

सभृङ्गै करतललयैर्नर्तित इति पाठान्तरे करतलयोर्लयास्तैः। हस्तद्वयाघात स्तालस्तदन्तरे विश्रामः कालः तालकालयोरन्तरे लयः समुत्पद्यते स च द्रुतविलम्बित मध्भेदास्त्रिधा तैर्नर्तितः (पृ. ९८)

महिम. के शव्दो में-समृभङ्गं करतललयैर्नर्तितः पाठान्तरं तत्र चायमर्थः। करतलयोर्लयास्तैर्हस्तद्वयाघातस्तालः। तदन्तरे ग्निकालस्तालः करतलयोल र्यास्तैर्हस्तद्वयाघातस्तालः तदन्तरे। विश्रामकालस्तालः कालतालयोरन्तरे लय शब्दः समुत्पद्यते स लयस्त्रिविधः द्रुतविलम्बितमध्यभेदात्। [१]

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 90.

शिखरदशना (७९)

शिखरिदशना

अशिखरदशना

स्थिर, वल्लभ., चारि. सुमति., पूर्ण., भरत., कृष्ण. व चरणतीर्थ न प्रथम पाठ देते हुए भिन्न-भिन्न व्याख्या दी है-

स्थिर.-शिखराः अप्रतीक्ष्णाः दशनाः दन्ता यस्याः सा तथा कथिता । अविषमदर्शनेत्यर्थः । अथवा शिखरं वज्रं तद्वद् दशना उज्ज्वलदन्ता इति सुदतीत्वम् । (पृ. ९४)

वल्लभ.-शिखरदशना तीक्ष्णदन्ता। (पृ. ४३)

चारि.-शिखराणि दाडिमबीजानीव दशना यस्याः सा । शिखरि कोटिमन्तो दशना दन्ता यस्या इति वा । शिखरं तद्वदुज्ज्वलदशनेति वा । पक्वदाडिमबीजाभं माणिक्यं शिखरं विदु रित्यमिधानचिन्तामणिः । (पृ. ९५)

सुमति.- शिखरदशना अतितीक्ष्णदन्ता । (पृ. १८०)

पूर्ण.-शिखरदशना पक्वादाडिमबीजामं माणिक्यं शिखरं विदुः इति हलायुधः । शिखराख्यमाणिक्यविशेषवत् स्निग्धधवलारुणदन्तीत्यर्थः श्लक्ष्णैः स्निग्धैः सितैर्दन्तैः शोभनत्वं च गच्छति इति सामुद्रोक्तेः । (पृ. १२१)

भरत.-शिखरदशना शिखरवत् कुन्दकुटमलवत् दशना दन्ता यस्यास्तादृशी, शिखरं शृङ्गमग्रञ्च शिखरं कुन्दकुट्मल इति बलः । केचितु शिखरमग्रं तदतिशयेनात्रास्तीति अतिशयेऽर्शादित्वादत् शिखरा अतिशयिताग्रा दशना यस्याः सा तथा दशनानां तीष्णाग्रत्वेन शुभलक्षणं सूचितम्, तदुक्तं पराशरसंहितायां स्त्रीशुभलक्षणे, समशितशिखरदशना चेती त्याहुः । पक्वदाडिमबीजाभमाणिक्यसमदन्ताः, तथा च विश्वः ।

शिखरं शैलवृक्षाग्रकक्ष्यापुलककोटिषु ।

पक्वदाडिमबीजाभमाणिक्यशकलेऽपि चे ति ।।

पक्वदाडिमबीजाभं माणिक्यं शिखरं विदु रित्यनेकार्थकोषश्च । अत एवात्र शिखरशव्दो लोहित माणिक्यवाचीत्याहुः । किन्तु दन्तस्य शुभ्रत्वमेव कविभिर्वण्यते। (पृ.६२)

कृष्ण.-शिखरं माणिक्यं तद्वद्दशनं यस्यास्तादृशी । (पृ.४१)

चरणतीर्थ-शिखरं तीक्ष्णः अग्रभागः तद्युक्ता दशनाः । (पृ. ९३)

दक्षि. व मल्लि.,ने द्वितीय पाठ देते हुए लिखा है-

दक्षि.-शिखरि दशनेति पाठः । शिखरीणिकोटिमन्ति दशनानि यस्याः सा श्लिष्टाः । दन्ता भवन्ति यासामासां पादे जगत् सर्वम् । (पृ. ५१)

मल्लि.-शिखराण्येषां सन्तीति शिखरिणः कोटिमन्तः ।। शिखरं शैलवृक्षाग्रकक्षापुलककोटिषु इति विश्वः । शिखरिणां दशना दन्ता यस्याः सा । एतेनास्या भाग्यवत्वं पत्याष्युकरत्वं च सूच्यते । तदुक्तं

सामुद्रिके-स्निग्धाः समानरूपाः सुपंक्तयः शिखरिणः श्लिष्टाः । दन्ता भवन्ति यासां तासां पादे जगत्सर्वम् । ताम्बूलरससक्तोऽपि स्फुटभासः समोदयाः । दन्ताः शिखरिणो यस्याश्चिरं जीवति तत्पतिः । इति (पृ. ७१)

सारो. टीकाकार ने तृतीय पाठ लिया है लेकिन व्याख्या में प्रथम पाठ को भी स्पष्ट किया है-अशिखरदशना। अशिखरा तीक्ष्णा दन्ता यस्याः सा अविषमदशनेत्यर्थः । अथ च शिखरदशना शिखरं पक्वदाडिमबीजाकारं माणिक्यं तद्वदुज्ज्वलतया दशना दन्ता यस्याः सा इत्यधरोष्ठरागित्वम् (पृ.१००)

(क) गाढोत्कण्ठागुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पदिमनीं वान्यरूपाम् ।।

(ख) गाढ़ोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां ।
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनींवान्यरूपाम् ।

(ग) गाढ़ोत्कण्ठागुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु वाला ।
जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनीवान्यरूपा ।।

(घ) गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये तुहिनमथिता पद्मिनीवान्यरूपा ।।

वल्लभ ने प्रथम पाठ एवं स्थिर.,चारि., सुमति., मल्लि., सारो., भरत. व कृष्ण. ने द्विवतीय पाठ अपनाया है । यद्यपि दोनों ही मतावलम्बी उत्तरार्ध के इन दो चरणो को द्वितीयान्तः रूप में देते हैं । पर वल्लभ. जहां गाढ़ोत्कण्ठागुरुषु को समस्त पद कह इसे दिवसेषु का विशेषण मानते हैं जबकि द्वितीय मतावलम्बी गाढोत्कण्ठां को अलग पद रूप में लेते हैं । इस सन्दर्भ में इनकी व्याख्या इस प्रकार है ।

वल्लभ.-यां च बालाममीषु गाढ़ोत्कण्ठादुःसहेष्वहःसु व्रजत्सु शिशिरदग्धां कमलिनीमिव विरूपां सम्पन्नां मन्ये जाने। वा शब्द इवार्थे। तां जानीया इत्येतदपेक्षयात्र सर्वत्र द्वितीया ।।
(पृ. ४३)

स्थिर.-गाढ़ोत्कण्ठां प्रवलोत्कलिकां गुरुषु दुर्वहेषु दिवसेषु वासरेषु... गाढ़ोत्कण्ठागुरुषु .यदि पाठः तदा उत्कण्ठागुरुषु दुःसहेषु इति व्याख्येयम् । ...पद्मिनीमिव अन्यरूपां कमलिनीमिव..ज्ञानक्रियया व्याप्तत्वात् सर्वत्र कर्मकारकम् ।
(पृ. ९५)

चारि.-गाढ़ोत्कण्ठा गुरुषु दुःसहेषु एव दिवसेषु गच्छत्सु वाला तुहिनेन हिमेन मथितां पद्मिनीवान्यथारूपां जातां मन्ये । वा शव्द इवार्थे ।
(पृ.९६)

सुमति.-गाढ़ोत्कण्ठां मन्मिलनायोत्सुकाम् (पृ. १८०)

मल्लि.-गाढ़ोत्कण्ठां प्रबलविरहवेदनाम् । रागेत्वलब्धविषये वेदना महती तु या । संशोषणी तु गात्राणां तामुत्कण्ठा विदुर्बुधाः इत्यभिधानात् । बालां गुरुषु विरह महत्स्वेषु वर्तमानेषु दिवसेषु गच्छत्सु सत्सु शिशिरेण शिशिर

कालेन मथितां तां पद्मिनी वां पद्मिनीमिव। इववद्वायथाशब्दो इति दण्डी (पृ. ७२)

सारो.-गाढ़ोत्कण्ठां। गाढ़ा प्रबला उत्कण्ठा यस्याः सा ताम्। केषु सत्सु ? एषु प्रावृषेण्येषु गुरुषु दुर्वहेषु. ..वाशब्द इवार्थे। पद्मिनीं वा पद्मिनीमिव ज्ञानक्रियायाव्याप्तत्वात् सर्वत्र कर्मकारकम् (पृ. १०१)

भरत.-एषु आषाढ़श्रावणीयेषु (गुरुषु) महत्सु दिवसेषु गच्छत्सु सत्सु गाढोत्कण्ठां प्रबलकामत्वात् गुरुतरस्मराम् यतो बालाम् अभिनवयौवनां... पद्मिनी वा नलिनीमिव... वा-शब्द इवार्थे। 'वा विकल्पोपमानयो रिति रन्तिः . व शब्दो वा, व शब्द उपमायां स्याद् वरुणे स्यादनव्यय इति विश्वः। केचितु गाढोत्कण्ठागुरुष्विति पठित्वा प्रबलोत्कलिकया दुःरूहेष्विति व्याचक्षते (पृ. ६३)

कृष्ण.-व शब्द इवार्थे। मणीव दम्पती वै त्यत्र प्रसङ्गेन कौमुदीकृतोक्तत्वात्। प्रभावात्मानं व प्रभावपिति कीचकबन्धाच्च। यद्वा, अकार प्रश्लेषाद् वा-शब्द एव तदर्थे अत्र वा स्याद्विकल्पोपमयोरिवार्थे च समुच्चये इति मेदिनिः। (पृ.४२)

सारांशतः उपरोक्त टीकाकारों ने तां जानीयाः के आधार पर पूरे श्लोक को द्वितीयान्त कह वा को इव अर्थ में लेकर अपनी व्याख्याएं दी हैं। और वल्लभ. ने जहां गाढोत्कण्ठा के कारण दुःसह दिनों के बीत जाने पर अर्थ दिया है। वहां अन्य टीकाकारों ने गाढोत्कण्ठां को वालां का विशेषण मान विरह के कारण दुःसह दिनों के बीत जाने पर गाढ़ोत्कण्ठायुक्त वाला को भाव दिया है।

दक्षि. (पृ. ५२), व पूर्ण., (पृ.१२५) ने तृतीय पाठ ग्रहण कर इन दो चरणों को प्रथमान्त माना है। यद्यपि अर्थ की दृष्टि से कोई विशेषता नहीं है पर सम्भवतः वा का उपमा अर्थ में प्रयोग उन्हे अभीष्ट न हो। अतः इन दो चरणों को प्रथमान्त रूप में कह उपमानवाची इव का प्रयोग किया है।

महिमभट्ट ने व्यक्तिविवेक में प्रथमान्त पाठ को ही मान्य कहा है।[१] विष्णुपाद

---

१. व्याख्यातारोऽप्यलीकविद्वन्यानितया प्रायेणापव्याख्यानैर्न केवलमात्मानं यावत् तत्र भवतो महाकवीनपि ह्रेपयन्तो दृश्यन्ते तद्यथा-
तां जीनायाः परिमितकथां जीवितं में द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढ़ोत्कण्ठागुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला
जाता मन्ये शिशिरमथिता पद्मिनीवान्यरूपा ।।
इत्यत्र पाठमिममबुद्धैव कलितकविहेवाकाः पराकृतप्रतीतिचारुतातिशयास्ते अवेमि तदवज्ञानात् यत्लापेक्षो मनोरथः इत्यादौ दृष्टामपि वाक्यार्थकर्मतां मन्यंतेरपश्यन्तो वालाकर्म स्वरसन्धिवशाद्विकृतमिव शब्दमेव प्रमाद् वा परिकल्प्यापव्याख्यामारभन्ते न ह्येवमर्थस्य वैचित्री काचित् समुन्मिषति। नापि महाकवेः कालिदासस्यान्वगतिरियं क्वचनापि प्रबन्धेऽवधारितपूर्वा रसनिधाने व्याधिमिव वा शब्दमिवार्थे प्रयुञ्जीतेति। व्यक्तिविवेक काशी संस्कृत सीरीज नं. १२१ पृ. ४२३-४२४

भट्टाचार्य भी इसी पाठ के समर्थक है।[१] रेवाप्रसाद द्विवेदी ने महिममट्ट के मत का खण्डन कर यहां द्वितीयन्त पाठ को ही मान्यता दी है। उनके मत में कालिदास ने रघुवंश (४-४२) एवं मालविकाग्निमित्रम् (५-१२) में भी वा का यथा अर्थ में प्रयोग किया है।[२]

चरणतीर्थ ने चतुर्थ पाठ दिया है। उन्होने केवल तुहिन मथिता एवं पद्मिनीवान्यरुपा को प्रथमान्त ग्रहण किया है। सम्भवतः इव की दृष्टिगत कर उन्होने ये पाठ दिया है।

उपरोक्त वर्णित चरणों में दो अन्य पाठ भी उल्लेखनीय है-

(क) जानीयाः स्थिर., वल्लभ., मल्लि., सुमति., व चरणतीर्थ ने यही पाठ दिया है मल्लि. व कृष्ण, ने यहां जानीथाः पाठ लिया है।

(ख) शिशिरमथितां-स्थिर., वल्लभ., मल्लि., समुति., भरत. एवं कृष्ण ने यह पाठ दिया है। दक्षि., व पूर्ण ने शिशिरमथिता प्रथमान्त कहा है। चारि., सारो. एवं महिम ने तुहिनमथितां एवं चरणतीर्थ ने तुहिनमथिता कहा है।

निभृते (८२)

रसिके

गिरिके

सुभगे

वल्लभ. व भरत. ने निभृते पाठ दिया है। वल्लभ. ने इसका अर्थ विनीते (पृ.४४) किया है भरत. ने इस शव्द के अनेक अर्थ दिये हैं-

हे निभृते विनीते, दक्षे वा, परिपोषिते वा,..केचितु हे निभृते निःशव्दे, तूष्णीभूते, भर्तारं स्मरसि ध्यायसि, कथमन्यथा तूष्णीं भूय तिष्ठसीति भावः इत्याहुः। केचितु निभृते तूष्णींभूते एतत् सम्बोधनेन किमिति पोष्टारं नामग्राहं नाह्वयसि। नाम प्रियस्य संश्रुत्य उल्लासो जायते महानिति तत् स्मरसि, नामगुरोरशरणं कुरुष्वेत्यर्थ इत्याहुः। निभृतेति शारिकानाम्, तत्सम्बोधनमिति केचित्। केचितु निभृते विजनदेशे रतस्थाने त्वं तस्यप्रिया प्रीतिविषयाः। अयमाशयः, तत्र तदा मया त्वया च व्यक्तसर्वाङ्गः प्रेयान् दृष्टः अतएव तत्सादृश्यं सम्यक् लिखितं नवेति त्वां पृच्छामीत्याहुः। (पृ. ६५)

स्थिर., चारि. सुमति. सारो., मल्लि., कृष्ण. व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ दिया है। इसकी व्याख्या में स्थिर. ने करुणरसोपस्कृतचित्ते (पृ. ९८) चारि कृपोरसोपस्कृतमानसे (पृ.९८) एवं सारो हे रसोत्पादकवाक्ये (पृ. १०३) कहा है। कृष्ण. ने रसिके का अर्थ हे निभृतमूके (पृ.४३) एवं महिम. ने गुणानुरागिणी दिया है।[३]

---

१. OH. Vol. 6, 1958 , p. 37-39.
२. कालिदास ग्रन्थावली-रेवाप्रसाद द्विवेदी (भूमिका भाग), पृ. ३२
३. ed. K.B. Pathak P. 107

दक्षि. ने तृतीय पाठ गिरिके देते हुए मार्जारादिसन्निधानात् पञ्जराभ्यन्तरं प्रविश्य बालमूषिकैव बिभेतीति वालभूषकानामन्तरेण शारिकाया उपालम्भ पूर्व सम्बोधनम्। गिरिका बालमूषिका इत्यमरः (पृ. ५४)

पूर्ण. ने सुभगे पाठ देकर सौभाग्यशालिनी (पृ. १२८) अर्थ दिया है।

विरहदिवसस्थापितस्यवधेर्वा (८४)

गमनदिवसप्रस्तुस्यावधेर्वा

गमनदिवसस्थापितस्यावधेर्वा

दक्षि., मल्लि. व पूर्ण ने प्रथम पाठ देते हुए कहा है-

दक्षि.- अवधेः शापान्तावधेरित्यर्थ। (पृ. ५४)

मल्लि.-विरहस्य दिवसस्तस्मात्स्थापितस्य तत आरभ्य निश्चितस्यावधेरन्तस्य (पृ.७६)

पूर्ण.-तत्प्रथमविश्लेषहेतुभूते दिवसे निर्णीतस्य। अवधेः कालसीमायाः, वर्षस्येति यावत्, (पृ. १३०)

वल्लभ. ने द्वितीय पाठ दिया है-

गमनदिवसात्प्रवृत्तो योऽवधिर्वषारव्यस्तस्य (पृ. ४५)

स्थिर., चारि., समुति., सारो., महिम., भरत. व चरणतीर्थे ने तृतीय पाठ दिया है।

स्थिर.-गमनदिवसस्थापितस्य गमनदिनादारभ्य यः स्थापितः संवत्सरपरिमाणः प्रतिष्ठितः (पृ. ९९)

सुमति.-गमनदिवसात् प्रारब्धस्य (पृ. १८३)

सारो.-गमनदिवसस्थापितस्य वियोगदिनकृतस्य संवत्सरपरिमाणतया, कल्पतस्य। (पृ. १०४)

महिम.-गमनदिवसे स्थापितः संवत्सरपरिणामतया कल्पितोऽवधिर्यस्य तस्य।[१]

भरत.-प्रस्थानदिनात्प्रभृति व्यवस्थापितस्य। (पृ. ६६)

देहलीदत्तपुष्पैः (८४)

देहलीमुक्तपुष्पैः

वल्लभ. व मल्लि. ने प्रथम पाठ देते हुए इस प्रकार व्याख्या की है-

वल्लभ.-देहल्यां द्वारविशेषे द्वारपूजार्थ दत्तैः पुष्पैः (पृ.४५)

मल्लि.-देहली द्वारस्याधारदारु। गृहावग्रहणी देहली इत्यमरः। तत्र दत्तानि राशित्वेन निहितानि यानि पुष्पाणि (पृ.७६)

स्थिर., दक्षि., चारि., पूर्ण., सारो., सुमति., भरत. कृष्ण. व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ देते हुए देहली की इस प्रकार व्याख्या की है-

स्थिर.-देहल्यां द्वारदारूणि तदधिष्ठातृदेवतापूजार्थ दत्तानि पुष्पाणि कुसुमानि तैः (पु.९९)

दक्षि.- गृहद्वारयन्त्रस्य तिरश्चीनफलकं देहली, । सा च वहिर्द्वार देहली प्रियतमालोकनोत्सुकतयावस्थानात्। (पृ५४)

---

१. ed. G.R Nandargikar (Notes), p. 95.

चारि.-भुवि देहल्यां पूजार्थ मुक्तैर्विश्राणितैः पुष्पैः (पृ. १००)

पूर्ण.- देहलीमुक्तपुष्पैः गृहावग्रहणी देहली इत्यमरः देहल्यां द्वाराधः स्थित-फलकायामनुदिनमेकैकशो निहितैः पुष्पैः (पृ.१३०)

सारो.-देहली उदुम्बरदारु तस्याः सकाशान्मुक्तानि भूमौ निहितानि यानि पुष्पाणि तैः। अथवा गृहद्वारदारु तदधिष्ठातृदेवता पूजार्थं प्रत्यहं पुष्पाणि मुच्यन्त इति। गृहावग्रहणीस्थापितकुसुमैः (पृ. १०४)

सुमति.-देहलीति देहल्यां दारुविशेषे मुक्तानि देवपूजार्थ पुष्पाणि कुसुमानि यानि तानि तैः देहलीमुक्तपुष्पैः। (पृ . १९३)

भरत.-देहल्यां गृहद्वारि मुक्तैः क्षिप्तैः पुष्पैः। (पृ. ६६)

आस्वादयन्ती (८४)

आसादयन्ती

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., चारि., सुमति., मल्लि. व पूर्ण ने प्रथम पाठ दिया है। यही पाठ अधिक रूचिकर प्रतीत होता है। विरहकाल में यक्ष का संयोग तो यक्षिणी को प्राप्त हो नही सकता पर चित्रस्थित उपक्रमो से उसका आस्वादन अर्थात् अनुभव अवश्य कर सकती है। वल्लभ (पृ. ४५) व चारि. (पृ.१००) ने इसका अर्थ अनुभवन्ती दिया है।

सारो., भरत. व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ अपनाया है। सारो. (पृ. १०४) ने इसका अर्थ अनुभवन्ती ही दिया है। जबकि आसादयन्ती का अनुभव अर्थ में प्रयोग दृष्टिगत नहीं होता। सम्भवतः लिपि प्रमाद के कारण आसादयन्ती पाठ दे दिया गया हो। भरत ने (पृ. ६६) ने इस पाठ की व्याख्या में प्राप्नुवती व चरणतीर्थ ने (पृ. ९८) ने प्राप्नुवन्ती लिखा है।

विरहेष्वङ्गनानां (८४)

विरहेह्यङ्गनानां

स्थिर., वल्लभ., दक्षि., चरि., सुमति., मल्लि., सारो., पूर्ण. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है। भरत व हरगोविन्द ने द्वितीय पाठ दिया है। भरत ने अपनी व्याख्या में कहा है। हि यस्मात् प्रायेण बाहुल्येन रमणविरहे कान्तविश्लेषे अङ्गनानां स्त्रीणां। केचितु विरहेष्वङ्गनानामिति पठित्वा विरहेष्विति बहुवचनं चिरविरह-सूचकम्। अङ्गनानां बहुत्वाद्बहुवचनश्चेति व्याचक्षते (पृ.९७)

इस व्याख्या से भरत. ने स्वयं ही प्रथम पाठ की उपयोगिता को सिद्ध कर दिया है।

अलं (८६)

अतः

स्थिर., दक्षि., चारि., समुति., मल्लि., पूर्ण., भरत. व चरणतीर्थ ने अलं पाठ दिया है-

स्तिर.-सुखयितुं आह्लादयितुं अलं समर्थः (पृ.१०६)

दक्षि.-मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य (पृ. ५५)

मल्लि.-अलं पर्याप्तं सुखयितुम् (पृ. ७७)
सारो.-अलं अतिशयितुं मत्सन्देशैः सुखयितुम् (पृ.१०९)
भरत.-अलमत्यर्थ सुखयितुम् (पृ.५३)
चरणतीर्थ-अलं सम्पूर्णतया सुखयितुम् (पृ. १००)

वल्लभ. व कृष्ण ने अतः पाठ दिया है। प्रसंग को दृष्टिगत कर यही पाठ अधिक संगत प्रतीत होता है। दिन तो यक्षिणी का यक्ष से सम्बद्ध कार्य व्यापारों में व्यतीत हो जाता होगा। पर रात्रि यक्षिणी के लिए गुरुतर शोकयुक्त है, अतः रात्रि में मेघ-दर्शन कहा है। वल्लभ. के शब्दो में-

त्वमतः कारणान्निशीथेऽर्धरात्रेमत्सन्देशैः सुखयितुं पश्येर्न तु दिवसे। (पृ.४५)

कृष्ण ने भी अतस्त्वं रात्रौ तां पश्य (पृ. ४५) कहा है।

अवनिशयनासन्नवातायनस्थः (८६)
अवनिशयनां सौधवातायनस्थः
विरहशयनां सद्यवातायनस्थः
अवनिशयनां सन्नवातायनस्थः

स्थिर., वलल्भ., समुति., सारो., व पूर्ण. भरत. कृष्ण. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ देते हुए कहा है-

स्थिर.-अवनौ भूमौ शयनं शय्या विरहसन्तापात् वा भूशयनं तस्याः आसन्नः संनिकृष्टो वातायनो गवाक्षः तत्र तिष्ठति ततस्थः सन् (पृ. १०६)
वल्लभ.-अवनौ भुवि न तु खट्वायां यच्छयनं तल्पं तस्यासन्ने निकटे वातायने गवाक्षे तिष्ठति यः स तथोक्तः। (पृ.४६)
सुमति.-भूमिशयनात्समीपगवाक्षः (पृ.१८५)
सारो.-ने स्थिर. की व्याख्या का ही अनुकरण किया है। (११०)
पूर्ण-क्षितितलविततमेध्यजिनादिरुपतदीयशयनप्रदेशसंनिकृष्टगवाक्षबहिमार्ग-स्थितः . अनेन योग्यस्थानस्थितेश्च तव न कश्चिद्दोष इति सूच्यते।(पृ.१३३)
भरत.-अवनिरेव भूमिरेव शयनं शय्या तस्याऽसन्नं सन्निहितं यत् वातायनं गवाक्षस्तत्र स्थितः सन्। एतेन वातायनसन्निधौ भूमिशय्या सन्दर्शनेन विरहवेदना विशेषावबोधात्तां ज्ञास्यसीति सूचितम्। विरहिणी हि शय्यां विहाय भूमौ शेते सन्तापात्। (पृ. ६७)
कृष्ण.-अवनिरेव शयनं शय्या तदासन्नम्। यद्वातायनं गवाक्षः तत्रस्थः। वातस्या अयनम् आगमनं येनेति तथा। (पृ. ४५)

चारि.व मल्लि. ने द्वितीय पाठ दिया है-

चारि.-अवनिशयानां तां (पृ. १०१)
मल्लि.-अवनिरेव शयनं शय्या यस्यास्ताम्। नियमार्थ स्थण्डिलशायिनीम्।

दक्षि.ने तृतीय पाठ दिया है-

हरगोविन्द व कल्याण. ने चतुर्थ पाठ अपनाया है।[1]

हरगोविन्द-सन्नवातायनस्थो निकटगवाक्षस्थः सन्।

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 96.

कल्आल्याण-सन्नवातायनस्थः भग्नगवाक्षस्थितः सन्। अनेन भवनस्य दुखस्था प्रोक्तेति भावः। [१]

सन्निकीर्णैकपार्श्वा (८७)

सन्निषष्णैकपार्श्वा

सन्निषण्णैकपार्श्वा

वल्लभ., भरत. व कृष्ण ने प्रथम पाठ दिया है-

वल्लभ.-विरहशयने सन्कीर्णं क्षिप्तमेकं पार्श्वं यया। (पृ .४६)

भरत.-सन्निकीर्ण सम्यक् निक्षिप्तं एकं पार्श्वं यया तादृशीम् विस्मृतपार्श्वान्तरपरिवर्तनामित्यर्थः। (पृ. ६८)

स्थिर., चारो., एवं चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ अपनाया है-

स्थिर.-सन्निषण्णं स्थितं एकं वामदक्षिणयोः अन्यतस् पार्श्व यस्या सा। क्षीणाङ्गत्वात् परिवर्तितुमसमर्था। (पृ. १०१)

दक्षि., चारि., सुमति., मल्लि. व पूर्ण ने तृतीय पाठ लिया है-

पूर्ण.-सन्निषण्णैकपार्श्वा सम्यङ्निलीनैकपार्श्वाम्। अनेन प्रियतमगतहृदयतया पार्श्वान्तरपरिवृतिविरहेण एकेनैव पार्श्वेन लिखितवदवस्थानं व्यज्यते। (पृ. १३३)

मत्संयोगः कथमुपनमेत्स्वनजोऽपीति निद्राम् (८७)

मत्संयोगः सुखमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्राम्

मत्संयोगः कथमपिभवेत्स्नजोऽपीति निद्राम्

मत्संभोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्राम् -

वल्लभ. व पूर्ण. ने प्रथम पाठ ग्रहण किया है-

वलल्भ.-मया सह कथं नाम स्वप्ने समागमो घटेतेति। (पृ.४६)

पूर्ण.-मत्संयोगः मया सहालिङ्गनादिरूपः संभोग इत्यर्थ. कथमुपनमेत् केनप्रकारेणोपपद्येत। स्वप्नजोऽपि स्वप्नवस्थाजनितोऽपि अपीति, जागरदशाभाविनोऽस्य दैवनिवारितत्वाद्दौलर्म्यं भवन्तु नाम, स्वाप्नस्य तु क्षणिकतया विधिनामपि क्षन्तव्यत्वमितिद्योत्यते (पृ.१३४- १३५)

स्थिर., सुमति., सारो., व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ दिया है। स्थिर. के शब्दो में-नूनं अहं एवं मन्ये मत्संयोगो मम समागमः स्वप्नजोऽपि स्वप्नज्ञाने जनितोऽपि यदि भवेत् स्यात् अतः सुख आंनन्द उपनयेत् इत्यनेन हेतुना निद्रामाकाङ्क्षन्ती स्वापममिलषन्ती। (पृ. १०३)

सुमति. (पृ. १८६), सारो. (पृ. १०७) एवं चरणतीर्थ (पृ. १०२) का भी यही भाव है-

चारि., भरत. व कृष्ण० ने तृतीय पाठ दिया है-

चारि.-स्वप्नजोऽपि मत्संयोगः कथमपि भवेदिति हेतोः। (पृ. १०४)

भरत.-मत्संयोगो मया सह समागमः स्वप्नजोऽपि निद्रासम्भवोऽपि कथमपि केनापि प्रकारेण भवेत् इति हेतोर्निद्राम् (पृ. ६९)

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 96

कृष्ण.-स्वप्नेनापि मत्संयोगः कथमपि भवेदित्यतो निद्रामाकाङ्क्षन्तीम् । संयोगः सुरतम् । कथमपीति निद्राया एवालाभात् (पृ.४५)

दक्षि. व मल्लि. ने चतुर्थ पाठ दिया है । मल्लि. के शब्दो में - स्वप्नावस्थाजन्योऽपि साक्षात्संभोगासम्भवादिति भावः । मत्संभोगः कथं केन प्रकारेणोपनमेदागच्छेत् । इत्याशयेनेति शेषः (पृ. ७९)

क्षितिशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने मत्सम्भोगः क्षणमपि भवेत् रूप पाठान्तर का भी उल्लेख किया है, जो प्राप्त टीकाओं में कहीं पर भी उपलब्ध नहीं होता ।[१]

काशीनाथ बाबू पाठक ने कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं को दृष्टिगत कर उपनयेत् के स्थल पर उपनमेत् पाठ को मान्य कहा है ।[२]

स्वप्न में समागम का उल्लेख कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तलम्[३] एवं विक्रमोर्वशीयम्[४] में भी किया है ।

क्षणमिव (८८)

क्षणइव

स्थिर.,चार., सुमति., सारो., रामनाथ., भरत., कृष्ण व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है ।

स्थिर.-क्षणमिव मुहूर्तमिव (पृ. १०२)

सुमति.-क्षणमिव क्षणमात्रमिव (पृ. १८६)

सारो.-क्षणमिव मुहूर्तमिव (पृ. १०६)

रामनाथ-क्षण इवेति युक्तः पाठः कालिदासप्रयोगान्नपुंसकलिङ्गोऽयमिति वा ।[५]

भरत.- क्षणमिति लोकोक्तया अल्पकालोपलक्षणम् यद्यप्यमरकोषादौ तास्तु त्रिशत् क्षण इति क्षणशब्दस्य पुंस्त्वं दृष्टं तथापि क्षणमिव गमितो वासरो वासरेणेति नीतारात्रिः क्षणमिवमयेत्यादिप्रयोगदर्शनात् क्षणशब्दोऽर्धचादौ पठनीय इति कलिङ्गः । क्षण इवेति युक्तः पाठ इति शर्वः । (पृ. ६९)

कृष्ण०-उत्सवे कालभेदे च क्षणमिति विश्वः ।पृ. ४५)

चरणतीर्थ-क्षणमिव मुहूर्तमिव (पृ.१०१)

वल्लभ., दक्षि., मल्लि. व पूर्ण. ने द्वितीय पाठ दिया है-

वल्लभ.-क्षणवदतिवाहिता (पृ. ४७)

पूर्ण.-क्षण इव नाडिकायाःषष्ठो भाग इव, (पृ. १३३)

विरहशयनेष्वस्रुभिः (८८)

विरहजनितैरश्रुभिः

विरहमहतीमश्रुभिः

---

१. सं. सा. परि. १५-१६, १९३२-३४, पृ. १३७
२. ed.K.B. Pathak, 109.
३. अभि. शा., ६।२२
४. विक्रमो., २।१०
५. ed. G. R. Nandargikar (Notes), p. 97.

विरहपतितैरश्रुभिः

वल्लभ. ने प्रथम पाठ तामेवोष्णैर्वाष्पैर्विरहशय्ययां रोदनेन मासमिव यापयन्ती (पृ. ४७)

स्थिर., चारि., सारो., महिम., भरत., कृष्ण व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ दिया है-

स्थिर.-वियोगदुःखोत्पादितैः (पृ. १०२)

सारो.-वियोगोत्पन्नैः (पृ. १०६)

महिम.- विप्रयोगसम्भूतैः[१]

भरत.- विच्छेदोत्पादितैः (पृ.६९)

दक्षि., पूर्ण. व मल्लि. ने तृतीय पाठ दिया है-

पूर्ण.-मद्वियोगदुःखदीर्घीभूताम् (पृ.१३४)

मल्लि.-विरहेण महतीं महत्वेन प्रतीयमानाम् (पृ. ७८)

सुमति. ने चतुर्थ पाठ देते हुए कहा है- भर्तृविरहपतितै): (पृ :१८६) अधिक्षामां ..यापयन्तीम् (८७-८८)

वल्लभ. ने ८७-८८ श्लोकों को इस प्रकार दिया है-

आधिक्षामां विरहशयने सन्निकीर्णैकपार्श्वा
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
मत्संयोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा
माकाङ्क्षन्ती नयनसलिलोत्पीडरूद्धावकाशाम् ।।
निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्ती
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णेर्विरहशयनेष्वश्रुभिर्यापयन्तीम् ।।

अन्य टीकाकारों ने इन श्लोकों को निम्नलिखित रूपों में दिया है-

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः ।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णेर्विरहमछतीमत्रुमिर्यापयन्तीम् ।। (८७)
निःश्वासेनाधरकिसलय क्लेशिना विक्षिपनतीं
शुद्धस्नानात्परूषमलकं नूननमागण्डलम्ब्म्
मत्संयोगः कथमुपनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्ती नयनसलिलोत्पीडारुद्धावकाशाम् ।। (श्लोक सं. ८८)

यहां एक बात और उल्लेखनीय है कि स्थिर., सारो., व चरणतीर्थ ने दोनों श्लोकों को प्रथमान्त मान आधिक्षामा, पार्श्वा, तनुरिव, कलामात्रश्रेषा विक्षिपन्ती एवं लम्बि शव्दो को प्रथमांत रूप में दिया है । जबकि अन्य टीकाकारों ने इन

---

१. ed. G. R. Nandargikar (Notes), p. 97.

शब्दो को द्वितीयान्त ग्रहण किया है।[1]

वामोवास्याः (९३)

वामश्चास्याः

स्थिर. एवं वल्लभ. ने प्रथम पाठ देते हुए लिखा है-

स्थिर.-वाशब्दः उक्तोपमार्थी तस्याः पतिप्रियायाः विलोचनमिव वामः ऊरू (पृ. १०९)

वल्लभ.-वाशब्दो नयनस्पन्दापेक्षया विकल्पे (पृ.४९)

दक्षि., चारि., सुमति., मल्लि., सारो., पूर्ण., भरत. कृष्ण. व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ दिया है-

सुमति.-च पुनः (पु. १९१)

सारो.-च शब्दः उक्तोपमार्थस्तेनास्या मत्प्रियाया विलोचनमिव वामः उरूः (पृ. ११२)

भरत.-चकारः पूर्वापिक्षयासमुच्चये, च केवलं नयनं स्पन्दिष्यते ऊरुरपीत्यर्थ (पृ. ७२)

कृष्ण.-च पुनरर्थे (पृ. ४८)

सरसकदलीस्तम्भगौरः (९३)

कनककदलीस्तम्भगौरः

अधिकांश टीकाकारों ने प्रथम पाठ दिया है-

स्थिर.-सार्द्ररम्भाकाण्डपाण्डुः। (पृ. १०९)

वल्लभ.-अभिनवकदलीकाण्डवच्च गौरः श्वेतः (पृ. ४९)

दक्षि.-आर्द्रकदलीस्तम्भपाण्डुरम्। ऊर्वोर्गौरत्वं निवातवर्तित्वात् (पृ. ५८)

मल्लि.-सरसो द्रवभावः परिपक्वो न शुष्कश्च विवक्षितः । तत्रैव पाण्डिमसम्भवात्। स चासौ कदलीस्तम्भश्च स इव गौरः पाण्डुरः। गौरः करीरे सिद्धार्थे शुक्ले पीतेऽरुणे च इति मालतीमालायाम्। (पृ.८४)

पूर्ण. - सारोत्तरघरातलावस्थानात्समयावसेकाच्चाविदितशोषदण्डकदलीकाण्डवत् श्लक्ष्णवृक्षविपुलत्वसहचरितविमलवर्णविशिष्टः गौरवर्णत्वं च वरवर्णिनीनां गण्डमुकुरकुचमण्डलोरुकाण्डेषु स्मरेण यौवनोष्मणा च प्रसिद्धम्। (पृ. १४२)

भरत.-सरसकदलीस्तम्बगौरः रसयुक्तरामकदलीप्रकाण्डवद् गौरः पाण्डरः, कनककदलीति पाठे कनककदली वस्त्रावृत्वादीषत् पाण्डुरित्यर्थः । कनककदलीति पाठे कनककदली कदलीविशेषस्तद्वद् गौरः पीतवर्णः तन्वी श्यामे त्यत्र श्यामा स्त्रीविशेषः ननु श्यामवर्णेति पीतवर्णत्वे विरोधाभासः। (पृ. ७३)

चरणतीर्थ-सरसः रसभरितो यः कदल्याः स्तम्भः तद्वत् तत्सदृशो गौरवर्ण (पृ.१०७)

कृष्ण ने पाठ तो प्रथम ही दिया है पर व्याख्या में कनककदलीरूपस्तम्भवद्गौरः (पृ. ४८) कहा है।

---

१. उपरोक्त श्लोकों में पाठ भेदों को पूर्व में स्पष्ट कर दिया है।

चारि., सना. व हरगोविन्द ने द्वितीय पाठ दिया है ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने द्वितीय पाठ को उचित कहा है उनके शब्दो में अयमेव पाठः साधीयान् कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः इत्यत्र अलकायां कनककदलीनां बाहुल्यदर्शनादुपमिति काले तासामेव बुद्धिस्थत्वात्।[१]

उपरोक्त दो पाठों के अतिरिक्त पार्श्वाम्युदय में सरसकदलीगर्भगौरः पाठ मिलता है। नन्दर्गीकर ने इसी पाठ का समर्थन किया है।[२]

विद्युत्गर्में निहितनयनां (९५)

विद्युत्कम्पस्तिमितनयनां

विद्युत्गर्भः स्तिनितनयनां

विद्युत्गर्भ स्तिमितनयनां

यहां पाठ-भेद के साथ अर्थ में भी काफी भिन्नता है। प्रथम पाठ के ग्रहण कर्त्ता वल्लभ के शब्दो में विद्युत्गर्मे तडित्वति वातायने दिदृक्षया क्षिप्तचक्षुषम् (पृ.५०)

रामनाथ, हरगोविन्द, भरत. एवं कृष्ण ने द्वितीय पाठ अपनाते हुए इस प्रकार व्याख्या दी है-

रामनाथ- विद्युता सह कम्पते इति विद्युत्कम्पो मेघः सम्बोधनं हे विद्युतत्कम्प।[३]

हरगोविन्द -विद्युत्कम्पेन तडित् प्रकाशेन स्तिमितनयनाम् अकस्मिकप्रकाशात् स्थिरीकृतलोचनाम्।[४]

भरत.-विद्युतः कम्पेन चलनेन स्तिमिते निश्चले नयने लोचने यस्यास्तादृशीम् (पृ. ७४)

कृष्ण.-विद्युत्कम्पे नास्तमितं मुद्रि यस्यास्ताम् (पृ. ४९)

स्थिर., दक्षि., मल्लि., सारो., व पूर्ण. ने तृतीय पाठ देते हुए कहा है-

स्थिर.-विद्युत गर्मे मध्ये यस्य स तादृशः। स्त्रीद्वितीयः, परनारीसम्भाषणं एकानिको न उचितमिति। तां किमूताम्। स्तिमितनयनां निर्निमेष-दृशमिति विलोकनादरप्रतिपादनम् (पृ. १११)

दक्षि.-अन्तःस्तम्मितविद्युत्कः। इदं विशेषणं तस्या मेघसन्दर्शनसुखार्थमुक्तम् (पृ. ६०)

मल्लि.-विद्युद्गर्मोऽन्तःस्था यस्य स विद्युद्गर्भः। अन्तलीर्नविद्युत्क इत्यर्थः। गर्भोऽपवरकेऽन्तःस्थे गर्भोग्नो कुक्षिगेऽर्भके इति शब्दार्णवे। दृष्टिप्रतिघातेन वक्तुर्मुखावलोकनप्रतिबन्धकत्वान्न द्योतितव्यमिति भावः। (पृ. ८६)

सारो.-विद्युद्गर्म विद्युत् ग़र्मे मध्येयस्य सः स्त्रीद्वितीयः। परनारीसम्भाषणमेकाकिनो नोचितम् अत आह विद्युद्गर्भः। अन्तर्गूढविद्युता भवता भाव्यमन्यथा भीरुत्वात् सा भेष्यतीति (पृ. ११३)

---

१ ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 100.

२ Ibid.

३. सं. सा. परि.१५-१६, १९३२- ३४

४. वही

पूर्ण.- विद्युद्गर्भः उदरनियमिततटिल्लतः तत्फलमाहस्तिमितनयनाम् अततर्कतोपनतेन भवद्दर्शनेन विस्मयचिन्तोत्सुक्यादिविवशतया निश्चल-न्यस्तदृष्टिम्, तटितो बहिः स्फुरेण स्तिमितनयनात्वं न सम्भवतीति भावः । (पृ.१४५)

सुमति., कल्याण एवं महिम. ने चतुर्थ पाठ देते हुए लिखा है-

सुमति.-भो विद्युत्गर्भ भो मेघ (पृ. १९२)

कल्याण.-हे विद्युद्गर्भ विद्युद्गर्भे यस्य सः । तथा सम्बोधनद्वारेणोपदेशं ददाति । भवता अन्तर्गतविद्युता तत्र भवितव्यमिति भावः । अन्यथामीरुस्वभावाद्वनितानां भेष्यतीति ।[१]

महिम.- विद्युद्गर्भ विद्युत्सौदामिनी गर्भे मध्ये यस्यासौ विद्युद्गर्भः । तस्य सम्बोधनं हे विद्युद्गर्भ । इति सम्बोधनद्वारेणोपदेशं ददाति । हे मेघ सौदामिनी गर्भे एव स्थाप्य बहिर्न प्रकाश्य कथं विद्युद्दामचमत्कारचेष्टतैः सा भेष्यति । एतएव भीरुतया अबलात्वेन तस्या धैर्यं ।[२]

धीरस्तनितवचनैः (९५)

धीरध्वनितवचनैः

धीरैः स्तनितवचनैः

धीरः स्तनितवचनैः

धीर स्तनितवचनैः

वल्लभ. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ देते हुए लिखा है-

वल्लभ-गम्भीरगर्जितेनेव वचसा (पृ. ५०)

चरणतीर्थ-गम्भीराल्पगर्जितपूर्वाणि वाक्यानि तैः (पृ.१०९)

भरत. ने द्वितीय पाठ दिया है साथ ही दो अन्य पाठों को भी व्याख्या में स्पष्ट किया है-

प्रबलगर्जितेन चमत्कृतिः स्यादित्युक्तं धीरध्वनितवचनैरिति । धीरो धैर्यान्विते मन्दे इति बलः । हे धीर सावधानेति सम्बोधनं वा । धीरस्तनितवचनैरिति क्वचित् पाठः धीरध्वनितवचन इति पाठे मन्दगर्जितवाक्यः सन् त्वम् धीरध्वनितवचनमिति पाठे क्रियाविशेषणम् । (पृ. ७४)

दक्षि. व चारि. ने तृतीय पाठ दिया है-

दक्षि. धीरैः गम्भीरैः । स्तनितवचनैः गर्जितवचनैः (पृ.६०)

चारि.-धीरैः स्तनितानि गर्जितान्येव वचनानि तैः (पृ.१११)

स्थिर., मल्लि., सारो., व कृष्ण. ने चतुर्थ पाठ देते हुए कहा है-

स्थिर.-वक्तुंअभिधातुं । धीरः स्थिरः । स्तनितवचनैः स्तनितानि गर्जितानि एव वचनानि तैः. (पृ. १११)

मल्लि.-धीरो दृढ़ सन् अन्यथा शीतलत्वादिनैतदनाश्वासनप्रसङ्गादिति भावः । स्तनितवचनैः स्तनितान्येव वचनानि तैर्वक्तुं(पृ. ८६)

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 101.

२. Ibid

सारो.-स्तनितवचनैर्गर्जितवाक्यैः न तु परुषभाषितैः (पृ.११३)

कृष्ण.-स्तनितान्येव वचनानि तैर्वक्तुंप्रक्रमेथाः यद्वा स्तनितवचनैरुत्थाप्यैत्यन्वयः। (पृ. ४९)

पूर्ण. ने पाचंवे पाठ को देते हुए इस प्रकार व्याख्या दी है धीर अविकृतेन्द्रियेति वचनौचित्यम्। अथवा, धीरस्तनितवचनैः गम्भीरगर्जितरूपैर्वाक्यैः। (पृ. ११५) पाश्र्वाम्युदय में एक अन्य पाठ-धीरस्तनितवचनः है।[१]

आयुष्मन् (९८)

आयुष्मान्

अधिकांश टीकाकारों ने प्रथम पाठ देते हुए इसे मेघ सम्बोधन माना है-

स्थिर.-आयुष्मन्निति मेघ सम्बोधनम् (पृ. ११४)

दक्षि.-आयुष्मन्नित्यनेन त्वयि जीवति साहं च जीवा (व) इत्युक्तम्। (पृ. ६२)

चारि.-हेआयुष्मन् मेघ। ...आयुष्मन्नित्यनेन त्वयि जीवति सा चाहं च जीवाव इत्यसूचि (पृ. ११४)

सुमति.-भो आयुष्मन्। प्रशंसायां मतुप्। परोपकारश्लाध्यजीवतेत्यर्थः। (पृ. १९४)

सारो.-हे आयुष्मन् हे मेघ, परोपकारतया प्रशस्तजीवितो भवान्। (पृ. ११६)

पूर्ण.-आयुष्मन्निति, ईदृशदुःखसागरमग्नजनपरित्राणात् भवत् एव सफलतयाप्रशस्तमायुरिति द्योत्यते। प्रशंसायां मतुप् (पृ. १४९)

भरत.-हे आयुष्मन् दीर्घजीविन्.. वर्त्मविघ्ननिवृत्तयेदीर्घायुष्ट्वाशंसनम्। दीर्घा कनिष्ठभातृत्वसूचनेन वचनकरत्वसूचनार्थे वा। (पृ. ७५-७६)

चरणतीर्थ- परोककारबुद्धया स्वकार्यप्रवृत्तत्वेन तत्र साफल्यार्थं च आशीर्वादत्मकसम्बोधनेन सन्दिशन्नाह। (पृ. ११२)

वल्लभ ने द्वितीय पाठ ग्रहण करते हु आयुष्मान्भवान् ...आयुष्मानितिवचने कर्तृपदं न त्वामन्त्रणम्। ब्रूयादिति प्रथमपुरुषप्रयोगात् (पृ.५२)।

मम च वचनादात्मना चोपकर्तुं (९८)

मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुः

मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं

वचनरचनामात्मनश्चोपकर्तुं

इस स्थल पर पाठ-भेद के साथ-साथ अर्थ में भी अत्यन्त भिन्नता है। स्थिर., वल्लभ., सारो. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ लेते हुए लिखा है-

स्थिर.-मम वचनात् मदीयेन वचसा तथा आत्मना च स्वयंमम तस्याश्च मित्रवध्वा उपकर्तुम् उपकारं कर्तुं (पृ. ११५)।

वल्लभ.-मदीयेन वचसा स्वयं चोपकर्तुं (पृ. ५१)।

सारो.-मम वचनात् मद्वाक्यात् आत्मना च स्वयं मित्रवध्वा उपकर्तुं (पृ. ११६)

चरणतीर्थ-तस्याश्चोपकर्तुं आत्मना स्वयमेव मया यदुक्तं यत्संदिष्टं तत्सर्वं मनसि अवधार्य स्वयं प्रेरणया मम वचनात् मम वाक्येन भवान् एवं ब्रूयात्।

---

१. ed., G.R. Nandargikar (Notes), p. 101.

(पृ.११२)

दक्षि. व पूर्ण. ने द्वितीय पाठ दिया है-

दक्षि.आत्मनश्चोपकर्तुरिति पाठः। उपकर्तुरूपकारिणः। मम वचनाच्चायुष्मन्। उपकारिणस्तव वचनाच्च तामेवं ब्रूया इत्यर्थः (पृ.६२)।

पूर्ण.-मम वचनाच्च मदीयवचनत्वेन चेत्यर्थः। उपकर्तुः ईदृशपरमोपकारकारिणः। आत्मनश्च आत्मशब्देन मेघपरामृश्यते, भवतश्चेत्यर्थः। वचनादित्यनुषज्यते. पाठक्रमादर्थक्रमस्य क्रमो बलीयस्त्वम् इति न्यायात् अर्थानुरोधेन आत्मनो वचनाच्च मम वचनत्वाच्चेति ज्ञेयः। अर्थविवक्षया तु न क्रमभङ्गदोषप्रसङ्गः। (पृ. १४९-५०) मल्लि., भरत. व कृष्ण ने तृतीय पाठ दिया है-

मल्लि.-मम वचनं प्रार्थनावचनं तस्माच्चात्मनः स्वस्योपकर्तुं च। परोपकारेणात्मानं कृतार्थयितुमित्यर्थः। उपकारक्रियां प्रतिकर्मत्वेऽपि तस्यानुकरोतीत्यादिवत्सम्बन्धमात्रविवक्षायामात्मन इति षष्ठी न विरुध्यते। यथाह भारविःसा लक्ष्मीरूपकुरुते यथा परेषाम् इति, तथा श्रीहर्षश्च साधूनामुपकर्तुं लक्ष्मीं द्रष्टुं विहायसा गन्तुम्। न कुतूहलिकस्य मनश्चरितं च महात्मनां श्रोतुम् इति। तथा च क्वचिद् द्वितीयादर्शनात्सर्वस्य तथा इति नाथवचनमनाथवचनमेव। (पृ. ८८)

भरत.-मम च आत्मनश्च, वचनात् वाक्यात्, तां मत्कान्ताम्, उपकर्तुम्,...मम आत्मनश्च वचनादित्यनेन विकलतया यन्मया वक्तुं विस्मृतं तदपि त्वया दृष्टावस्थं वक्तव्यमिति ज्ञापितम्। च-द्वयमुभयप्राधान्यार्थम्। (पृ. ७५-७६)

कृष्ण.-मम वचनात् आत्मनश्चोपकर्तुः। (पृ. ५०)

सुमति. ने चतुर्थ पाठ दिया है -आत्मनः स्वस्य वचनरचनामुपकर्तुमुपकारं कर्तुम्। मम वचनादात्मना वक्तव्यमित्यर्थः। (पृ. १९४)

पूर्वाशास्यं (९८)

पूर्वाभाष्यं

पूर्वभाष्यं

भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत्-

वल्लभ.,- दक्षि., पूर्ण., सना. व कल्याण. ने प्रथम पाठ दिया है-

वल्लभ.-पूर्वाशास्यं प्रथमाकाङ्क्षणीयं यत्स्वास्थ्यं नाम। (पृ.५२)

दक्षि.-पूर्वाशास्यं...प्रथमप्रार्थनीयं। (पृ. ६२)

पूर्ण.- पूर्वाशास्यमिति। प्रथमप्रार्थयम् प्रार्थ्यत्वादिष्टविषये प्रष्टव्यत्वमपि तस्य सिध्यति। (पृ. १५०)

सना.-पूर्वाशास्यं पूर्व प्रथमं आशास्यं आशंसनीयम् यावत्।[१]

स्थिर., सुमति., मल्लि., सारो. व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ दिया है-

स्थिर.-यतः स्पृहणीयेष्वपि पदार्थेषु पूर्वं प्रथमाभाष्यं आशंसनीयं प्राणिनां

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 104.

(पृ.११५)

सुमति.-कुशलप्रश्नमेव पूर्वाभाष्यं प्रथमं पृच्छायोग्यम् । (पृ. १९४)

मल्लि.-कुशलमेव पूर्वाभाष्यमेतदेव प्रथममवश्यं प्रष्टव्यम् (पृ. ८८)

सारो.-एतदेव कुशलमेव पूर्वाभाष्यं प्रथमाशंसनीयम् । प्रथम कुशलमेव प्रष्टव्यमित्यर्थः...पूर्वाशास्यमितिमूलपाठः (पृ. ११६)

चरणतीर्थ-कुशलसमाचार एव पूर्वाभाष्यं प्रथमाख्येयं । (पृ. ११२)

चारि. ने तृतीय पाठ दिया है-

पूर्वभाष्यं प्रथमप्रार्थनीयम् । (पृ. ११४)

भरत. व कृष्ण ने इस श्लोक के चतुर्थ पाद को भूतानां क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत् रूप में ग्रहण करते हुए कहा है-

भरत-भूतानां प्राणिनां हि क्षयिषु नश्वरेषु. करणेषु शरीरेषु, एतत्कुशलम् आद्यं प्रथमम्, आश्वास्यम् आश्वासनीयम् अवधारणीयम्, जीवने सति मङ्गलादिकं सर्व भविष्यतीति भावः, (पृ. ७५-७६)

कृष्ण.-प्राणिनां नश्वरेषु शरीरेषु प्रथममादौ एतदेव कुशलमेवाशास्यम् । (पृ.५०)

तनु च तनुना (९९)

प्रतनु तनुना

सुतनु तनुना

स्थिरि., वल्लभ., दक्षि. व पूर्ण. ने प्रथम पाठ देते हुए च के सम्बन्ध में कहा है-

स्थिर.-चः समुच्चये । (पृ.११६)

वल्लभ.-तनु च तनुनेति चार्थाभावात्प्रतनु, तनुनेति पठनीयम् (पृ.५२)

पूर्ण.-चकारः प्रीतिविशेषणमाख्यातसम्बन्धं कर्तुं प्रयुक्तः । (पृ.६२)

चारि., सारो., सुमति., मल्लि., चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ देते हुए प्रतनु को अत्यधिक कृश अर्थ में दिया है ।

भरत. व कृष्ण ने तृतीय पाठ अपनाते हुए कहा है-

भरत.-सुतनु अतिकृशम्,...केचितु हे सुतनु सुगात्रि विरहेणातिक्षीणे वेति व्याचक्षते, तन्नप्रक्रमभङ्गात् । (पृ. ७६)

कृष्ण.-सुतन्वति कृशम् । निसर्गतोऽपि कृशमेव विरहेत्वतिकृशमित्याशयः । यत्तु सुतनुरित्यामन्त्रणपदं, तन्न, क्रमभङ्गापत्तेः । (पृ. ५०)

उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना (९९)

उष्णोच्छ्वासं समधिकखरोच्छ्वासिना

दीर्घोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना

स्थिर., वल्लभ., चारि., पूर्ण., सुमति., मल्लि., सारो., कृष्ण.व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है । सारो. के शब्दो में-उष्णोच्छ्वासम् । दीर्घोच्छवासमिति पाठे बहुनिश्वासम् । (पृ. ११७)

दक्षि. ने द्वितीय पाठ देते हुए कहा है- समधिकखरोच्छवासिनेति पाठः । खरमुष्णम् । तिग्मं तीव्रं खरं तीक्ष्णं चण्डमुष्णं पटु स्मृतम् इति भट्टहलायुधः ।

उच्छ्वासशब्देन निःश्वासो विवक्षितः। (पृ. ६३)

भरत., रामनाथ, हरगोविन्द व कल्याण ने तृतीय पाठ दिया है। ईश्वरचन्द्र ने भी इसी पाठ को अधिक उपयुक्त मानते हुए लिखा है-अयमेव पाठः समीचीनः। प्रतनु तनुना इत्यादावुभयोरेव पदयोः समानार्थप्रतिपादकतया उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिनेत्यत्रापि तथात्वं युक्तं समधिकतरोच्छ्वासिनेत्यस्य दीर्घनिश्वासिनेर्त्यथः उष्णोच्छ्वासमित्यत्र दीर्घोच्छ्वासमिति पाठे उभयोः समानार्थप्रातिपादकतया संभवति च त्वितरथा।[१]

संकल्पैस्ते (९९)

संकल्पैस्तैः

वल्लभ. पूर्ण., भरत., रामनाथ, हरगोविन्द व कल्याण ने प्रथम पाठ दिया है। पूर्ण. ने तो व्याख्या में कहा है- ते एवं मम प्रियतममाश्लिष्यामीति-तद्यावभावनोपपादितायास्तवेत्यर्थः। (पृ. १५१-१५२)

भरत.-तव सहचरः सङ्कल्पैमांनसकर्मभिर्भावनाभिः, अङ्गेन स्वकीयेन शरीरेण, ते तव अङ्गं शरीरं, विशति प्रविशति (पृ.७६)

स्थिर., दक्षि., चारि., सुमति., मल्लि., सारो., कृष्ण. व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ देते हुए कहा है-

स्थिर.-संकल्पैः चित्रव्यापारैः तैस्तैः तत्कालोत्पन्नैः (पृ. ११५)

सुमति.-तैः संकल्पैः आलिङ्‌ गनचुम्बनादिव्यापारैः (पृ. १९४)

मल्लि.-तैः स्वसंवेधैः संकल्पैः मनोव्यापारैः अथवा तैरितिपूर्वानुभूतैः आलिंगनचुम्बनादिव्यापारैः (पृ. ११३)

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने प्रथम पाठ को उचित मानते हुए कहा है-अयमेवपाठः साधीयान् तैरिति तच्छब्दस्यानुपयोगात्। युष्मच्छब्दप्रयोगाभावे त्वदीयमंगमित्यस्य बोधयितुमशक्यत्वाच्च।[२]

यदपि किल ते (१००)

सभी टीकाकारों ने यही पाठ दिया है। पर ईश्वरचन्द्र जी ने ते की जगह तत् की उपयोगिता बताते हुए कहा है-

अत्र ते इति पदस्य न कश्चिदुपयोगो लक्ष्यते। तदिति पदश्चाध्याहार्यम्। ईदृशश्चाध्याहारः कवेरशक्तिं द्योतयति। एकश्चोपयोगविरहितः प्रयोगः अपरश्चाशक्तिद्योतंको अध्याहार इति दोषद्वयमापतति। ते इत्यत्र तदिति पाठे तु दोषद्वयस्यैव परिहारः स्यात् तस्मात्। शब्दाख्येयं यदपिकिल तद्‌यः सखीनां पुरस्तात्। इत्येवंरूप एव पाठः समीचीनतया प्रतिभाति।[३]

लोचनाभ्यामदृश्यः (१००)

लोचनानामदृश्यः

---

१. ed.G.R. Nandargikar (Notes), p. 105.
२. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 104.
३. वही- पृ. १०६

लोचनानामगम्यः

लोचनाभ्यामदृष्टः

लोचनाभ्यामगम्यः

मल्लि., चारि., सुमति., सारो. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है-

मल्लि.-लोचनाभ्यामदृश्यः । अतिदूरत्वादद्रष्टुं श्रोतुं च न शक्य इति भावः । (पृ.९०)

सुमति.-लोचनाभ्यां नेत्राभ्यामपि अदृश्यः अगम्यः (पृ.१९६)

सारो-लोचनाभ्यामदृश्यः नेत्राभ्यामप्यनवलोकनीयः । एवं नाम दूरं गतो यथा न दृश्यते नापि श्रूयते इति । (पृ.)

चरणतीर्थ-.-लोचनाभ्यामदृश्यः नेत्राभ्याम् अदृश्यः अनवलोकनीयः । (पृ. ११४)

स्थिर. ने पाठ तो द्वितीय दिया है पर व्याख्या में लोचनाभ्यां का प्रयोग किया है-अतएव लोचनाभ्यां अगम्य अदृश्यः चक्षुरग्राह्यः । एवं सत्यं लोकोक्तिरियमेष नाम दूरं गतो यथा न दृश्यते नापि श्रूयते इति । (पृ.११७)

वल्लभ. ने तृतीय पाठ देते हुए कहा है-दूरस्थत्वात् । अतएव लोचनानामगम्यो नैत्रैर्द्रष्टुमशक्यः । (पृ.५३)

दक्षि. व पूर्ण. ने चतुर्थ पाठ दिया (पृ. ५३) है । पूर्ण. के शब्दो में लोचनाभ्यामदृष्टः तथात्वे नयनाभ्यां दर्शनस्य का वार्तापि । (पृ. १५३)

भरत. व कृष्ण ने पंचम पाठ दिया है । व्याख्या में भरत ने लोचनाभ्यामदृश्यः पाठ को स्पष्ट करते हुए कहा है-लोचनाभ्यामगम्योऽप्राप्यः सन् नेत्राविषयः सन् ननु श्रवणविषयमतिक्रान्ता इत्यनेनैवादृश्ययत्वसिद्धेर्लोचनाभ्यामगम्य इति व्यर्थ नच वाच्यमुक्तिपोषालङ्कारसूचकत्वात्. किंवा लोचनाभ्यां वाच्यमुक्तिपोषालङ्कारसूचकत्वात्, लोचनाभ्यामगम्यस्य खः श्रूयते, श्रुतिविषयमतिक्रान्तोऽपि दृश्यते इति द्वयमुक्तम् अतिदूरस्थोऽयमिति भावः । लोचनाभ्यामदृश्य इति पाठे मनसा दर्शनमस्तीति लोकोक्तिरप्येतादृशी(पृ.७६-७७)।

भीरु- (१००)

चण्डि

स्थिर., वल्लभ., समुति., सारो., महिम. व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ दिया है-

वल्लभ.-भीर्वित्यन्वर्थ नाम नारीणाम् । संज्ञापूर्वको विधिरनित्य इति ह्रस्वगुणाभावः । (पृ. ५३)

सारो.-भीरु इति साभिप्राय अन्योऽपि यः किल भीरुको भवति तस्य सम्बन्धिवस्तु क्वचिदेकत्र न इत्युक्तम् प्राप्यत । (पृ.११९)

ध्वन्यालोक में भी भीरु पाठ ग्रहण किया गया है ध्वन्यालोक पर की गई लोचन व्याख्या में अभिनवगुप्त ने भीरु के सम्बन्ध में लिखा है-भीरु इति यो हि कातरहृदयो भवति नासौ सर्वस्वमैकस्थं धारयतीत्यर्थः । [१]

---

१. ध्वन्यालोक, २।३०

वल्लभ. ने पूर्ववर्ती आनन्दवर्धन व अमिनवगुप्त द्वारा ग्राह्य इस भीरु पाठ के आधार पर इसका समर्थन किया है। विष्णुपाद ने भी भीरु को मूलपाठ के अधिक निकट माना है।[१]

दक्षि., चारि., पूर्ण., मल्लि., भरत. व कृष्ण ने द्वितीय पाठ देते हुए कहा है-

दक्षि.-चण्डि। अत्यन्त कोपने अनेनेकत्र सादृश्यं लब्धं चेद् भवति तदेवालं भवति किं मया कार्यमिति मह्यं मा कुप्यइति परिहासाभिप्रायेण प्रयुक्तम्। (पृ.६४)

पूर्ण.- चण्डि कोपने। अनेन एकस्मिन् वस्त्वन्तरे समग्रत्वत्सादृश्यदर्शनमसहमानयास्त्वन्ध्तरेत्वया तंतु बहुषु विभज्य नि-वेशितमिति मयोत्प्रेक्ष्यत इति द्योत्यते।अथवा विभक्तस्यापि तस्य निरीक्षणं त्वया मत्प्राणस्वामिन्या प्रणयप्रभावान्न क्षम्यते, तथापि किं करोमि, सहस्व हंसगामिनि कालविनोदाय क्रियमाणं तदिति व्यज्यते। (पृ. १५५)

मल्लि.-चण्डि कोपने। चण्डस्त्वत्यन्तकोपने इत्यमरः गौरादित्वात् ङीष्। उपमानकथनमात्रेण न कोपितव्यमिति भावः। (पृ. पृ. ९१)

भरत.-चण्डी स्यात् कोपना योषित् तथा सौमाग्यशालिनी ति बलः। चण्डि मानिनीत्यादिसम्वोधनानि सौभाग्यप्रकाशनानि, यथा रघुकाव्ये.करेण वातायनलम्बितेन स्पष्टस्त्वया चण्डि कुतुहलिन्ये ति। तथा, एत-न्मुनेर्मानिनि शातकर्णे रितीति रक्षितादय आलङ्कारिकाः। टीकान्तरे ननु स्वेच्छया यदि दर्शनं न ददाति तदा चण्डीति सम्वोधनं युक्तम्, न चात्र तथा, तत्कथं चण्डीत्युक्म्? उच्यते एकत्र क्वचिदपि त्वया सादृश्यं नारोपितमिति कुपिता सम्भाव्यसे इति चण्डीत्युक्तम्। पूर्वमपि त्वया कोपमात्रेणाकारगुप्तिः कृतेति भावः। (पृ. ७७)

यद्यपि कालिदास ने अपने ग्रन्थो में भीरु[२] चण्डि[३] दोनों विशेषणों का प्रयोग किया है पर यहां चण्डि सम्बोधन ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। यक्ष द्वारा विभिन्न वस्तुओं में यक्षिणी का सादृश्य देखना ही उसके कोप का कारण है।

नन्वात्मानं वहु विगणयन्नात्मना नावलम्वे (१०६)
न त्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मवलम्बे
नत्वात्मानं बहु विगणयन्नात्म नैवावलम्बे
नन्वात्मानं वहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
इत्यात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे

वल्लभ. ने प्रथम पाठ देते हुए लिखा है-नन्वात्मानं बहुविधं विगणयञ्जानन्स्वयमेव नावलम्बे न। अपि त्ववलम्ब एव. नन्वभिमुखीकरेण। (पृ.५५-५६)

---

१. OH. Vol. 6. 1958, p. 39-41
२. रघु., १३।२४
३. वही, १३।२१

दक्षि.व पूर्ण. ने द्वितीय पाठ दिया है-

दक्षि.-तु शब्दोऽवधारणे । बहु विगणयन् बहु भद्रकं भविष्यतीति विजानन्नित्यर्थः । आत्मना स्वयमेव । अवलम्बे धारयामि । बहु विगणयन्नात्मानं स्वदेहं धारयामीत्यर्थः । (पृ.६६)

पूर्ण.-तु शव्दो विशेषे, अतिदुःखितस्य प्राणत्यागेयोग्येऽपीत्यर्थः । आत्मनं जीवं देहं वा । आत्मा जीवे धृतौ देहे इति वैजयन्ती । बहु विगणयन् त्वया परिभोक्ष्यमाणमनेकमभिलाष विषयं विचिन्तयन्निति हेतुः । आत्ला धृत्या, अथ वा, धैर्याबलम्बिना स्वेनैब समाश्वासयितन्तराभावात् न नावलम्बे निपातान्निवारयाम्येव (पृ. १६२)

मल्लि. ने पाठ तो तृतीय दिया है । पर न तु के साथ ननु पाठ को भी स्पष्ट किया है । न त्विति । नत्वित्येकं वाक्यं । तु शव्दो भेदकः । किं तु न भेतव्यमित्यर्थः । अथवा नन्विति पाठः । नन्वित्यामन्त्रणे । प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु इत्यमरः । ननु प्रिये बहु विगणयन्शापान्ते सत्येवमेवं करिष्यामीत्यावर्तयन्नात्मानमात्मनेव प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम् इति तृतीया । अवलम्बे धारयामि । (पृ.९४)

स्थिर., भरत. वं कृष्ण ने चतुर्थ पाठ देते हुए लिखा है-

स्थिर. ननु अभिमुखीकरणे । अहमात्मानं बहु यथा भवति एवं विगणयन् पर्यालोचयन् आत्मनेव स्वयमेव अवलम्बे धारयामि । (पृ. १२२)

भरत.- ननु कल्याणि अयि मङ्गललक्षणोपेते, बहु विगणय विचारयन्नहम् आत्मनैव न पुनन्येन, आत्मानं अवलम्बे स्तभ्नामि...नन्विति सानुनय सम्वोधने । विगणयन्नात्मनेव इत्यत्र अचि नस्य द्वित्वम् । न त्वात्मानमिति पाठे तु पुनरर्थे । अहं पुनर्बहुविगणयन् आत्मनेवात्मानं न अवलम्बे अपितु अवलम्बे एवेत्यर्थः । इत्यात्मानमिति पाठे कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमे कान्ततोर्वेति हेतोरात्मनेवात्मानमवलम्बे । (पृ. ८०)

इस प्रकार भरत. ने ननुनतु व इति तीनो पाठों को स्पष्ट किया है ।

कृष्ण.-हे कल्याणि अहमात्मानं नावलम्बे अपित्ववलम्बे (पृ. ५३)

सारो., सुमति. व चरणतीर्थ ने पंचम पाठ देते हुए कहा है-

सारो.-अहमात्मानमत्मनैव अवलम्बे धारयामि...नन्वात्मानमिति पाठे नन्वभिमुखीकरणे कोमलामन्त्रेण वा (पृ. १२३-१२४)

सुमति.- हे प्रिये इति कृत्वा आत्मानं देहमात्मना देहेनैव अवलम्बे धारयामि । (पृ. २०१)

चरणतीर्थ- इति एवं प्रकारेण आश्वासनेन बहु यथा स्यात्तथा विगणयन् विचारयन् आत्मानं हृदयं आत्मना एव मनसा एव अवलम्बे धारयामि । (पृ. १२०)

चतुरे (१०७)

सभी टीकाकारों ने चतुरो पाठ देकर अन्य चार मासों बिताकर भाव लिया

है। कृष्णपति ने दो अन्य सम्भाननाएं भी दी हैं- चतुरे इत्यादि मंत्रणपदम्। एतदपि हेयं पाठकल्पनादोषात्। कश्चितु शापान्तः कीदृशश्चतुरो मनोहर इति व्याख्यातवान्। (पृ.४)

पर चतुरे पाठ एवं उपरोक्त अर्थ अन्य टीकाओं में दृष्टिगत नहीं होते।[१] रामगोपाल मिश्र ने यहां चतुरे पाठ मानकर इसे यक्षिणी का सम्बोधन कहा है। सन्दर्भ को देखते हुए यह भाव यहां उचित प्रतीत नहीं होता यक्षिणी ने आठ मास व्यतीत कर लिये हैं उसके लिए शेष मास व्यतीत करना किस चतुरता का द्योतक है यह कल्पना से परे है। कालिदास के काव्यो में कहीं पर भी चतुरे सम्बोधन दृष्टिगत नहीं होता। और वैसे भी कवि ने अन्य स्थलों पर स्त्रियों की चतुरता को अवगुण रूप में ही चित्रित किया है[२] अतः वे ऐसे सम्बोधन को यक्ष मुख से यक्षिणी के लिए कैसे प्रयुक्त करवा सकते हैं। यहां चतुरो पाठ ही उपयुक्त है।

विरहगुणितं (१०७)

विरहगणितं

विरहजनितं

वल्लभ., स्थिर., सुमति., पूर्ण., सारो. व भरत. ने प्रथम पाठ दिया है-

वल्लभ.-चिरकालगुणितं तीक्ष्णं (पृ.५६)।

स्थिर.-विरहगणितं वियोगाभ्यस्तं (पृ.१२४)।

सुमति.-विरहेण गुणितं प्रवृद्धं (पृ. २०२)।

पूर्ण.-विरहगुणितं वियोगेन बहुमुखीकृतम् भोगैरपूर्यमाणत्वात्, अभिमतविषयाभिलाषे च वर्धिष्णुत्वात्तृष्णायाः (पृ. १६६)।

सारो.-विरहगुणितं वियोगाभ्यस्तं गुणकारेण संख्याविषयीकृतम्। विरहजनितमिति पाठे विरहे चित्ताभिप्रायेण विषयीकृतम्। (पृ. १२५)।

भरत.-विरहे विच्छेदे गुणितं एवं कृत्वा कर्तव्यमिति बहुशश्चिन्ततम्, द्विगुणीकृतं वा तम् (पृ.८१)।

दक्षि.-चारि., मल्लि. व चरणतीर्थ ने द्वितीय पाठ दिया है-

दक्षि.-विरहगणितमिति पाठः। विरहकाले पश्चादेवमनुभविष्याव इति गणितं सङ्कल्पितम्। आत्माभिलाषं गणयित्वा हृदये निहितमित्यर्थः (पृ.६७)।

चारि.-विरहकालगणितं सङ्कल्पितम् हृदयस्थापितम्। (पृ. १२२)।

मल्लि.-विरहे गणितमेवमेवं करिष्यामिति मनस्यावर्तितम् (पृ. ९५)।

चरणतीर्थ-विरहगणितं विरहकाले संकल्पितं (पृ. १२२)।

कृष्ण. ने तृतीय पाठ दिया है।

---

१. मेघदूत की एक प्रमुख समस्या और समाधान SPAIOC, UJAIN 1972, p. 185.

२. स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः। प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजातमन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति॥ अभि. शा.: ५।२२

भूयश्चाह त्वमसि (१०८)

भूयश्चाह त्वमपि

भूयश्चापि त्वमसि

भूयश्चाहं त्वमपि

दक्षि. व पूर्ण. ने प्रथम पाठ देते हुए लिखा है-

दक्षि.-भूयश्चाह इति पाठः। भूयश्चाह पुनरपि मन्मुखेनाहेत्यर्थः। मन्मुखेनेदमाह इत्युक्तत्वात् त्वमसीति पाठः। (पृ. ६८)।

पूर्ण.- भूयश्च एवं सन्देशमुक्त्वा पुनरपीति पूर्वोक्तसमुच्चये (पृ. १६७)।

वल्लभ., स्थिर., चारि., सुमति., मल्लि व सारो. ने द्वितीय पाठ दिया है-

वल्लभ.-स त्वत्प्रिय एतदुक्त्वा पुनरपि, त्वामिदमाह। (पृ. ५६)

स्थिर.-स तव प्रियः प्रत्याययितुं भूयः पुनरपि इदमाह। पुरा पूर्वं अहं त्वमपि तल्पे शयने सुप्तौ। (पृ.१२४)

चारि.-भूयश्चाह पुनरपि मन्मुखेन व्याचष्टे। पुरा पूर्वमहं त्वमपि शयने सुप्तौ। (पृ.१२३)

सुमति.-यक्षः च पुनः भूयः पुनरपि त्वां प्रतीस्थमाह। हे प्रिये शयने शय्यायां पुरा पूर्वमहं कण्ठलग्नः तथा त्वमपि मे मम कण्ठलग्ना सती (पृ २०३)

मल्लि.-भूयः पुनरप्याह-शयने मे कण्ठलग्नापि त्वम् गले वद्धस्य गमनं न संभवेदिति भावः। (पृ. ९६)

सारो.-ते तव भर्ता सन्दिशन् भूयः पुनरपि आह ब्रूते। भूय इति पूर्वक्रियानुसन्धानम्। हे कल्याणि, त्वम् अपिशव्दबलात् अहमपि पुरा पूर्व शयने सुप्तौ (पृ. १२५) भरत. व कृष्ण. ने तृतीय पाठ दिया है। भरत. के शब्दो में अपि एवं सम्भाव्यते भूयश्च पुनश्च, शयने शय्यायां कण्ठलग्ना सती.. .भूय इत्यव्ययं पुनरर्थे, भूयो भूयिष्ठमत्यर्थमिति यावदित्यन्ये। च-शव्दःपूर्वसंयोगकालापेक्षया समुच्चये, अपि-शव्दः सम्भावनायाम्। अन्ये तु भूयश्च पुनश्च श्रृणु, स तव भर्ता एवमाहेति सम्बन्धनीयम् पुरा पूर्वसमये, मम त्वं तमात्माभिलाषं निर्वेक्ष्याव इत्युक्त्वात् कण्ठलग्ना पुनरपि भविष्यसीति पौनरुक्त्यं स्यात् आश्वासनें पुनरुक्तिदोषो नास्त्येव, तथा च आश्वासने च हर्षे पुनरुक्तं न दुष्यतीति। (पृ.८१-८२)

चरणतीर्थ ने चतुर्थ पाठ दिया है।

ईश्वरचन्द्र जी अपि पाठ की व्यर्थता को बताते हुए यहां अयि पाठ की कल्पना करते हैं और उनके शब्दो में अपि शब्दस्यात्र न कश्चिदुपयोगोलक्ष्यते तस्मात् त्वमपि इत्यपि शव्दवान् पाठः प्रामादिक एव, त्वमयि इति कवेरभिमतः पाठ इति प्रतिभाति। अयि इति यक्षस्य स्वपत्नी सम्बोधनम्।[१]

स्नेहानाहुः किमपि विरहह्रासिनस्तेह्यभोगात् (१०९)

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगात्

---

१. सं.सा. परि., १५,१६, १९३२-३४, पृ. १४०

स्नेहानाहुः किमपि विरहेह्रासिनस्ते ह्यभोगात्
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते ह्यभोगात्
स्नेहानाहुः किमपि विरहव्यापदस्ते ह्यभोगात्

वल्लभ. ने प्रथम पाठ देते हुए लिखा है-किमपि कुतोऽपि हेतोःस्नेहान्विरहह्रासिनो वियोगे तनूभवतोः जना आहुः । यथा प्रीतिः प्रवासाभयादिति । एतच्चायुक्तम् । यस्मात्ते स्नेहा अभोगाद्हेतोः । (पृ. ५७)

मल्लि.ने द्वितीय पाठ देते हुए कहा है- किंचिन्निमितं न विद्यत इति शेषः । स्नेहान्प्रीतिर्विरहे सत्यन्योन्यविप्रकर्षे सति ध्वंसिनो विनश्वरानाहुः । ततथा न भवतीत्यमिप्रायः । किन्तु ते स्नेहा अभोगाद्विरहे भोगाभावार्द्धेतोः । (पृ. ९७)

स्थिर., दक्षि., व पूर्ण ने तृतीय पाठ देते हुए कहा है ।

स्थिर.-स्नेहान्प्रणयान् आहुः ब्रुवते विरहे वियोगे सति ह्रासिनः क्षयिणः तथा चोक्तम् । दुर्मन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति ..स्नेहः प्रवासाश्रयात् । . ..तच्च किमपि यत्किचित् अविचारितरमणीयमित्यर्थः । (पृ. १२५)

दक्षि.-स्नेहान् विरहे ह्रासिन इत्याहुः । तत् किं किञ्चिददतितुच्छमित्यर्थ । प्रत्युत स्नेहा विरहे वर्धन्ते इति । (पृ. ६८)

पूर्ण.-किमपि ह्रासिनः पूर्वावस्थातः किंचिदपक्षययुक्तान् । ह्रासिन इत्याहुरित्यन्वयः । ते स्नेहाः । हिस्त्वर्थे, ते तु तथा न नियता इत्यर्थः । (पृ. १६९)

सुमति, सारो., व चरणतीर्थ ने चतुर्थ पाठ देते हुए लिखा है-

सुमति.-जनाः स्नेहान्स्नेहयुक्तान्न रान्ध्वंमिनः मृत्युमापन्नामाहुः वदन्ति स्म । क्व सति ? स्तोकमात्रमपि विरहे वियोगजाते सति । कुतः? अभोगात् अनमिलनात (पृ.२०३-२०४)

सारो.-स्नेहान् ध्वंसिन आहुः विनाशिनो ब्रुवते हसितो जल्यन्ति । कथं किमपि अविचारितरमणीयं यथा भवति । क्व सति ? विरहे वियोगे सति । तथा चोक्तम् दुर्भन्त्रान्नृपतिर्विनश्यति...स्नेंहः प्रवासाश्रयात्... हिं यस्यामात् कारणात् (पृ.१२६)

चरणतीर्थ-विरहे परस्परवियोगे सति स्नेहान् ध्वंसिनः विनाशकारिणः प्राहुः कथयन्ति यत् किमपि दृष्टान्तेषु सत्यं चेत् तथापि बहुधा तु ते स्नेहाः हि इति निश्चयेन । (पृ. १२३)

भरत. व कृष्ण ने पंचम पाठ दिया है। भरत के शब्दो में स्नेहान् प्रेमाणि किमपि अनिर्वचनीयस्वरूपान् आहुर्वदन्ति लोका इत्यर्थात्, नान्यान् अनिर्वचनीयान् वदन्ति । कुत इत्याह, कीदृशान्स्नेहान् ? विरहे विच्छेदेऽपि विगता आपद्विपत्तिर्येषां तादृशान्,...केचितु विरह एव व्यापद्विपत्तियेषां ते स्नेहा अभोग्याःसन्तः प्रेमराशीभवन्तीत्याहु...केचितु विरह व्यापद् यस्य तस्य जनस्य, ते स्नेहा इति व्याचक्षते । किचितु विरह व्यापद् विपत्तियेषां जनानां ते जना विरहिणः, स्नेहान् किमपि आहुर्वर्णयन्ति (पृ.८२)

प्रत्याख्यातुं न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि . (११०)

प्रत्याख्यातुं न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि

प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि

प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि

प्रत्याख्यातुं न खलु भवतोऽधीरतां कल्पयामि

बल्लभ., सारो., व चरणतीर्थ ने प्रथम पाठ देते हुए लिखा है–

वल्लभ.–प्रत्याख्यातुमत्र तव धैर्यं न लक्षयामि (पृ.५७–५८)

सारो.–अहं खलु निश्चयेन भक्तस्तव धीरतां निर्वचनतां तूष्णीम्भावं प्रत्याख्यातुं निराकर्तुं न तर्कयामि न सम्भावयामि न विचारयामीति यावत् । (पृ. १२८)

चरणतीर्थ – भक्तः तव धीरतां निर्वचनतां प्रत्याख्यातुं निराकर्तु न करिष्यामीति वक्तुं खलु अवश्यं न तर्कयामि न कल्पयामि । अथवा भवतः धीरतां निर्वचनतां प्रत्याख्यातुं प्रत्युत्तरयितुं न कल्पयामि नाशासे । विना तव प्रतिवचने उत्तरेणापि त्वया मित्रस्य मम कार्य स्वीकृतमिति मन्ये । (पृ.१२५)

स्थिर. ने द्वितीय पाठ देते हुए लिखा है–प्रत्याख्यातुं निराकर्तुं धीरतां तूष्णीभावं भवतः तव खलु स्फुटं न कल्पयामि (समर्थितमेव तदैव) (पृ. १२७)

भरत., हरगोविन्द व कृष्ण ने तृतीय पाठ दिया है–

भरत.–प्रत्यादेशात् निःशब्दोऽपीति वक्ष्यमाणत्वेन प्रत्युत्तरस्य निराकरणात् अकथनात् भवतो धीरतां धैर्यम् अतारल्यं, न खलु तर्कयामि उत्प्रेक्षे, अपितु तर्कयाम्येव । खलु निषेधे, द्वौ निषेधौ प्रकृतमर्थमवगमयत इति वृद्धाः ।... अप्रत्यादेशात् धीरतां शिथिलताम् अधीरतां अपाण्डित्यं वा न खलु तर्कयामीति च केचित् । प्रत्यादशादित्यत्रे प्रत्याख्यानादिति क्वचित् पाठः । अर्थः स एव । (पृ.८३)

हरगोविन्द–प्रत्यादेशात् अनिराकरणात् करिष्यामीत्यवचनात् हेतोः भवतो धीरताम् अवाचालतां तर्कयामि ।[१]

कृष्ण.–प्रत्यादेशात् प्रत्युत्तरदानात्ते धीरतां न तर्कयामि । (पृ. ५४)

दक्षि.–व मल्लि. ने चतुर्थ पाठ देते हुए लिखा है–

दक्षि.–आदेशो वचनं प्रत्यादेशः प्रतिवचनम् इत्युत्तरं विनापि भवतो धीरतां कल्पयामीत्यभिप्रायः । यद्यपि प्रत्यादेश शब्दः प्रत्याख्यानवचनः, तथाप्यत्र प्रतिवचनवाचको भवति प्रत्युक्तमिति वक्ष्यमाणत्वात् । (पृ. ६९)

मल्लि.–प्रत्यादेशात्करिष्यामीति प्रतिवचनात् उक्तिराभाषणं वाक्यमादेशो वचनं वचः इति शब्दार्णवे भवतस्तवधीरतां गम्भीरत्वं न कल्पयामि न समर्थये। खलु । (पृ .९९)

सुमति. ने पंचम पाठ देते हुए लिखा है–खलु निश्चयेनभो सौम्य भवतः तव स्वजनकार्य प्रत्याख्यातुं निराकर्तुं दूरीकर्तुमधीरतामसामर्थ्यं न कल्पयामि विचारयामि

१. सं.सा.परि. १५,१६, १९३२–३४, पृ. १४१

किन्तु सामर्थ्यं विचारयामि । (पृ. २०६)

ईश्वरचन्द्र जी ने यहां प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि पाठ को अनुचित कह प्रत्यादेशन्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि पाठ देते हुए लिखा है-

लिपिकर प्रमादवशादापतितं पाठवैकल्पमनुद्भाव्याश्लोकपादस्यास्य व्याख्यातत्वान्मल्लिनाथादीनां व्याख्यानादर्थग्रहस्तात्पर्यावगमो वा नोपपद्यते...वस्तुतस्तु प्रत्यादेशान्न खल्वित्यत्र तालव्यशकारात्परमाकारपातः प्रामादिकः तत्परित्यागे तु सर्वमनाकुलं स्यात् । यथा- प्रत्यादेशन्न खलु भवतो धीरतां तर्कयामि । भवतो धीरतां गम्भीरत्वं तूष्णीभावमिति यावत् प्रत्यादेशं प्रत्याख्यानं न तर्कयामि न समर्थये खलु तवायं तूष्णी भावो न प्रत्यादेशद्योतकः इति भावः ।[१]

इनके अतिरिक्त भी मेघदूत में यथा स्थान अनेक पाठ दृष्टिगत होते हैं । जिन्हे परिशिष्ट में दी गई पाठ-भेद तालिका में स्पष्ट कर दिया है ।

---

१. ed. G. R. Nandargikar (Notes), P. 112-113.

पंचम अध्याय

मेघदूत में वर्णित भौगोलिक स्थल

मेघदूत के पूर्वार्द्ध में कवि ने यक्ष मुख से मेघ को अलकापुरी के मार्ग का बोध कराते हुए अनेक भौगोलिक स्थलों का वर्णन किया है। टीकाकारों ने उन स्थलों की किस रूप में विवेचना की है। एवं आधुनिक अन्वेषणकर्त्ताओं ने अनुसन्धान के आधार पर उनका निर्धारण किस-किस रूप में किया है ,उसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। मेघदूत में जिस क्रम से उन स्थलों का वर्णन है उसी क्रमानुसार वे स्थल यहां लिए गए हैं-

रामगिरि (१)

इस स्थल के सम्बन्ध में टीकाकारों के मत इस प्रकार है-

स्थिर.-रामगिरिर्दण्डकान्तः प्रसिद्धः (पृ. ३)

वल्लभ.- रामगिर्य्याश्रमेषु चित्रकूटाचलतपोवनेषु रामगिरिरत्र चित्रकूटः न तु ऋष्यमूकः तत्र सीतायाः वासाभावात् (पृ. २)।

दक्षि.-रामनाम्नः पर्वतस्य (पृ.१)

चारि.- रामेण दशरथिनोपलक्षितो गिरिः चित्रकूटः पर्वतः (पृ. २)

मल्लि.-रामगिरेः चित्रकूटस्य (पृ. २)

पूर्ण.-रामगिर्य्याश्रमेषु, रामेण चिरमध्युषितत्वात्तेनेव नाम्ना प्रसिद्धो गिरिः चित्रकूट इति केचित् अन्य कश्चिदित्यन्ये। (पृ. ६)

सारो.-रामगिरिर्दण्डकारण्ये प्रसिद्धः [१]

सना.-रामेणोपलिक्षितो गिरिः। रामगिरिः। चित्रकूट इति कश्चित्, तन्न उत्तरश्लोकविरोधात् तेनरामगिरिर्माल्यवानेव अतएवोत्तरश्लोके सानुमांश्चित्रकूट इति (पृ.२)।

सुमति.-रामगिर्याश्रमेषु चित्रकूटरामगिरितपोवनेषु (पृ. ९४)। [२]

महिम.-रामगिरिः तत्रस्थाश्रमवनेषु चित्रकूटपर्वतपोवनेषु।

लक्ष्मीनिवास-रामगिरिः दण्डकारण्यं तस्य आश्रमाः रामगिर्याश्रमः। [३]

भरत.-रामगिर्याश्रममेषु रामेण रघुनाथेनोपलिक्षितो गिरिः स्वनामप्रसिद्धः रामगिरिः चित्रकूटस्य नातिविप्रकृष्टो दक्षिणस्यां दिशि प्रत्यन्तपर्वतो रामगिरित्येव नाम्ना प्रसिद्धः। [४]

कृष्ण.-रामस्य गिरिः रामगिरिः, रामेणोपलक्षितमिति वा। स तु माल्यावानिति

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 3.
२. Fresh light on Kalidasa's Meghduta, p. 56.
३. वही
४. इन्होने अपनी व्याख्या में चित्रकूट व माल्यवान् मत का भी खण्डन किया है। भरत. पृ. २-३

दिवाकरः । विरहिणा रामेणात्रैव स्थितं, तस्य पुनः प्रियाप्तिर्जाता ममापि तद्भविष्यतीति माल्यवति निवासबीजम्। अत्र यत् शाश्वतेन माल्यवति कदा विरहिणा रामेण स्थितं कुतः प्रियाप्तिर्जाता लघूपहासो दिवाकरस्य कृतस्तत् स्वोपहासायैव, किष्किन्धाकाण्डौ तथा दर्शनात् (पृ. २) ।

चरणतीर्थ–प्रायः द्वादशवर्षपर्यन्तं पंचवट्यां निवासेन तन्निकटवर्तिनो ये गिरयः पर्वताः रामनाम्ना प्रसिद्धिं गताः रामगिरयः...पूर्वमत्र गोदावरीतटवर्त्तिषु विविधगिरिमालासु स्थितं कृतवता प्रियावियुक्तेन रामेण एकवर्षेण प्रिया सीता प्राप्ता इति हेतोः लक्ष्यीकृतः यक्षोपि गोदावरीटतनिकटवर्तिष्वाश्रमेषूटजेषु एकवर्षान्तरं स्वप्रियाप्राप्त्युत्सुकः निवासं चक्रे। टीकाकारमतानुसारं यक्षस्य चित्रकूटे निवासो न प्रयुज्यते.. चित्रकूट निवासान्तरं तु द्वादशवर्षेषु व्यतीतेषु सीतावियोगः पंचवट्यामासीत् (पृ. १–२) ।

शाश्वत की प्रथम श्लोक की व्याख्या से उनके मत का निर्धारण नहीं हो पाता पर त्वय्यायत्तं कृषिफलम्...[१] श्लोक की व्याख्या में वे लिखते हैं–चित्रकूटात् प्रथममिदं मार्गाख्यानम् (पृ. ३५–३६) जिससे यह स्पष्ट है कि वे रामगिरि को चित्रकूट मानते हैं

टीकाकारों द्वारा केवल चित्रकूट अथवा माल्यवान् कह देने मात्र से उस पर्वति की स्थिति पर पूरा प्रकाश नहीं पड़ता ।

सीताराम चतुर्वेदी ने रामगिरि को चित्रकूट मानते हुए लिखा है कि राम वनवास काल में केवल चित्रकूट पर रहे थे जहां उन्होने आश्रम बनाये । वहां पर कुटज के पुष्प अभी भी पाये जाते हैं । और वहां सीता के स्नान से सम्बन्धित अनेक स्थल भी हैं ।[२]

आधुनिक अन्वेषणकर्तताओं ने रामगिरि की स्थिति के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में अनुसन्धान कार्य किया है, उसको दृष्टिगत रखते हुए प्रमुख रूप से दो पक्ष समक्ष उपस्थित होते हैं–

(क) मध्यप्रदेश की (सरगूजा रियासत) रामगढ़ पहाड़ियों में रामगिरि की स्थिति ।[३]

(ख) नागपुर के समीप स्थित रामटेक पहाड़ी ही रामगिरि है ।[४]

यह तो निश्चित है कि रामगिरि कोई ऐसा स्थल होना चाहिए जहां यह विशेषताएं पाई जाती हों–

---

१. मेघ. – १६
२. कालिदास ग्रन्थावली (समीक्षा निबन्ध), पृ. ७६
३. (क) Modern Review-Oct. 1915, p. 379-386.
(ख) Fresh light on Kalidasa,s Meghduta, Ch. III.
४. (क) कालिदास–वासुदेव विष्णु भिराशी, पृ.११०–११
(ख) The Meghduta Or Cloud Messenger-ed, H.H. wilson 1973, p. i

जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु(१)

स्निग्धच्छायातरुषु(१)

स प्रत्यग्रैः कुटुजकुसुमैः (४)

तुङ्गमालिङ्ग्य शैलं (१२)

रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु (१२)

स्थानादस्मात्सरसनिचुलात् (१४)

धातुरागैर्शिलायाम् (१०२)

वी.के. पराजंपे ने ये विशेषताएं रामगढ़ पहाड़ी पर सिद्ध की हैं। इस पहाड़ी पर स्थित सीताबेंगरा गुफाओं में जो पदचिह्न प्राप्त हुए हैं, उन्हे राम के पद-चिह्न कहा है।

इन्ही के मत का समर्थन करते हुए श्री एम. वेकटरमैय्या ने दो प्रमाणों को विशेप रूप से दिया है-

(क) मेघदूत में अङ्कितम् पद का प्रयोग है और सीतावेंगरा की गुफाओं में जो पदचिह्न प्राप्त हुए हैं, वे राम के पदचिह्न हैं।

(ख) मेघदूत में वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं कहा गया है दूर से देखने पर रामगढ़ की पहाड़ी भी ऐसी ही प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त उन्होने जोगीमारा एवं सीताबेंगरा गुफाओं के कई चित्र देते हुए वहां प्राप्त अनेक चिह्नो से राम सीता का सम्बन्ध द्योतित किया है। उन गुफाओं के शिलालेखों में जो प्रणय सम्वन्धी गीत उत्कीर्ण हैं वे इस बात के सूचक हैं कि कालिदास को इन्ही गीतों ने यक्ष-यक्षिणी की प्रणय कथा लिखने को प्रेरित किया होगा।[१] कुछ अन्य विद्वान भी इसी मत के समर्थकों में से हैं।[२]

वासुदेव विष्णु मिराशी द्वितीय मत के पोषक हैं। उन्होने अपने अनेक अंग्रेजी हिन्दी व मराठी लेखों में रामटेक को ही रामगिरि कहा है।[३] उनके मत में यदि रामगढ़ को रामगिरि मानते हैं तो रामगढ नर्मदा के दक्षिण में न होकर उत्तरपूर्व में

---

१ Ramgiri of Kalidas, JIH. Vol. 41 1963, p. 69-92.

२. (क) Har Prasad Sastri, the identity of Ramgiri, proc. ASB, 1901-02, p. 90-91
(ख) ed. K.B. Pathak, p. 116.
(ग) प्रभाकरनारायण कवेठकर, मेघदूत में रामगिरि, भारती पत्रिका, वाल्यूम-४, १९६०-६१, पृ. १०-१४

३. (क) Ramgiri of Kalidas, NUJ.Vol.IX, Dec. 1943, p. 1-8.
(ख) Meghdutantila ramgiri, (Marathi) Sahayadri (Marathi Journal), Vol. X, No. 4, 1944, p. 221-226.
(ग) मघदूत में रामगिरि विक्रम स्मृति ग्रन्थ, सम्वत् २००१, पृ. ३४९-५९
(घ) Ramagiri of Kalidas, JIH, Vol. 42, Pt. I, Apr. 1964, p. 131-143.
(ङ) मेघदूत का रामगिरि परिपद्-पत्रिका वाल्यूम ५२, शक् १८८३, नं. १-२, पृ. ३-७

पड़ता है और यहां से यदि मेघ प्रस्थान करता है तो उत्तर में जाते हुए मेघ मार्ग में नर्मदा नहीं पड़ेगी। अतः नागपुर से २६ मील दूर रामटेक ही रामगिरि है। रामगिरि से सम्बन्धित सभी विशेषताएं आज भी रामटेक में दृष्टिगत होती हैं। यह एक पवित्र स्थल माना जाता है, यहां एक छोटा सरोवर है जहां सीता ने स्नान किया था, घने छायादार वृक्ष हैं। यद्यपि बहुत से वृक्षों को काट दिया गया है तब भी उसके आसपास सघन जंगल हैं, वहां की चट्टानें लालिमा लिए हुए हैं। इन विशेषताओं के अतिरिक्त मिराशी ने एक यादव शिलाखे का रामटेक में उल्लेख किया है जिसमे रामटेक पर अनेक तीर्थस्थलों के वर्णन के साथ-साथ रामगिरि नाम का भी उल्लेख है।[१]

हीरालाल ने भी रामटेक का समर्थन करते हुए कहा है कि लंका जाते समय राम कुछ समय तक वहां रहे थे और राजा बनने के पश्चात् शम्बूक वधार्थ उन्होने पुनः इस स्थल का दर्शन किया था। इस स्थान का दूसरा नाम सिन्दूरगिरि है वहां की लाल चट्टानें इस बात की पोषक हैं कि धातुरागैर्शिलायाम् के द्वारा कवि ने उन्ही चट्टानों का उल्लेख किया है। वहां राम-सम्बन्धी अनेक मन्दिर भी पाये जाते हैं।[२] अधिकांश विद्वानों ने रामटेक मत का ही समर्थन किया है।[३]

माल (१६)-इस स्थल के सन्दर्भ में टीकाकारों के मत प्रस्तुत हैं-

स्थिर-मालं पाश्चात्यसीमान्तं दक्षिणाश्रितमारुह्य (पृ. २२)।

वल्लभ.-मालमुद्धारक्षेत्रं...मालं हि दक्षिणाशास्थं तेन च उत्तराशा गन्तव्या (पृ. ११)।

दक्षि.- मालं पर्वतप्रायमुन्नतस्थलम्। तथोत्पलमालायां-
मेघमन्मथयोर्मारो मारं मरणमिष्यते।
माला पुष्पादिबन्धे स्यान्मालमुन्नतभूतलम्। इति
मालयोगान्मालव इत प्रसिद्धो देशः। (पृ. १४)

चारि.-मालमुन्नतस्थलमारुह्य (पृ. २१)

मल्लि.-मालं मालाख्यं क्षेत्रं शैलप्रायमुन्नतस्थलम्
मालमुन्नतभूतलम् इत्युत्पलमालायाम् (पृ. १४)

---

१. Ramgiri of kalidas JIH, vol. 42, Pt. 1, Apr. 1964
आस्ते धर्मेश्वरो नित्यं स रामस्य गिराविह।
पीडितं कलिना धर्म यः कृपालुरपालयत्॥

२. A Visit to Ramtekd. IA, Vol. xxxii, p. 202.

३. (क) Meghduta, ed. V.G. Paranjpe, p. 140.
(ख) Geographical Aspect of Kalidasa,s works, B.C. Law,1964, p. 28.
(ग) Meghduta, ed. Vasant Ramchandra Nerurker, p.81.
(घ) Meghduta of Kalidas,ed. J.B. Chaudhry, 1951 (Intro), p.34.
(ड) हिन्दी मेघदूत-विमर्श, कन्हैय्यालाला पोद्दार, पृ. ४
(च) मेघदूत एक अध्ययन-वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ. २२३

पूर्ण.-मालमिति नाम्ना प्रसिद्धम् मेघमन्मथोर्मारो मारं मरणमिष्यते । मालापुष्पादिं बन्धे स्यान्मालमुन्नतभूतलम् इत्युत्पलमाला । मालयोगान्मालव इति हि देशः प्रसिद्धः (पृ. ३१)

शाश्वत-अस्मदभिमते तु मालशब्देन पर्वतनितम्बक्षेत्रम् अभिधातव्यम् । मालानामिदं मालम् धरह इति यस्य प्रसिद्धिः । चित्रकूटात् प्रथमिदंमार्गाख्यानम् अतश्चित्रकूटकटकक्षेत्रमारुह्य गच्छेत्यर्थः यथोक्तमुत्पलमालायां मालस्तु गिरिसीम्नि स्यात् सीमक्षेत्रेऽपि दृश्यते इति (पृ.३५ ३६) ।

सारो.-मालं क्षेत्रसमूहं । मालाख्यं देशं वा । वनभूमिं वा ।[१]

सना.-मालं क्षेत्रं मालनामा जनपदस्तस्य इदं माले क्षेत्रं आरूह्य ... मालन्तु गिरिसीमायां मालं क्षेत्रेऽपि शस्यते (पृ. ३५)।

सुमति.-मालं मालाख्यं देशं...मालमिति मालं देशे वनेऽप्युक्तं मालं ग्रामान्तराटवी मालं मालव वसतेरुर्ध्वभूमिका इति वचनात् । (पृ.१०८)

भरत.-मालं मालनामदेशसम्बन्धि क्षेत्रं केदारं पर्वतसीमानं वा...मालानां पर्वतीयजनपदानामिदं मालं इदमर्थेष्णः (पृ. १८) ।

कृष्ण-मालं देशभेदं क्षेत्रभेदं वा गिरिसीमानं वा आरुह्य (पृ. १३)।

लक्ष्मीनिवास-मालं ग्रामान्तराटवी ।[२]

मेघलता-मालं ग्रामान्तराटवी । मालामिधानं देशमारुह्य ।[३]

अवचूरी-मालं वनभूमिं[४]

चरणतीर्थ-मालं क्षेत्रस्य उच्चप्रदेशं ढोरो इति लौकिके तं आरुह्य... मालं क्षेत्राणां यः उच्चप्रदेशः ढोरो नामाख्यातभागः (पृ.१८)।

संक्षेप में टीकाकारों ने माल को उन्नतभूतल, क्षेत्र, जनपद , देश, वनभूमि, ग्रामान्तराटवी आदि अनेक रूपों में कहा है । श्लोक में कवि ने क्षेत्रमारुह्य कहा है जिससे यह स्पष्ट है कि यह अवश्य ही कोई उन्नत स्थल रहा होगा ।

स्थिर. (पृ. २२) एवं वल्लभ. (पृ. ११) ने इसकी स्थिति दक्षिण में कही है । आधुनिक अन्वेषणकर्ताओं के इस स्थल की स्थिति के सन्दर्भ में दो मत हैं-

(क) छत्तीसगढ़ में रत्नपुर के समीप मालदा ही माल है । दोनों में नाम की दृष्टि से भी साम्य है ।

(ख) सतपुड़ा पहाड़ का पठार माल है ।

अधिकांश विद्वान् प्रथम मत के समर्थक हैं ।[५] वासुदेव मिराशी ने द्वितीय

---

१. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 21.
२. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 21.
३. Ibid.
४. Ibid.
५. (क) ed. H.H. Wilson;, 1973, p. 16.
(ख) ed. K.B. Pathak, 1916. 115.
(ग) ed. J.B. Chaudhry, 1951 (Intro), p. 32.
(घ) Fresh Light on Kalidasa,s Meghduta, p. 132-136.

मत का समर्थन करते हुए कहा है कि आधुनिक समय में सतपुड़ा पर्वत का पठार शिवानीछपरा के नाम से प्रसिद्ध है, यही माल है।[१] कल्याण के चालुक्यो के एक शिलालेख में यह वर्णन है कि द्वितीय आचुगि राजा ने मालदेश पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जबलपुर के समीप त्रिपुरी के हैहयी वंशी राजा को पराजित किया था। जिससे यह स्पष्ट है कि रामटेक से जबलपुर जाने वाली सड़क का मध्यभाग माल है।[२]

आम्रकूट (१७)-मल्लि. ने आम्रकूट की व्याख्या में अमरकोष को उद्धृत करते हुए लिखा है-आम्राश्चूताः कूटेषु शिखरेषु यस्य सः आम्रकूटो नाम सानुमान् पर्वतः। आम्रश्चूतोरसालोऽसो इति। कूटोऽस्त्री शिखरं श्रृंङ्गम् इति चामरः (पृ. १४)।

अधिकांश टीकाकार आम्रकूट पर्वत का नाम मानते हैं[३] इसकी स्थिति के सम्बन्ध में वे कोई प्रकाश नहीं डालते। आधुनिक अन्वेषकर्त्ताओं के इस विषय में तीन मत हैं -

(क) अमरकण्टक ही आम्रकूट है।[४] नाम की दृष्टि से दोनों में साम्य है। यह अमरकण्टक विन्ध्य के पूर्व में स्थित नर्मदा नदी का उद्गम स्थल है।

(ख) वी.जी. परांजपे अमरकण्टक मत का विरोध करते सोहागपुर के दक्षिण एवं महादेव पहाड़ी के उत्तर में स्थित पहाड़ी को आम्रकूट मानते हैं।[५]

(ग) वासुदेव विष्णु मिराशी ने आम्रकूट को छिंदवाड़ा जिले में अमरवाड़ा गांव के उत्तर में स्थित सतपुड़ा पर्वत का शिखर कहा है।[६] उन्होने अमरकण्टक मत का खण्डन दो आधारों पर किया है-

(i) अमरकण्टक रामगढ़ के उत्तर में न होकर दक्षिण पश्चिम में पड़ता है

(ii) आम्रकूट की दावाग्नि को शान्त कर मेघ को द्रुततर गति से कुछ मार्ग पार कर विन्ध्यपाद में विशोर्ण नर्मदा का अवलोकन करना है तो क्या वह अमरकण्टक जो नर्मदा का उद्गम स्थल है वह आम्रकूट हो सकता है।[७]

श्री चन्द्रबली पाण्डेय भी आम्रकूट को मध्यप्रदेश छिंदवाड़ा प्रदेश में सतपुड़ा से संबंधित कोई पर्वत मानते हैं।[८]

---

१. JIH. Vol. 42, 1964, p. 137.
२. कालिदास-वासुदेव विष्णु मिराशी, पृ. १११
३. स्थिर. -पृ. २४, वल्लभ.-पृ.१२, चारि.-पृ.२२, पूर्ण.-पृ.३२, शाश्वत पृ.३७, सना.-पृ. ३७. सुमति.-पृ. १०८, भरत.-पृ. १९, कृष्ण. -पृ.१३.
४. (क) ed. H.H. Wilson, 1973 , p. 16-17.
(ख) ed. H.B. Pathak, 1916, p. 79.
(ग) सीताराम चतुर्वेदी - कालिदास ग्रन्थावाली (अभिधानकोष), पृ. १३४
५. कालिदासीयं मेघदूत- पृ. १४७
६. कालिदास- मिराशी, पृ. १११
७. JIH. vol 42, p. 137.
८. कालिदास - चन्द्रबली पाण्डेय, पृ. ४५

रेवा (१९)

रेवा की व्युत्पत्ति-रेव प्लवगतो रेव्यतेऽसौऽकर्मणि, गुरोश्चे त्यकारः[१] इसे नर्मदा नाम से भी अभिहित किया गया है। कवि ने कई स्थलों पर इसका वर्णन किया है[२]रामायण,[३] महाभारत[४] एवं पुराणों[५] में इसका वर्णन मिलता है।

अधिकांशतः सभी टीकाकारों ने अमरकोष को उद्धृत करते हुए रेवा को नर्मदा नाम से कहा है-रेवा तु नर्मदा सोमोद्भवा मेकलकन्यका।[६]

रेवा से तात्पर्य प्रवाहशीला, नर्मदा का अर्थ आनन्द देने वाली, सोमोद्भव अर्थात् चन्द्रमा से उत्पन्न मेकलकन्यका से तात्पर्य मेकल पुत्री से है। मेकल के दो अर्थ दृष्टिगत होते हैं। यदि मेकल का अर्थ विन्ध्य पर्वत ले तो नर्मदा विन्ध्य पर्वत की पुत्री रूप में आती है। मेकल एक ऋषि का नाम भी माना गया है जिसे नदियों की देवी का जनक कहा गया है। इस दृष्टि से नर्मदा श्रेष्ठतम नदी रूप में आती है।[७] यह एक अत्यन्त पवित्र नदीं है जिसका दर्शन व जलपान कर मेघ भी पवित्र हो जायेगा। कृष्ण. के शव्दो में एतेन तज्जलादानेन तद्दर्शनेन च पापशान्तिरपि भविष्यतीत्युक्तम्। यदाह काशीखण्डे सद्यःपापहरा गङ्गा सप्ताहेन कलिंदजा। त्र्यहात्सरस्वति रेवे त्वं तु दर्शनमात्रः। (पृ.१५)। महिमसिंह गणि ने इसकी महत्ता में कहा है। गंगा स्नानेन यत्पुण्यं तद्रेवादशंनेन च। यथा गंगा तथा रेवा तथा देवी सरस्वती। समं पुण्यफलं प्रोक्तं स्नानदर्शनचिन्तनैः।[८]

नर्मदा की स्थिति के सम्बन्ध में टीकाकार मौन हैं। आधुनिक अन्वेषणकर्ताओं के मत में यह नदी मध्य प्रदेश में स्थित अमरकण्टक से निकलती है। और गुजरात

---

१. कृष्ण. - पृ. १५
२. (क) रघु. ५।४२-४६
   (ख) वही - ६।४३
   (ग) मालविकाग्निमित्रम्।
   प्रथम अंक
३. रामा. - किष्किन्धा का., ४१।८
४. महा. भा.-वनपर्व, १२१।१९ -२१
५. (क) पद्म-पुराण - स्वर्गखण्ड, २९।५४
   (ख) स्कन्द पु. अ. ८२-८३
   (ग) मत्स्य पु.-अ. ७५(घ)कूर्म पु.- अ. ३८
६. चारि.-पृ.२५, मल्लि., -पृ. १६, पूर्ण.-पृ. ३४, सना.-पृ.४२
७. ed. H.H. Wilson, p. 20.
८. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 23.

में बहती हुई खम्भात की खाड़ी में गिरती है।[१]

विन्ध्यपाद (१९)-कवि ने रघुवंश (६।६१, १२।३१, १४।८, १६।३२) व ऋतुसंहार (२।८, २।२८) में विन्ध्य पर्वत का वर्णन किया है। रामायण (४।४१।८), महाभारत (१०४।१-१५), मनुस्मृति (२।२१), मार्कण्डेयपुराण (५७।१०-११) व पद्मपुराण (उत्तरकाण्ड ३५-३८) में विन्ध्य का उल्लेख है।

कृष्ण ने शब्दो में सूर्यगमनस्य विरुद्धं ध्यायतीति विन्ध्यः (पृ. १५) विल्सन ने इस सन्दर्भ में एक पौराणिक कथा का उल्लेख किया है कि सूर्य द्वारा पर्वत की परिक्रमा किये जाने के कारण विन्ध्य सूर्य के प्रति क्रुद्ध हो उठा और उसने सूर्य का मार्ग रोकने का प्रयास किया जिससे वह विन्ध्य कहलाया।[२]

अधिकांश टीकाकारों ने पाद का अर्थ प्रत्यन्तपर्वत करते हुए अमरकोश को उद्धृत किया है पादाः प्रत्यन्तपर्वताः[३] वल्लभ. ने पाद का अधोभाग अर्थ दिया है-विन्ध्याद्रेः पादेऽधोभागे (पृ.१३)।

इसकी स्थिति के सम्बन्ध में टीकाकार मौन हैं। आधुनिक अन्वेषणकर्ताओं के अनुसार यह पर्वत अत्यन्त उन्नत विस्तृत है। मध्यप्रदेश में गुजरात से लेकर विहार प्रान्त में गया तक सम्पूर्ण पर्वतीय श्रृंखलाएं विन्ध्य से सम्बन्धित हैं। नर्मदा के दोनों और इसका स्वरूप दृष्टिगत होता है। विन्ध्य का दक्षिणी प्रत्यन्तपर्वत सतपुड़ा विन्ध्यपाद है।[४]

दशार्ण (२३)-दर्शाण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है-

दश अर्णांसि जलस्थानानि यत्रेति (कृष्ण.पृ.१७)

रामायण[५] व महाभारत[६] में दशार्ण का प्रयोग देशविशेष के लिए किया गया है। पुराण में यह शब्द नदी का वाचक है।[७]

टीकाकारों ने दशार्ण को देश, जनपद, जलस्त्रोत या दुर्गों से युक्त स्थल कहा है-

स्थिर.-दशार्णनामानो जनपदाः (पृ. ३१)
वल्लभ.-दशार्णाख्या जनपदाः (पृ.१५)
दक्षि.-दशार्णाविन्ध्योत्तरस्था केचन जनपदाः...दशार्णाः स्युर्वेदिकाला मालवाः स्युखन्तयः इति यादवः (पृ.१९)
चारि.-दशार्णाः देशविशेषाः (पृ. ३०)
मल्लि.-दशार्णा नाम जनपदाः (पृ.१९)

---

१. कालिदास की कृतियों में भोगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान -पृ. १११
२. ed. H.H. Wilson, p. 20.
३. स्थिर. - पृ. २६, मल्लि., पृ. १६, पूर्ण.-पृ. ३४, सना.-पृ. ४१, शाश्वत पृ-.४२, चरणतीर्थ-पृ.२२
४. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. ६७-७०
५. रामा. किष्किन्धा का. - ४११९
६. महा. भा. सभापर्व- २९।५ एवं ३२।७
७. मार्कण्डेय पु. - ५७।२३-२५

पूर्ण.-दशार्णा नाम जनपदा (पृ.३८)

शाश्वत०-दशऋणानि जल (जलादि) दुर्गभूमयो येषु ते दशार्णा जनपदाः (पृ.५०)

सना.-दशार्णाः जनपदविशेषाः (पृ. ४९)

सुमति.-दशार्णाः दशार्णनामानो देशविशेषाः (पृ. ११६)

भरत.-दशार्णदेशं...दशार्णा जनपदा...दश ऋणानि जलदुर्गाणि यत्र ते दशार्णा जनपदाः (पृ.२४-२५)।

चरणतीर्थ-दशार्णदेशविशेषाः (पृ. २८)

सीताराम चतुर्वेदी ने विन्ध्य के दक्षिण-पूर्वी भाग को दशार्ण कहा है। इस भाग में दशान नदी बहती है जो भोपाल से तेरह कोस़ उत्तरपूर्व बेतवा के किनारे पहाड़ी पर बसी हुई है।[१] प्रभाकर नारायण कवेठकर ने मध्यप्रेदश के सागर जिले में दशार्ण की पूर्वसीमा कही है जो मध्यप्रदेश के रायसेन जिसे से निकल कर पश्चिम से बहती हुई जाती है।[२]

विदिशा (२४)

कवि ने दशार्ण की राजधानी रुप में विदिशा का उल्लेख किया है। वि पूर्वक दिश् म·ग्र अर्थ का वाचक है।[३] भरत ने इसकी व्युत्पत्ति देते हुए कहा है-विदिक् वायव्यादिदिक् आश्रयत्वेन विद्यतेऽस्या इति विदिशा अर्श आदित्वात् (पृ. २५)।

मालविकाग्निमित्र में उल्लिखित विदिशा का वर्णन स्पष्ट करता है कि विदिशा पुण्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र की राजधानी थी।[४] रामायण में शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुघाती को विदिशा दिये जाने का उल्लेख है।[५]

टीकाकारों ने इसकी स्थिति के सन्दर्भ में कुछ निर्देश नहीं किया है। भरत. ने इसे शुद्रक की नगरी कहा है।[६] बाणभट्ट ने भी वेत्रवती के किनारे पर स्थित शूद्रक की राजधानी रूप में विदिशा का चित्रण किया है।[७]

वेत्रवती (२४)

कवि ने विदिशा में वेत्रवती का उल्लेख किया है। कवि की इस स्पष्टाभिव्यक्ति के कारण सम्भवतः टीकाकारों ने इसकी स्थिति के सम्वन्ध में कुछ नहीं कहा।

---

१. कालिदास ग्रन्थावली - अभिधान कोष, पृ. १५
२. मेघदूत में दशार्ण The Vikiram, Vol. V-VI, 1962-63, p. 19.
३. The Vikram, (Ka.Vi), Vol. V-VI, 1962-63, p. 23.
४. मालविकाग्निमित्रम् ५।१० से पूर्व का गद्यभाग।
५. रामा. उत्तरकाण्ड - १०९।११
६. विदिशेति सर्वत्र प्रसिद्धां शूद्रकस्य पुरीम् - भरत. पृ. २६
७. मज्जनमालवविलासिनीकुचतटास्फालनजर्जरितोर्मिमालयावगाहनागतजयकुञ्जरकुम्भसिन्दूरसंध्यायमानसलिलचोन्मदकलहंसकुलकोलामुखरीकृतकूलया, वेगवत्यापरिगता विदिशाभिधानां राजधान्यासीत्। -कादम्बरी

आधुनिक अन्वेषणकर्ता इसकी स्थिति के विषय में एकमत हैं। भील्सा के समीप आधुनिक बेतवा ही प्राचीन समय में वेत्रवती नाम से जानी जाती होगी। यह बेतवा विन्ध्य के उत्तर से निकलती हुई मालवा को पार कर अन्त में यमुना में मिल जाती है।[१] मार्कण्डेय पुराण में इसका उद्गम स्थल पारियात्र पर्वत कहा गया है।[२]

नीचैःपर्वत (२५)-नीचैः नाम से ऐसा प्रतीत होता कि वहां पर होने वाली सुरत क्रीड़ाओं रूप गर्हणीय क्रियाओं के कारण उस पर्वत को यह उपाधि मिली है। दक्षि. के शब्दो में नीचैरिति। सुरतगृहवत्तया नीचैराख्यत्वं पर्वतस्य (पृ.२१)। अथवा अन्य पर्वतों की तुलना में छोटा होने के कारण उस पर्वत को यह नाम दिया गया हो। सुमति. के शब्दो में नीचैराख्यं गिरिं खर्वाभिधानं पर्वतं (पृ. ११८)। शाश्वत का भी यही मत है।[३] भरत. ने इसे पर्वत का नाम ही माना है पर साथ ही अन्य दो मतों का भी उल्लेख किया है। नीचैराख्यमिति नीचैरिति आख्या नाम यस्य स तथा तं नीचैराख्यं अप्रसिद्धनामानं यं कञ्चिदित्यन्ये। अश्लीलत्वात् नीचैः शनैरुच्चारणीया आख्या नाम यस्य, सहि भगनामागिरिः कांटगिरिरिति ख्यात इति केचित् (पृ. २६)।

आधुनिक विद्वानों ने विदिशा के समीप स्थित उदयगिरि पहाड़ी को ही नीचगिरिः कहा है।[४]

वननदी (२६)इस नदी के नाम के सम्बन्ध में टीकाकारों में अत्यन्त वैमत्य है। वल्लभ. (पृ. १६), दक्षि. (पृ.२१), चारि.(पृ.३३), मल्लि.(पृ. २२), पूर्ण. (पृ. ४१), व कृष्ण. (पृ. १९) ने वननदी पाठ दिया है। पर स्थिर. (पृ. ३४) शाश्वत (पृ. ५४), सारो.[५] एवं भरत. (पृ. २६) ने नवनदी कहा है। सना. (पृ. ५३) नगनदी पाठ देते हैं।

सारोद्धारिणी ने यद्यपि नवनदी पाठ दिया है पर व्याख्या में मालवदेश में वननदी नामक किसी सरित् का भी उल्लेख किया है।[६]

१. (क) Geographical Aspect of Kalidasa,s works-B.C. Low, p. 39.
(ख) कालिदास की कृतियों में भौगोलि क स्थलों का प्रत्यभिज्ञान -पृ.१०६
२. मार्क. पु. -५९।२०
३. शाश्वत ने विश्रान्तः सन्व्रज. श्लोक की व्याख्या में कहा है-दशार्णेषु खर्वगिरेरुत्तरो मार्गः जिससे स्पष्ट है कि वे नीचैः को कोई छोटा पर्वत मानते हैं
४. (क) ed. K.B. Pathak, p. 83 & 115
(ख) India In Kalidas, p. 11.
(ग) कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान -पृ. ७३-७४
५. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 30.
६. अथवा मालवदेशे यूथिकाखंडमंडितोद्यानमालिततीरदेशावननदी नाम्ना सुरिदस्तीति। ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 30.

मल्लि.-ने वननदी की व्याख्या में कहा है-वनेऽरण्ये या नद्यस्तासां तीरेषु जातानि । नदनदी...इति पाठे पुमान्स्त्रियां इत्येकशेषो दुर्वारः (पृ. २२) ।

वे वननदी को किसी नदी विशेष का वाचक न मानकर वन में होने वाली अनेक नदियों का वाचक मानते हैं । पर मेघमार्ग को ध्यान में रखते हुए उनकी यह व्याख्या कई कारणों से अग्राह्य है-

(क) कवि ने अगले ही श्लोक में मेघमार्ग उत्तर दिशा की ओर निर्दिष्ट किया है । अगर वननदी अनेक नदियों की वोधक है तो निश्चित है कि वे किसी एक दिशा में न होकर उस वन में यत्र- तत्र होंगी, तब उत्तर में जाते हुए मेघ मार्ग में कवि उन नदियों का किस प्रकार उल्लेख करता ?

(ख) कवि ने श्लोक में पुष्पलावी एवं उद्यानानां का प्रयोग किया है अतः ऐसे स्थल को वन संज्ञा दी जा सकती है ।

(ग) कवि ने विदिशा से उज्जयिनी तक के मार्ग में पड़ने वाले वेत्रवती व नीचगिरि जैसे गौण स्थलों का भी उल्लेख किया है । अतः यदि उस मार्ग में कोई वन होता तो जब कवि उसकी नदियों का उल्लेख कर रहें तो उस वन का वर्णन कैसे अछूता रह सकता था ।

अतः ऐसा प्रतीत होता है कि मल्लि. ने केवल विग्रह के आधार पर अर्थ कर दिया है उसकी उचित स्थिति को जानने का प्रयास नहीं किया ।

भरत. ने नवनदी पाठ देते हुए लिखा है-नवनद्या नवनदीन्नाम- नदीविशेषस्य. ..केचितु नवानि नूतनानि च तानि नदीतीरजातानि चेति विगृह्णन्ति नवत्वेन रम्यत्वं सूचितमित्याहुः केचितु नगनदीति पठित्वा नगनदी नीचैर्गिरिप्रभवा नदीति । वननदीति केचित् पठन्ति । (पृ. २६) ।

विल्सन महोदय ने नगनदी पाठ मानते हुए इसका अर्थ पर्वतीय नदी लिया है । और आधुनिक समय में बेतवा के पश्चिम में विन्ध्य से निकलने वाली पार्वती नदी को ही नगनदी कहा है । नाम की दृष्टि से भी दोनों में साम्य है । पार्वती से तात्पर्य पर्वत से निकलने वाली नदी है । यही नदी बेतवा को पार करती हुई अन्त में शिप्रा में मिल जाती है ।[१]

प्रभाकर नारायण कवेठकर के मत में कवि ने उज्जयिनी जाने के लिए वक्रमार्ग का निर्देश किया है । इससे पूर्व तक मेघ का मार्ग उत्तर दिशा ही है । यदि कवि को पार्वती ही अभीष्ट होती तो वह विदिशा के प्रसंग में ही वक्रमार्ग का निर्देश कर देते । उन्होने बेतवा की एक शाखा वेसनदी को ही वननदी कहा है ।[२]

उज्जयिनी (२७)

उज्जयिनी से ताप्यर्य है-जयतीति जननी उद्गता जयनी उज्जयिनी (भरत. पृ. २७) । प्राचीन काल से ही उज्जयिनी का उल्लेख महत्वपूर्ण स्थल के रूप में

१. ed. H. H. Wilson, p. 26.
२. The Vikram (Ka.Vi) Vol. V-VI, 1962-63, p. 23 .

हुआ है।[१] आप्टे ने विक्रमादित्य की राजधानी उज्जयिनी कही है।[२]

कवि ने उत्तरपथगामी मेघ मार्ग में वक्र पड़ती हुई कान्तिमत्खण्डमेकम् रूप अवन्ती की राजधानी उज्जयिनी का दर्शन मेघ के लिए अवश्यम्भावी कहा है जो उज्जयिनी के प्रति कवि के अत्यन्त अनुराग को व्यक्त करता है। उज्जयिनी के प्रति कुछ टीकाकारों के मत इस प्रकार हैं-

दक्षि.-तस्याः (निर्विन्ध्यायाः) प्राक् तीरे कियन्तं चाध्वानं प्रागतिक्रम्य वर्त्तते खलूज्जयिनी । तस्मान्निर्विन्ध्यायाः पश्चिमतीरदेशनोत्तरां गच्छतो मेघस्योज्जयिनी गमने पन्था वक्रः स्यादिति (पृ. २२)।

चारि.-उज्जयिन्याः विक्रमार्कपुर्याः (पृ. ३४)।

मल्लि.-विन्ध्यादुत्तरवाहिन्या निर्विन्ध्यायाः प्राग्भावे कियत्यपिदूरे स्थितोज्जयिनी । विशालोज्जयिनी समा इत्युत्पलः (पृ. २३)

भरत.-यद्यपि यूथिकाप्रदेशात् गङ्गाद्वारवर्त्मना गन्तव्ये पश्चिमावस्थितोज्जयिनीगमनेकुरुक्षेत्रमाक्रम्य ईषदेशानदिगभिमुखत्वे वक्रता स्यात्तथापि गमिष्यसीति (पृ. २७)।

अन्य टीकाकारों ने इसकी व्याख्या में कोई विपेश मन्तव्य नहीं दिया है। कृष्ण० ने 'प्राप्यावन्ती...' श्लोक की व्याख्या में अवन्ती का ही दूसरा नाम उज्जयिनी कह विशाला को एक भिन्न पुरी कहा है।[३] पर उनके मत का खण्डन विशालोज्जयिनी समा द्वारा ही हो जाता है। आधुनिक अन्वेषणकर्ताओं ने उज्जैन को ही उज्जयिनी कहा है।[४]

निर्विन्ध्या (२८)

निर्विन्ध्या की व्युत्पत्ति टीकाकारों ने इस प्रकार दी है-

दक्षि.-विन्ध्यादिप्रभवा विन्ध्यं निर्भिद्य उत्तरवाहिनी कापि नद्यस्ति निर्विन्ध्येति (पृ. २२)

मल्लि.-निष्क्रान्ता विन्ध्यान्निर्विन्ध्या नाम नदी (पृ. २४)

भरत.-निर्विन्ध्याया विन्ध्यान्निगर्तत्वात् निर्विन्ध्यानाम्ना नद्या (पृ. २८) आधुनिक विद्वान् भी वे विन्ध्य को निर्विन्ध्या का उद्गम स्थल मानते हैं।

---

१. (क) महा. मा. विराटपुर्व - १।१३
(ख) स्कन्द पु. अवन्ति खण्ड, ६८।१०

२. V.S. Apte Dictionary, Vol. I. p. 401.

३. प्राप्यावन्ती...श्लोक की व्याख्या द्रष्टव्य-कृष्ण.-पृ. २१

४. (क)V.S. Apte Dictionery, Vol. I, p. 401.
(ख) Geographical Aspect of Kalidas,s works, p. 25.
(ग) ed. H.H. Wilson, p. 27.
(घ) कालिदास की कृतियों में भौगिलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. २१५-१६

विन्ध्य से निकलने वाली नेवजू को ही निर्विन्ध्या कहते हैं, इसे चम्बल की एक सहायक नदी कहा गया है।[१]

विल्सन ने लिखा है कि यद्यपि मानचित्र में इस नाम की किसी नदी का उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन पावर्ती व शिप्रा के मध्य में कुछ छोटी नदियों का उल्लेख किया गया है। सम्भवतः उनमें से ही कोई नदी निर्विन्ध्या रही हो।[२]

सिन्धु (२९)

कवि ने रघुवंश (४।६७) एवं मालविकाग्निमित्र (अंक ५) में भी सिन्धु नदी का वर्णन किया है।

वल्लभ., दक्षि.- चारि., एवं मल्लि. ने सिन्धु को पूर्व श्लोक में उल्लिखित निर्विन्ध्या का ही वाचक कहा है। उनके मतानुसार-

वल्लभ.-हे सुभग तां निर्विन्ध्यां कार्श्यं कर्तृ ये न विधिना प्रकारेण प्रकृतिस्थं त्यजति स विधिर्भवतैव संपाद्यः (पृ. १८)।

दक्षि.-तामतीतस्य इति पाठमादृत्य नद्यन्तरमुच्यत इति केचित् वदन्ति। तदानीमर्थश्चापुष्टः। अत्र देशे सिन्धुरिति कापि नदी नास्ति। काश्मीरेषु सिन्धुः प्रहवतीत्यनुसन्धेयम् (पृ. २३)।

चारि-सिन्धुनिर्विन्ध्या (पृ.३७)

मल्लि.-निर्विन्ध्याया विरहावस्था वर्णयंस्तन्निराकरणं प्रार्थयते...असौ पूर्वोक्ता सिन्धुनदी निर्विन्ध्या.. तामतीतस्य इति पाठमाश्रित्य सिन्धुनाम नद्यन्तरमिति व्याख्यातम्। किन्तु सिन्धुनाम कश्चिन्नदः काश्मीरदेशेऽस्ति। नदी तु कुत्रापि नास्तीत्युपेक्ष्यमित्याचक्षते (पृ. २५)।

अन्य सब टीकाकारों ने सिन्धु को निर्विन्ध्या से भिन्न नदी माना है।[३] कवि ने निर्विन्ध्या के लिए जहां वीचिक्षोभ एवं दर्शितावर्त विशेषणों का प्रयोग किया है वहां सिन्धु को वेणीभूतप्रतनुसलिला कहा है। ये विशेषताएं एक नदी की नहीं कही जा सकतीं। अतः सिन्धु निर्विन्ध्या से भिन्न नदीं ही प्रतीत होती है।

मल्लि. व दक्षि. का यह कथन कि सिन्धु नदीं कहीं प्राप्त नहीं होती, अनुचित है। रामायण[४] महाभारत[५] मत्स्यपुराण[६] में सिन्धु नदी का उल्लेख है।

प्रभाकर नारायण कवेठकर ने दक्षिण सिन्धु को सिन्धु नदी कहा है। इसकी स्थिति मध्य भारत में है जो कि निर्विन्ध्या के अनन्तर उज्जियिनी मार्ग में पड़ती है। उन्होने इसका भी उल्लेख किया है कि पुराणों के रचनाकाल के अनन्तर दक्षिण

---

१. (क) Geographical aspect of Kalidasa,s works, p. 37-38.
(ख) The Vikram (Ka.Vi), Vol.V-VI, 1962-63, p. 23.
(ग) कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान -पृ. १०७

२. ed. H.H. Wilson, p. २८.

३. पाठभेद - अध्याय में तामतीतस्य सिन्धुं की व्याख्या द्रष्टव्य

४. रामा. - किष्किन्धा का., ४०।२१

५. महा. भा. वनपर्व - ९२। ५३

६. मत्स्य पु. - ११३।२३-२४

सिन्धु को ही काली सिन्ध कहा जाने लगा, सम्भवतः इस नदी के प्रान्त पर कालीपूजा प्रथा रही हो।[१] विल्सन ने भी सिन्धु को निर्विन्ध्या से भिन्न मानते हुए उज्ञैन के समीप बहने वाली आधुनिक सागरभट्टी सिन्ध कहा है।[२]

अवन्ती (३०)

ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण स्थल रहा है। महाभारत[३] एवं पुराण[४] में इसका उल्लेख मिलता है।

वल्लभ. (पृ.१८), स्थिर. (पृ.३९), चारि. (पृ.३८) मल्लि. (पृ.२५) पूर्ण. (पृ.४६) सुमति. (पृ.१२३) एवं चरणतीर्थ (पृ.३६) ने अवन्तीन् में बहुवचन मान मालवजनपद अर्थ लिया है। सना. (पृ.६०) शाश्वत, (पृ.६०) एवं भरत. (पृ.२९) ने अवन्तीम् में एक वचन का प्रयोग कर इसे नगर अथवा देश का वाचक कहा है।

इस सन्दंर्भ में कृष्णपति का मत विशेष रूप से उल्लेखनीय है- अवन्तीं पूर्वकथितां प्राप्य विशालानाम्नी पुरीं व्रज। श्रीलक्ष्मी शोभा वा, तया विशालां महतीं बहुधनाम् इत्यर्थः। मनोरमामिति वा। कश्चितु अवन्तीं प्राप्य पूर्वोद्दिष्टामुज्जयिनीमनुसर इति व्याख्यातवान्। तन्न चारु, अवन्त्या एव नाम उज्जियिनीति। तदुक्तं काशीखण्डे पापादवन्ति। सा विश्वमवन्ती तेन गम्यते। युगे-युगेऽन्यनाम्नी सा कलावुज्जयिनीति च इति (पृ. २१)।

उनका यह मत माननीय नहीं है कवि ने प्राप्यावन्ती. के पश्चात् पूर्वोदिष्टामुपसर पुरीं श्रीविशालां कहा है जो इस बात का प्रमाण है कि अवन्ती अलग है और पूर्व वर्णित उज्जयिनी को ही कवि ने विशाला नाम से कहा है। विशालोज्जयिनी समा[५] भी इसी की पुष्टि करता है।

विद्वानों ने पश्चिम मालवा को अवन्ती कहा है। सातवीं आठवीं शती में अवन्ती मालवा नाम से कहा जाने लगा।[६] आधुनिक उज्जैन एवं उसके आसपास के स्थल अवन्ती मालवा के अन्तर्गत आते हैं।

कैलाशनाथ द्विवेदी ने ग्वालियर से नर्मदा तक विस्तृत मालवा पठार अवन्ती राज्य कहा है जो बेतवा व चम्बल नदियों के मध्य में है।[७]

शिप्रा नदी (३१)-वल्लभ. (पृ. १९), एव भरत. (पृ. ३०) ने इसे सिप्रा नाम से कहा है। मत्स्यपुराण (अ.११४) में क्षिप्रा नाम पाया जाता है। अन्य टीकाकारों ने इसे शिप्रा नाम से ही कहा है।

---

१. मेघदूत में सिन्धु The Vikram, (Ka. Vi), Vol. VII-IX, 1965-66, p. 57-58.
२. ed. H.H. Wison, p. 29.
३. महा. भा. विराट् पर्व - १।१३
४. स्कन्द पु. - ७८।८८
५. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 23 .
६. ed. J.B. Chaudhry (Intro), p. 38.
७. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. १६८

मार्कण्डेयपुराण में एक स्थल पर शिप्रा का उद्गम स्थल पारियात्र पर्वत कहा गया है।[१] वहीं एक स्थल पर उसे विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली कहा गया है।[२] इसका स्पष्टीकरण करते हुए वासुदेवशरण ने कहा है कि यह शिप्रा चम्बल की ही एक शाखा नदी है यद्यपि चम्बल व शिप्रा दोनों का उद्गम स्थल विन्ध्य का उत्तरी ढलान है पर चम्बल के साथ शिप्रा का भी पारियात्र क्षेत्र के साथ सम्बन्ध जोड़ दिया गया है।[३] स्कन्द पुराण में भी शिप्रा का उल्लेख है।[४]

विल्सन ने आधुनिक उज्जैन के उत्तर-पूर्व में बहने वाली नदी को शिप्रा कहा है। इसको मानचित्र में सिपरह नाम से कहा गया है।[५]

गन्धवती (३३)

महाकाल का वर्णन करते हुए कवि ने गन्धवती का उल्लेख किया है। टीकाकारों ने इसकी व्याख्या में कुछ विशेष नहीं कहा। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवतः कालिदास के समय में यह कोई विशेष नदीं रही होगी। महाकाल की इस पर स्थिति होने के कारण कवि ने इसका उल्लेख मात्र कर दिया है। वहां की युवतियों के अंगराग युक्त स्नान से सुगन्धयुक्त होने से सम्भवतः इसका नाम गन्धवती पड़ गया हो।

आधुनिक विद्वानों ने इसे गौण नदीं मानते हुए शिप्रा की सहायक नदी रूप में कहा है।[६] सीताराम चतुर्वेदी ने भुवनेश्वर के समीप पुरी जिले में गन्धवती की स्थिति मानी है।[७]

गम्भीरा (४०)

उज्जयिनी से देवगिरि को प्रस्थान करने वाले मेघमार्ग में गम्भीरा का उल्लेख है। आदिपुराण (२९।५०) में उज्जयिनी के समीप बहने वाली शिप्रा की एक शाखा के रूप में गम्भीरा का वर्णन है। कुछ आधुनिक विद्वान् इस मत के समर्थक हैं।[८]

श्री नेमिचन्द्र जी ने गम्भीरा को बरसाती नदी कहा है, महावीर जी तीर्थ क्षेत्र

---

१. मार्क. पु. – ५७।२०
२. वही – ५७.२४–२५
३. मार्कण्डेयपुराणः एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. १४७
४. स्कन्द पु. – ६८।८
५. ed. H.H. Wilson, p. 32.
६. (क) ed. K.B. Pathak, p115..
(ख) Fresh light on Kalidasa's Meghduta, p. 278.
७. कालिदास ग्रन्थावली (अभिधान कोष), पृ. १४६
८. Meghduta, S.K. De. (Sahitya Akadmai), p.158

के आसपास यह नदी विद्यमान है जो आगरा, भरतपुर, एवं राजस्थान में प्रवाहित होती है।[१]

गम्भीरा मालवा में बहने वाली छोटी नदियों में से एक है वस्तुतः यह शिप्रा की सहायक है किन्तु चर्मण्वती में शिप्रा के मिल जाने से गम्भीरा को भी चर्मण्वती की सहायक नदी रूप में मान लिया गया है।[२]

देवगिरि (४२)

कवि ने देवपूर्व गिरिं कहकर देवगिरि का उल्लेख किया है। पूर्ण ने इसकी व्याख्या में कहा है-देवपूर्व गिरिमिति । दशपूर्वरथं यमाख्यया (रघु. ८।२९) हिरण्यपूर्व कशिपुं प्रचक्षते (शिशु. १।४२) इत्यादिवद्देवपूर्वं गिरिशव्दामिधानं पर्वतमिति झटिति प्रतीतेः शव्दपरत्वार्थपरत्वादिविकल्पस्यानवकाशः (पृ. ६४)।

कवि ने गम्भीरा एवं चर्मण्वती के मध्य इस पर्वत का उल्लेख किया है जहां स्कन्द का निवास है। दूसरे शव्दो में उज्ञयिनी एवं दशपुर के मध्य देवगिरि की स्थिति कही जा सकती है।

कुछ विद्वानों ने आधुनिक देवगढ़ को देवगिरि कहा है जो कि झांसी के दक्षिण-पश्चिम में ६० मील दूर स्थित है।[३] वासुदेव विष्णु मिराशी ने इस मत का खण्डन करने हुए कहा है सर्वप्रथम तो यह स्थल गम्भीरा एवं चर्मण्वती के मध्य में नहीं पड़ता और देवगढ़ पर कातिकेय के मन्दिर का कोई अवशेष भी प्राप्त नहीं होता। यद्यपि वहां गुप्तकालीन मन्दिरों के अवशेष मिलते हैं, पर वे कातिकेयसे सम्वन्धित न होकर विष्णु से सम्वन्धित हैं केवल एक शिला पट्ट पर शेषशायि विष्णु ने साथ अन्य देवताओं के साथ स्कन्द का भी दर्शन है जो अत्यन्त गौण रूपेण है अतः यह स्थल मेघदूत में वर्णित देवगिरि नहीं हो सकता।[४]

गर्डे महोदय ने देवहडुंगरी को देवगिरि कहा है। जो उज्ञयिनी एवं नागहृद के मार्ग में उन्हेल नामक स्थल के समीप है।[५] इसी मत को मान्यता देते हुए मिराशी ने कई प्रमाण दिये हैं-

(क) नाम की दृष्टि से देवगिरि व देवडुंगरी में साम्य है।

(ख) देवडुंगरी गम्भीरा एवं चर्मण्वती के मध्य में है।

(ग) यहां आधुनिक समय में दो मन्दिर पाये जाते हैं जो भैरव व देव धर्मराज के हैं, मध्य भारत में कातिर्केय का ही दूसरा नाम देवधर्मराज है। यद्यपि यह मन्दिर अधिक पुरातन नहीं है किन्तु ऐसा अनुमान किया

---

१. आदिपुराण में प्रतिपादित भारत - पृ. ९८
आदिपुराण में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. ११०

२. (क) कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. ११०
(ख) Geographical Aspect of Kalidasa,s works, p. 38.

३. (क) ed. H.H. wilson, p. 42.
(ख)ed. K.B. Pathak, p. 99.
(ग) Fresh light on Kalidasa,s Meghduta, p. 278.

४. मेघदूत देवगिरिः सागरिका-वाल्यूम, ४, नं. २, सम्वत् २०२२, पृ. १-४

५. सागरिका-वाल्यूम ४, नं. २, सम्वत् २०२२, पृ. १-४

जाता है है कि भगवान् स्कन्द के पुरातन मन्दिर के स्थान में यह निर्मित किया गया है।[१]

श्री रामेश्वर गौरी शंकर ओझा ने भी मालवा में स्थित देवगिरि का वर्णन करते हुए वहां के मन्दिरों एवं उत्सवों को आधार पर देवडुंगरी को देवगिरि स्वीकार किया है।[२]

चर्मण्वती (४५)

कवि ने स्त्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां के रूप में चर्मण्वती का उल्लेख किया है। वल्लभ. (पृ. २६), दक्षि.(पृ.३२,) पूर्ण. (पृ. ६९) सना. (पृ. ०) व भरत. (पृ. ४१-४२) ने यहां कथा का उल्लेख करते हुए कहा है रन्तिदेव द्वारा गोमेध में हजारों गायों के बध से जो रक्त प्रवाहित किया, वही चर्मण्वती नदी कहलाया।

कृष्ण. (पृ. २९) ने शाश्वत का मत देते हुए अन्य कथा दी है कि रन्तिदेव द्वारा वन में आरोपित वृक्षों का सुरभिकन्या ने भक्षण किया, रन्तिदेव ने उसका वध कर दिया और उसका रक्त ही चर्मण्वती नदी कहलाया।

महाभारत[३] व आदिपुराण[४] में इस नदी का उल्लेख मिलता है। आधुनिक विद्वानों ने चम्बल को ही चर्मण्वती कहा है।[५] विल्सन के मत्त में विन्ध्य के उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश से निकलने वाली धाराओं में से ही धारा चम्बल है। सूरत के आगरा जाते हुए चम्बल नदी का उल्लेख मिलता है। यह चम्बल ही पूर्व समय में चर्मण्वती नाम से रही होगी जो अब चम्बल नाम से जानी जाती है।[६]

दशपुर (४७)

स्थिर. (पृ. ४९), वल्लभ. (पृ. २७),. पूर्ण. (पृ. ७२), सना. (पृ. ८२), शाश्वत (पृ. ८३) एवं सुमति. (पृ. १४५) ने दशपुर को नगर का वाचक कहा है। बृहत्संहिता में शहर के रूप में दशपुर का उल्लेख हुआ है।[७] नासिक एवं गुप्तशिलालेखों में दशपुर का उल्लेख मिलता है।[८]

इसकी स्थिति के सम्बन्ध में दो मत हैं-

(क) विल्सन के अनुसार उज्जैन से थानेसर के मार्ग में स्थित रन्तिपुर अथवा रत्नपुरु ही कालिदास का दशुपर है। यह स्थल चम्बल के कुछ उत्तर में स्थित है। मल्लि. ने भी आराध्यैनं ...श्लोक की व्याख्या में दशपुर

---

१. सागरिका-वाल्यूम ४, नं.. २, सम्वत् २०२२, पृ. १-४
२. मालवे का देवगिरि वीना पत्रिका, वाल्यूम १०, नं. २,दिव १९३६, पृ. ८३-९४
३. महा. भा.-वनपर्व ८२।५४, द्रोणपर्व अ. ६७, सभापर्व, ३१।७
४. आदिपुराण - २९।६४
५. (क) आदिपुराण में प्रतिपादित भारत - पृ. ९८
(ख) Fresh light on Kalidasa,s Meghduta, p. 279.
६. ed. H.H. Wilson, p. 44-45.
७. बृहत्संहिता - १५।२०
८. ed.K.B. Pathak, p. 92.

का रन्तिदेव कहा है। हो सकता है कि रन्तिदेव का इस स्थल पर आधिपत्य होने के कारण उसे रन्तिपुर अथवा रन्तमपुर नाम से कहा गया है।[१]

(ख) अधिकांश विद्वानों ने आधुनिक मन्दसौर को ही दशपुर कहा है।[२] जो मालवा में चम्बल के किनारे दो या तीन मील की दूरी पर है। सना. ने चर्मण्वत्याः पारे दशपुरं नाम नगर्यास्ति (पृ. ८२) कहा है। यशोवर्धन के मन्दसौर पत्थर शिलालेख में दसौर अथवा मन्दसौर का उल्लेख है जिसको पश्चिम मालवा का प्रमुख नगर कहा गया है। कुमारगुप्त के शिलालेखों में भी मालवागणों की प्रमुख नगरी के रूप में दशपुर का उल्लेख है।[३]

ब्रह्मावर्त (४८)

अधिकांश टीकाकारों ने मनुस्मृति को उद्धृत करते हुए सरस्वती एवं दृषद्वती के मध्य ब्रह्मावर्त की स्थिति कही है।[४] मनुस्मृति में कहा गया है-

सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्त प्रचक्षते ।[५]

कवि ने ब्रह्मावर्त के साथ ही कुरुक्षेत्र व सरस्वती का वर्णन किया है। कुरुक्षेत्र ब्रह्मावर्त का ही एक विशाल भू-भाग है जो थानेसर के आसपास के प्रदेश से अभिन्न है। इसमें पूर्वी पंजाब के पटियाला, अम्बाला, करनाल, पानीपत, हिसार आदि जिलों का भू-प्रदेश आ जाता है।[६]

कुरुक्षेत्र (४८)

ब्राह्मण क्षत्रियों के युद्धस्थल कुरुक्षेत्र का महाभारत में विस्तृत उल्लेख है।[७]

---

१. ed. H.H. Wilson, p. 46.
२. The Geographical Dictionery of anoient of and Medieval India-Nandlal Day, p. 53.
३. Geographical Aspect of Kalidasa's works, B.C. Low, p. 26-27
४. स्थिर.-पृ. ६०, चारि.-पृ. ६० दक्षि.-पृ. ३३, मल्लि.-पृ.४३, पूर्ण.-पृ. ७३, कृष्ण.-पृ.२९ -३०
५. मनुस्मृति. - २।१७
६. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. १७४
७. महा. भा. वनपर्व- ८३।४, वनपर्व ८३।२०८, शल्यपर्व ५७।७-८

ग्रन्थो[१], व पुराणों[२] में भी इस स्थल का वर्णन है । राजनैतिक दृष्टि से यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल रहा है ।

विल्सन ने पानीपत के समीप थानेसर के दक्षिण पूर्व में कुरुक्षेत्र की स्थिति कही है ।[३] बिमल चरण ला ने सरस्वती के उत्तर में व दृषद्वती के दक्षिण में कुरुक्षेत्र की स्थिति मानते हुए सोनीपत करनाल को भी इसके अन्तर्गत कहा है ।[४]

आधुनिक समय में भी पानीपत के समीप का स्थल कुरुक्षेत्र नाम से जाना जाता है । पर प्राचीन समय में केवल यही स्थल कुरुक्षेत्र नाम से रहा हो-उचित प्रतीत नहीं होता । क्योकि महाभारत में कौरव-पाण्डव युद्ध के समय कुरुक्षेत्र में अट्ठारह अक्षौहिणी सेनाओं का उल्लेख है । उस विश्व विख्यात युद्ध की इतनी विशाल सेना का एकत्रीकरण कुरुक्षेत्र में असम्भव है । सम्भव है कि प्राचीन काल में कुरुक्षेत्र के आसपास के पानीपत, सोनीपत, करनाल, हिसार आदि स्थल भी इसी के अन्तर्गत रहे हों । इन स्थलों की लाल मिट्टी आज भी युद्धों में होने वाली रक्तरंजिता की द्योतक है ।

सरस्वती (४९)

कुरुक्षेत्र वर्णन में कवि ने सरस्वती का उल्लेख किया है । वैदिक साहित्य[५] एवं रामायण[६] में इसका अनेकशः वर्णन है । महाभारत में सरस्वती नामक सात नदियों का उल्लेख है जिनमें से एक नदी को कुरुक्षेत्र में प्रवाहित कहा गया है । यहां बलराम द्वारा सरस्वती सेवन का भी वर्णन है ।[७] मार्कण्डेय पुराण (५७।१६-१८) में सरस्वती का उद्गम स्थल हिमालय पर्वत कहा गया है । किन्तु वामनपुराण (३२।१-५) में इसकी उत्पत्ति प्लक्ष वृक्ष से कह इसे कुरुक्षेत्र प्रवाहिनी कहा गया है ।

शाश्वत (पृ. ८५), भरत. (पृ. ४३) एवं सारो. टीकाकार[८] ने इसकी स्थिति कुरुक्षेत्र में कही है । विल्सन ने इसे कुरुक्षेत्र में दक्षिण-पश्चिम भाग में प्रवाहित होने वाली कहा है जो हिमालय पर्वत के दक्षिणी भाग से गिरती हुई रेगिस्तान की धूल

---

१. ऐतरेय ब्रा. ७।३०, शतपथ ब्रा. ४।१, ५, १३
२. कूर्म पु. ३०।४६-४८, सौर. पु. ६७।१२, पद्म पु. (स्वर्ग खण्ड) ७।७७, वामन. पु. ३३।७
३. ed. H.H. Wilson, p. 47.
४. Geographical Aspect of Kalidasa, s works, p. 3.
५. Geographical Aspect of Kalidasa,s works, B.C. low, p. 23.
६. रामा. - किष्किन्धाकाण्ड, ४०।२१
७. महा. भा. - शल्यपर्व, अ. ३७, ३८, ३९
८. ed. G.R. Nandargikar (Notes), p. 63.

में मिल जाती है।[१] सीताराम चतुर्वेदी ने सरस्वती को पंजाब में सिरमूर राज्य की पहाड़ी से निकलकर थानेश्वर और कुरुक्षेत्र होती हुई सिरसा जिले की कागार (दृषद्वती) नदीं में विलीन होने वाली कहा है।[२]

कनखाल (५०)

कनखल के विषय में कहा गया है-

खलः को नात्र मुक्तिं वै भजते तत्र मज्जनात्।
अतः कनखलं तीर्थं नाम्ना चक्रुर्मुनीश्वराः ॥[३]

दक्षि.(पृ.३५), चारि. (पृ. ६१), मल्लि. (पृ. ४४), व पूर्ण. (पृ. ७६) ने कनखल को पर्वत कहा है। स्थिर. (पृ. ६२), वल्लभ.(पृ.२८) सना. (पृ.८६) सुमति. (पृ. १४८) भरत. (पृ. ४३) कृष्ण. (पृ.३०) व चरणतीर्थ (पृ. ५७) ने इसे एक तीर्थ स्थल कहा है। महाभारत के वनपर्व (१३५।५) में कनखल का बहुवचन में प्रयोग व उसकी पर्वत श्रृंखलाओं का वर्णन है। कथासरित्वसागर (३।४) में भी यह एक तीर्थस्थल कहा गया है।

आधुनिक समय में हरिद्वार के समीप कनखल नाम से प्रसिद्ध स्थल है। यह गंगा के पश्चिमी किनारे पर गांव रूप में बसा हुआ एक पवित्र स्थल है जहां पर अनेक घाट व संन्यासियों के मठ एवं निवास स्थल हैं। कनकल से गंगा का प्रवाह पूर्व व पश्चिम भाग में बंट जाता है। कवि ने कनखल के समीप गंगा का वर्णन किया है। सम्भवतः प्राचीनकाल में भी यहस्थल कनखल नाम से हो, हरिद्वार कनखल की अपेक्षा आधुनिक बसा हुआ है।[४]

गंगा (५०)

कवि ने शैलराजवतीर्णा जह्नोः कन्यां कह गंगा का उल्लेख किया है। यह अत्यन्त पवित्र नदी मानी गई है जिसे भागीरथी, विष्णुगंगा, मन्दाकिनी , त्रिपथगा, आकाश गंगा आदि नामों से कहा जाता है। वैदिक साहित्य[५] रामायण (किष्कन्धा का. ४०।२०) महाभारत (वनपर्व अ. ८) आदि में अनेकशः इसका उल्लेख हुआ है। कवि ने रघुवंश, कुमारसम्भव व विक्रमोर्वशीय में भी इस नदी का उल्लेख किया है।[६]

दक्षि. ने इसकी व्याख्या में लिखा है शैलराजावतीर्णा हिमवतः प्रवृत्तां हिमवतः प्रसूतां च (पृ. ३५) पर पूर्ण. ने हिमालय को गंगा का उत्पत्ति स्थल नहीं माना। उनके मत में शैलराजावतीर्णा हिमवतो भारतवर्षप्रारम्भेऽवतीर्णमात्राम् अवतीर्णा न

१. ed. H.H. wilson, p. 93
२. कालिदास ग्रन्थावली (अभिधान कोष,) पृ. १८३
३. स्कन्द पु. गंगाद्वार महात्म्य
४. कालिदास की कृतियों में भौगो प्रत्यभिज्ञान - पृ. १२७-१२८
५. (क) अकं संहिता, १०।७५
(ख) शतपथ ब्रा., १३।५।४।११
६. रघु. - २।२६, ४।३६,७३, ६।४८, ७।३६, ८।९५, १०।२६ आदि कु.स. -१।१५, ३०, ५४, ६।३८, ७।..., विक्रमो - ४।९

तु जाताम् । अनेन त्रिभुवनविक्रममाणस्य वलिरिपोरुर्ध्व-प्रवृत्तचरणपुण्डरीकवेगखण्डितब्रह्माण्डविवरनिष्ठ्यूतवारिपूरपरिपोषितविरिञ्चकर कुण्डिकाजलोपोद्वलितधर्मदेवताद्रवरुपायाः, शिवजटाजूटविधृतवेगायाः सुमेर्वादिक्रमेण हिमवन्तं यावदागतायाः सुरसरितो भगीरथतोनुरोधेन भारतेऽवतारः न तु नद्यन्तरवत् क्वचन गिरिकुडुङ्गे संभूतरिति ध्वन्यते, तेन तीर्थान्तरेभ्यः प्रकृष्टसुकृतप्रसावकत्वं च । (पृ. ७७-७८)

कैलासनाथ जी ने इसका उद्गम हिमालय की १२८०० की ऊंचाई पर केदारनाथ के उत्तर में स्थित गंगोत्री नामक १६ मील लम्बी हिमकन्दरा से कहा है । यह १५५० मील बहकर गंगा सागर के समीप बंगाल की खाड़ी में विश्राम करती है ।[१]

क्रौञ्चरन्ध्र (५७)

कवि ने भृगुपति यशोवर्त्म एवं हंसद्वार के रूप में क्रौञ्चरन्ध्र का वर्णन किया है । पूर्ण ने क्रौञ्चरन्ध्रं कौञ्चगिरिमध्यवर्त्ति दक्षिणोतरयामेन भूतं छिद्रम् (पृ. ८७) कहकर क्रौञ्चपर्वत के मध्यभाग में दक्षिणोत्तर मार्ग की ओर से ले जाने वाले एक छिद्र का उल्लेख किया है ।

रामायण में भी क्रौञ्चपर्वत के वर्णन में एक विल का उल्लेख मिलता है ।[२] सम्भवतः इसी को कवि ने क्रौचरन्ध्र नाम से कहा है । क्रौच नामक दैत्य का निवास होने के कारण यह पर्वत क्रौचं कहलाया ।[३]

आधुनिक विद्वानों ने कुमायूं जिले में नीति दर्रे को ही कौंचरन्ध्र कहा है ।[४] यह स्थलगंगोत्री के पूर्व में तथा वद्रीनाथ के उत्तर-पूर्व में एवं सतलज नदी के दक्षिण में है । यहां से मानसरोवसरोवर की स्थिति पूर्व में है यही वर्षाऋतु में हंसों मानसरोनवर जाने का मार्ग है ।[५]

कैलास (५८)

कैलास से तात्पर्य कैलं कैलीनां समूहःऽत्र इति कैलासः ।[६] सम्भवतः क्रीड़ास्थल होने के कारण यह कैलाल नाम से कहा गया है । कवि ने रघुवंश (२।३५), कुमारसम्भव (७।३७) में भी कैलास का वर्णन किया है । रामयाण में कैलास की गणना पांच प्रमुख पर्वतों में की गई है ।[७]

टीकाकार इसकी स्थिति के सम्वन्ध में मौन हैं । नन्दलाल डे ने कैलास को तिव्वतियों का कंगरिन पोच कहा है। जो मानसवोर के उत्तर में २५ मील दूर स्थित है । यह गांगरी के पार दार्चिन नाम से प्रसिद्ध है जो नीतिदर्रे के पूर्व में है । उन्होने

१. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ.-९६- ९८
२. रामा. किष्किन्धा का. - ४३.२६-३१
३. कालिदास ग्रन्थावली - रीताराम चतुर्वेदी (अभिधान कोष,) पृ. १४४
४. The Geographical Dictionary of ancient and Medieval India-N. Dey, p. 104.
५. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. ८१-८३
६. कालिदास ग्रन्थावली (अभिधान कोप) , पृ. १४३
७. राम. किष्किन्धा का., ४३।२

कैलाश की पर्वत माला में कुमायूं एवं गढ़वाल की पहाड़ियों को भी सम्मिलित किया गया है। जैनियों का अष्टपाद पर्वत ही कैलाश कहा गया है। शतद्रु., करनाली एवं ब्रह्मपुत्र नदियां भी कैलाश से ही निकली हैं[१]

विमल चरण ला ने कैलास को लद्दाख पर्वत के समानान्तर बताते हुए ५० मील पीछे स्थित कहा है। बद्रिकाश्रम की स्थिति इसी पर्वत पर मानी गई है।[२]

मानसरोवर (६२)

स्थिर. ने इसे देवसरसः (पृ. ७५) कहा है। रामायण में भी इस सरोवर का सम्बन्ध देवताओं से माना गया है।[३] रघुवंश (१३।६०) में कवि ने इसे ब्राह्मसर नाम से अभिहित किया है। ब्रह्मा के मन से उत्पन्न होने के कारण सम्भवतः यह मानसरोवर कहलाया।

अधिकांश टीकाकारों ने मानस का अर्थ मानसरोवर कर इसकी स्थिति का कोई उल्लेख नहीं किया है।

आधुनिक मान्यताएं-

(क) डे ने पश्चिमी तिब्बत के हूण देश में कैलास पर्वत पर मानसरोवर की स्थिति कही है, हूणों द्वारा यह स्थल मोचोपान नाम से जाना जाता है।[४]

(ख) विल्सन ने इसे ब्रह्मपुत्र एवं गंगा नदियों का उद्गम स्थल कहते हुए हिमालय के मध्य में मानसरोवर को कहा है।[५]

(ग) सीताराम चतुर्वेदी ने सरयू नदी के उद्गम भूत मानसरोवर की स्थिति हिमालय के उत्तर में एवं कैलास के दक्षिण में अंजन नामक पर्वत के निकट वैद्युत प्रदेश में कही है ब्रह्मा ने ३० योजन विस्तृत इस पर्वत की स्थापना की थी।[६]

(घ) कैलाशनाथ द्विवेदी के मत में यह सरोवर कैलास एवं गन्धमादन के मध्य में स्थित है। इस सरोवर की परिक्रमा छः दिन में भी की जा सकती है। इसके आरापास ७ गुफाएं एवं ८ मन्दिर हैं।[७]

अलका (६३)

अलका से तात्पर्य है-अलति भूपयति मुखम् (अल् + क्वुन्)[८]। भरत ने भी परमार्थतस्तु अलमत्यर्थ सुखम् अत्रेति अलका पृषोदरादिः (पृ. ५१) कहा है। कवि ने अलका को कैलास के उत्संग में कह गंगा को उसके वस्त्र रूप में

---

१. The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India-N. Dey, p.82.
२. Geographical Aspect of Kalidasa's works, p. 42.
३. रामा. बालकाण्ड, २४।८-९
४. The Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India-N. Dey, p. 123.
५. ed. H.H. Wilson, p. 63.
६. कालिदास ग्रन्थावली (अभिधान कोष,) पृ. १७१
७. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. १३८-४०
८. वाचस्पत्यम् कोष - प्रथम भाग, पृ. ३८६

कहा है । दक्षि. (पृ. ४२), चारि.(पृ.७४), मल्लि. (पृ. ५४) व भरत. (पृ. ५१) ने उत्संग का अर्थ उपरि भाग लेकर कैलास के ऊर्ध्व भाग में अलका की स्थिति कही है । यह मत मान्य प्रतीत नहीं होता जो कैलास अपनी ऊंचाई के लिए जगत् विख्यात् है उसके ऊपरी भाग में यदि अलका की स्थिति है तो उस अलका की आकाश से प्रतिस्पर्धा करने वाली ऊंची ऊंची अट्टालिकाएं किस ऊंचाई पर होंगी–यह कल्पना से परे है ।

पूर्ण. (पृ. ६६) ने उत्संग का अर्थ अधित्यका मध्य लिया है, इस दृष्टि से कैलास के मध्य भाग में अलका की स्थिति कही जा सकती है ।

ए.सी. चन्दोला ने कैलास के समीप अलकनन्दा के तट पर बसी हुई अलकापुरी का उल्लेख किया है । अलका के स्वामी कुबेर से आर्याजाति के लोग स्वर्ण ले जाते थे । यह स्वर्ण कुछ समय पूर्व तक भी अलकनन्दा के पानी व रेत से निकाला जाता था ।[१] भरत. (पृ.५१) ने भी गंगा को अलकनन्दा नाम से कहा है । कैलशनाथ जी ने भी अलकनन्दा (गंगा) के उद्गम स्थल बद्रीनाथ के समीप अलका की स्थिति स्वीकार की है ।[२]

सूर्यनारायण व्यास ने जोधपुर के दक्षिण में ७० मील दूर जालपुर के समीप स्थित सुवर्णगिरि को ही अलका कहा है । वहां एक यक्षवसति स्थल है जो इस बात का द्योतक है कि कभी वहां यक्षों का निवास रहा होगा ।[३] पर कवि ने उत्तर में मेघ का मार्ग निर्दिष्ट किया है..एवं कैलास के अनन्तर ही अलका का वर्णन कैलास के समीप अलका की स्थिति स्पष्ट करता है जबकि सुवर्णगिरि सुदूर मारवाड़ में है ।

आधुनिक समय में अलका का कोई अवशेष प्राप्त नहीं होता सम्भवतः हिमादि के कारण यह कालगर्त में विलीन हो गई हो ।

---

१. Journal of the M.S. Uni. of Baroda, vol. Viii,March, 1969, p. 88.
२. कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थलों का प्रत्यभिज्ञान, पृ. २२४
३. The city of alka in Meghduta, Bhartiya Vidya, Vol, Vol III, part, II, May p. 171.174.

प्रक्षिप्त-श्लोक

मेघदूत के मूल शब्दो के सम्बन्ध में टीकाकार एकमत नहीं हैं। टीकाओं में न्यूनतम ११० व अधिकतम १३० श्लोक दृष्टिगत होते हैं जबकि आधुनिक विद्वान् १११ श्लोक मूल रूप स्वीकार करते हैं।[१]

पुरातन टीकाकार स्थिर. व वल्लभ. १११ श्लोक देते हैं वे ही मूल श्लोक माने जाते हैं। उन श्लोकों में से दक्षि. व पूर्ण. गत्युत्कम्पा..(श्लोक सं.७०) को मूल रूप में ग्रहण न कर कुल ११० श्लोकों पर अपनी व्याख्या देते हैं। यद्यपि दक्षि. ने इस श्लोक को टीका में दिया है। पर न तो इस पर व्याख्या दी है और न ही मूल श्लोक संख्यानुक्रम में इनकी गणना की है।[२] चारि. ने १२२ श्लोक माने हैं। मल्लि. ने १२१ श्लोक दिए हैं पर उनमें से ६ श्लोकों को प्रक्षिप्त कहते हुए अपनी व्याख्या से विभूषित किया है।[३] सुमति. ने १२६ व सारो. ने १२५ श्लोक दिए हैं सना. व शाश्वत. ११५ श्लोक मानते हैं। शाश्वत श्लोक सं. १८ के रूप अध्वक्लान्तं...श्लोक को देकर प्रक्षिप्त कह व्याख्या से अलंकृत करते हैं। भरत. ने ११४, कृष्ण. ने ११२ व चरणतीर्थ ने १२७ श्लोक दिए हैं। चरणतीर्थ की टीका के अन्त में ३ श्लोक अन्य भी मिलते हैं। जो टीकाकार ने प्रक्षिप्त कहते हुए व्याख्या से संवलित किए हैं।

ई. हुल्स के संस्करण में १९ श्लोक प्रक्षिप्त रूप में दिए गए हैं। यहां उन श्लोकों को उसी पाठक्रम से ग्रहण करते हुए जो थोड़ी बहुत पाठ-भेद का अर्थभेद सम्बन्धी सामग्री टीकाओं में प्राप्त होती है, उसका संकलन किया गया है।

इन १९ श्लोकों में से, ८,९,१० व १४ श्लोक दक्षि. की टीका में[४] तृतीय श्लोक स्थिर. की टीका[५] व प्रथम श्लोक वल्लभ. टीका[६] में प्राप्त होता है। पर इन टीकाकारों ने इन श्लोकों का प्रक्षिप्त रूप में ही उल्लेख किया है। वे श्लोक मूल श्लोकसंख्यानुक्रम में भी नहीं अपनाए गए हैं। दक्षि. ने तो उन पर अपनी व्याख्या भी नहीं दी है।[७] स्थिर. ने केचित् प्रक्षेपकमिदमिति वदन्ति कहते हुए

---

१. Ed. S.K. De (Sahitya Akademi).
२. दक्षि. टीका – पृ. ४७
३. प्रक्षिप्त श्सोक संख्या क्रम में २,३,४,५,६ और ७ मल्लि. की दृष्टि में प्रक्षिप्त हैं,
४. दक्षि. टीका – पृ. ४५,४७,४८,६९
५. स्थिर.टीका – पृ. ४३
६. ed. E. Hultzsch, p. 59.
७. दक्षि. टीका – पृ. ४५,४७,४८,६९

हारास्तारां..की व्याख्या की है [१] एवं वल्लभ. ने १७ वे श्लोक के बाद एतदनुकारी क्वचिदयमपि श्लोको विद्यते कह अध्वक्लान्तं...श्लोक की व्याख्या दी है। [२]

जहां तक टीकाओं में उल्लिखित प्रक्षिप्त श्लोकों के संख्यानुक्रम का सम्बन्ध है उसे परिशिष्ट में दी गई तालिका में स्पष्ट कर दिया है।

(१)

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगतं सानुमानाम्रकूट
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः।
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाधमग्निं
सत्कारार्द्रः फलति नचिरेणोपकारो महत्सु ॥

चारि., सुमति., सना., कल्याण., कविरत्न,कृष्णदास, भरत. व कृष्ण. ने इस श्लोक को ग्रहण किया है। वल्लभ. व शाश्वत. ने प्रक्षिप्त मानते हुए भी इस पर व्याख्या दी है-

(क) श्लाघमानः-इसके अर्थ को टीकाकारों ने इस प्रकार से दिया है-

वल्लभ.-सर्वोन्नतोऽपि जलधरोऽत्र विश्राम्यतीत्यद्रेः श्लाघात्र (पृ.६०)

चारि.-ने श्लाघ्यमानः पाठ देते हुए कहा है-श्लाघ्यत इति श्लाघ्यमानः प्रशस्यमानः आम्रकूटः (पृ. २४)

सना.-श्लाघमानः, अर्थादात्मानं प्रशंसमानः (?) श्लाघ्योऽस्मि यत्वया ईदृशेन सख्या सम्भावितोऽस्मि इत्यादि (पृ .४०)

शाश्वत.-श्लाघमानः स्तुवन् धन्योऽस्मि सुप्रातम् अथ अस्माकं यद्भवान् आगत इत्यादिक्रमेण (पृ.४०)

भरत.-श्लाघमानः सन्तापशान्तिहेतुत्वात् आगच्छ विश्वोपकारक क्षेमं ते इत्यादि वाग्भिस्तुवन्...त्वामित्यस्य श्लाघमान इत्यनेन वक्ष्यतीत्यनेन सम्बन्धः, किं वा त्वदागमनेनधन्योऽयं सुप्रातं जीवितोऽस्मीत्यात्मनःश्लाघां कुर्वाणः। (पृ. १९)

सुमति. व चरणतीर्थ ने वक्ष्यति श्लाघमानः के स्थान पर धारयिष्यत्यवश्यम् पाठ दिया है।

(ख) सत्कारार्द्र -वल्लभ. ने सत्कारार्द्रः चारि., सुमति, ., सना., शाश्वत., भरत., कृष्ण व चरणतिर्थ ने सद्भावार्द्रः पाठ देते हुए इस प्रकार व्याख्या की है-

वल्लभ.-पूजार्द्र उपकारो यो विधीयते (पृ. ६०)

चारि:- संश्चासौ भावः सद्भावस्तेनार्द्रः समीचीनभावसहकृतः (पृ.२४)

सुमति.-सद्भावार्द्रः सम्यक्स्नेहरससहितः...सद्भावेति सद्भावेन भव्याभिप्रायेणार्द्रः सरागः सद्भावार्द्रः। (पृ . १०९-१०)

सना.-उपकारः किम्भूतः ? सद्भावार्द्रः गोरवाद्यः, स्निग्ध इत्यर्थ। (पृ. ४०)

---

१. स्थिर. टीका - पृ.४३-४४
२. ed. E. Hultzsch, p. 59.

शाश्वत-सद्भावार्द्रः स्वरूपेणेव स्निग्धः (पृ.४१)

भरत.-सन् प्रशस्तो यो भावोऽन्तर्निगूढेच्छा तेनार्द्रः स्निग्धो...सद्भावार्द्र इति त्वमित्यस्य विशेषणं, सद्भावो विशुद्धाशयता किं वा विद्यमानभावः सजलता तेन चार्द्रः सस्नेहः स्तिमितो वा, एतेनागन्तुना प्राप्तादरेण शक्त्यनुरूपप्रत्युपकारो विधेयःइत्युक्तम् स्निग्धस्तिमितयोरार्द्रः कोमलानिष्ठुरात्मनो रिति बलः (पृ.१९)

चरणतीर्थ-कथंभूतः उपकारः सद्भावार्द्रः शोभनभावेनार्द्र सरसः स्नेहयुक्तः (पृ. २०)

(ग) आम्रकूटः -वल्लभ. चारि., सुमति., व चरणतीर्थ ने यहां आम्रकूटः पाठ दिया है। एवं सना., शाश्वत, भरत व कृष्ण. ने चित्रकूटः पाठ अपनाया है।

(घ) नचिरेण-वल्लभ. व चरणतीर्थ ने नचिरेण को समस्त पद माना है। चारि., सुमति., सना., शाश्वत., भरत. व कृष्ण ने न चिरेण को अलग अलग पद रूप में दिया है। भरत. ने दोनों ही पाठों के अर्थ में को स्पष्ट करते हुए कहा है-चिरेण विलम्वेन न फलति अपि तु सद्य एव फलति...नचिरेण समस्तं वा, समासनञोऽतो विभाषितत्वात्, अचिरेण शीघ्रमित्यर्थः। (पृ. १९)

(२)

अम्भोविन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो वलाकाः।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥

चारि., सुमति., सना., शाश्वत., सरस्वती, मल्लि., कविरल, कृष्णदास, कल्याण व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है-

(क) चतुरान्

चारि., सुमति., सना०, शाश्वत., भरत. व चरणतीर्थ ने यहां रभसान् पाठ दिया है। चारि. (पृ. २८) शाश्वत. (पृ. ४७), सना. (पृ. ४६) एवं भरत. (पृ. २३) ने इसका अर्थ हर्ष दिया है।

मल्लि ने चतुरान् पाठ देते हुए कहा है-सर्वसहापतितमम्बु न चातकस्य हितम्इति शास्त्राद्भूस्पृष्टोदकस्य तेषां रोगहेतुत्वादन्तराल एव स्वीकारे। चतुरांश्चातकान् (पृ.१८)

(ख) सोत्कम्पानि

चारि., सुमति., मल्लि. व चरणतीर्थ ने यहां सोत्कण्ठानि पाठ दिया है। सना., शाश्वत व भरत. सोत्कम्पानि पाठ ग्रहण करते हैं.

(ग) त्वामाराद्य

टीकाकारों ने त्वामासाद्य का भिन्न-भिन्न प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करते हुए मानयिष्यन्ति को इस रूप में कहा है-

चारि.-त्वामासाद्य भवन्तं प्राप्य...आलिङ्गनानि मानयिष्यन्ति (पृ. २८)

सुमति.-देवविशेषाः सोत्कण्ठानि उत्कण्ठायुक्तानि उत्साहयुक्तानि मानयिष्यन्ति अनुभविष्यन्तिः...किं कृत्वा ? त्वां मेघमासाद्य (पृ. ११४)

सना.-सिद्धास्त्वां मानयिष्यन्ति...आलिङ्गनानि आसाद्य (पृ. ४६)

शाश्वत-सिद्धाः स्तनितमसये प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि मानयिष्यन्ति अनुभविष्यन्ति (पृ. ४६)

मल्लि.-आलिङ्गितान्यासाद्या स्वयं ग्रहणाश्लेषसुखमनुभूयेत्यर्थः त्वां मानयिष्यन्ति त्वन्निमितत्वात्सुखलाभस्येतिभावः (पृ. १८)

भरत.-आश्लेषान् आसाद्य प्राप्य त्वां मानयिष्यन्ति श्लाघयिष्यन्ति। मानिन्यो हि मेघध्वनिससम्भ्रान्ताः कान्तमालिङ्गन्ति अतएव तत्कालदुर्लभमानिन्यालिङ्गनलाभेन साधु चेष्टितमस्य धन्योऽयमिति करिष्यन्तीत्यर्थः। त्वामासाद्यआलिङ्गनानि मानयिष्यन्तीत्यन्ये (पृ. २३)

चरणतीर्थ-देवविशेषाः त्वां मानयिष्यन्ति पूजयिष्यन्ति.. आलिङ्गनानि आसाद्य. त्वां मानयिष्यन्ति गर्जितकारणेनेव सिद्धाङ्गनानां सोत्कण्ठालिङ्गनानि जातानि इति हेतोः तव सम्मानं करिष्यन्ति (पृ. २६)

(३)

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्टवा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणा च भङ्गा-
न्संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥

चारि., सुमति., मल्लि., सरस्वती, मकरन्दमिश्र, व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है। स्थिर. ने भी प्रक्षिप्त कहते हुए इस पर व्याख्या दी है।

(क) तरल गुटिकान्

स्थिर. व सुमति., ने तरलगुलिकान्, चारि.. व मल्लि. ने तरलगुटिकान् एवं चरणतीर्थ ने तरलगुटकान् पाठ देते हुए लिखा है-

सुमति.-तरलगुलिकान्तरलनायकमणीम्। ...तरलेति हार मध्ये स्थितं रत्नं नायकं तरलं विदुः इति। ते एव गुलिकाः येषु ते तान्तरलगुलिकान्। गुलिकाकारतरलाकृतान्हारानित्यर्थः। (पृ. १२३-२४)

चारि.- तरला भास्वरा गुटिका येषु ते तान्। ...तरलं चंचले षिङ्गे भास्वरेऽपि त्रिलिङ्गकमि ति। (पृ.४०)

मल्लि.-तरलगुटिकान्मध्यमणीभूतमहारत्नान्। तरलो हारमध्यगः इत्यमरः। पिण्डे मणो महारत्ने गुटिका बद्धपारदे इति शब्दार्णवे। (पृ.२८)

चरणतीर्थ-तरलाः तेजोलहरिद्योतकाः मनोहराः हारेषु जटिता बद्धपारदगुटिकास्तासां तारकवत् प्रकाशकत्वात्ताः येषु तान्। (पृ. ३८)

(४)

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्ने
हैमं तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।

अत्रोदभ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पादटय
दर्पादित्यागन्तून् रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ।।

चारि., सुमति., मल्लि., सरस्वती, मकरन्दमिश्र व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है ।

(५)

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ।।

चारि., सुमति., मल्लि., सारो., सरस्वती व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है । मल्लि. व सरस्वती ने इसे पूर्वमेघ में दिया है । जबकि अन्य टीकाकार उत्तरमेघ में रखते हैं ।

(क) पत्रश्यामा

चारि. व मल्लि. ने पत्रश्यामा सुमति. व चरणतीर्थ ने शष्पश्यामा एवं सारो. ने सस्यश्यामा पाठ देते हुए प्रकार व्याख्या दी है-

चारि.-पत्रश्यामा पलाशवन्नीलवर्णाः पाठान्तरे शष्पश्यामाः बालतृणवन्नीलाः (पृ. ४२)

मल्लि.-पत्रश्यामा पलाशवर्णाः (पृ.२९)

सुमति.-शष्पश्यामा वाणतृणवत्समानश्यामाः (पृ. १६३)

चरणतीर्थ-शष्पश्यामा शष्पं गाढहरितवर्णं ईषत्छ्यामं हरिततृणं तत्सदृशाः अश्वाः (पृ. ७३)

सारो.-सस्यश्यामाः हरितनीलाः पत्रश्यामा इति नागवल्लीदलवत् नीलाः (पृ.८२)

(ख) प्रभेदात्

चारि., सुमति., मल्लि. व चरणतीर्थ ने प्रभेदात् पाठ दिया है। सारो. टीकाकार ने प्रमोदात् कहा है ।

(ग) प्रतिदशमुखं

चारि. व मल्लि. ने प्रतिदशमुखं को समस्त पद माना है । सारो . ने प्रति दशमुखं को अलग-अलग दिया है । सुमति. व चरणतीर्थ ने प्रतिदिशमुखं पाठ दिया है अर्थ में भी भिन्नता दृष्टिगत होती है-

चारि.-दशमुखं रावणं प्रति (पृ.४२)

मल्लि.-प्रतिदशमुखमभिरावणं (पृ. २९)

सारो.-दशमुखं रावणं प्रति (पृ.८३)

सुमति.-प्रतिदिशमुखं प्रतिदिशं (पृ.१६३)

चरणतीर्थ- प्रतिदिशमुखं प्रत्येकदिशायां दिशं दिशं प्रति । (पृ. ७३)

(६)

यत्रोन्मतभ्रमरमुखराः पादपा नित्युष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाप्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ।।

सुमति., मल्लि., सारो., सरस्वती,व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को लिया है ।

(क) यत्रोन्मतभ्रमरमुखराः

मल्लि. व सुमति. ने उपरोक्त पाठ लिया है, सारो. व चरणतीर्थ ने यस्यांमत्त भ्रमरमुखराः कहा है ।

(ख) रचितरशना

मल्लि. व चरणतीर्थ ने रचितरशना एवं सारो. व सुमति. ने रचितरसना कहा है ।

(ग) नित्यज्योत्स्ना

सुमति. व मल्लि. ने नित्यज्योत्स्नाः एवं सारो. चरणतीर्थ ने नित्यज्योत्स्ना कहा है ।

(७)

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमितै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।
नाप्यन्यत्रप्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति
र्वितेशानां न खलु च वयो यौवनादन्यदस्ति ।।

चारि., सुमति., मल्लि., सारो., सरस्वती व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है ।

(क) नाप्यन्यत्र

चारि., सुमति. व चरणतीर्थ ने यहीं पाठ दिया है। एवं मल्लि. व सारो. ने नाप्यन्यस्मात् कहा है ।

(ख) न खलु च वयो

चारि., सुमति., मल्लि., सारो. व चरणतीर्थ ने न च खलु वयो पाठ ग्रहण किया है ।

(ग) नयनसलिलं

सुमति. ने सलिलनयनं कहा है । (८)

मन्दाकिन्याः सलिलनयनं सेव्यमाना मरुद्भि
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ।।

चारि., सुमति., मल्लि., सारो. व चरणतीर्थ की टीका में यह श्लोक प्राप्त होता है ।

(क) कन्याः

टीकाकारों ने इसकी व्याख्या में कहा है-

सुमति.-कन्याः देवकन्याः (पृ. १७१)

मल्लि.-कन्याः यक्षकुमार्यः कन्याकुमारिकानार्याः इति विश्वः (पृ.५९)

सारो.-कन्याः कुमारिकाः...यद्यपि कन्याशव्दो नार्यां कुमार्यां च तथाप्यत्र बालिका एव गृह्यन्ते । (पृ. ९०-९१)

चरणतीर्थ-कन्याः यक्षकुमारिकाः (पृ. ८२)

(ख) कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढ़ैः

चारि.-कनकमयीषु सिकतासु बालुकासु मुष्टि निक्षेपेणगूढैर्गुप्तैः (पृ.८१)

सुमति.-कनकेति कनकस्य सुवर्णस्य सिकतासु बालकासु मध्ये मुष्टिना योऽसौ निक्षेपः तेन गूढ़ाः गुप्ताः (पृ. १७१)

मल्लि.-कनकस्य सिकतासु मुष्टिभिर्निक्षेपेण संवृत्तैः...गूढ़मणिसंज्ञया रत्नादिभिर्वालुकादौ गुप्तैर्द्रष्टव्य-देशिकक्रीडया क्रीडन्तीत्यर्थः ।...रासक्रीड़ा कर्मभिः । कुमारीभिः कृता क्रीड़ा नाम्ना गूढ़मणिः . स्मृता । पिच्छकन्दुकदण्डाद्यै स्मृता देशिकके-गूढ़मणिर्गुप्तकेलिस्तु लायनम् । लयः इति शव्दार्णवे । (पृ. ५९)।

सारो.-कनकस्य सिकता बालुका तस्या मुष्टिः संकुचिताङ्गुलीकः करः तस्य निक्षेपः प्रेरणं तेन गूढागुप्तास्तैः । (पृ. ९०)

चरणतीर्थ-कनकस्य स्वर्णस्य सिकता वालुका रेतिः तस्याः मुष्टिः: तत्र निक्षेपः न्यासः तेन गूढ़ै गुप्तैः । (पृ.८२)

(९)

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यह रक्तकण्ठै
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम् ।
वैभ्राजाख्यं विवुधवनितावारमुख्यासहाया
वद्धालापावहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ।।

(क) अक्षय्य.

मल्लि. ने यह पाठ लिया है । सुमति., सारो. व चरणतीर्थ ने अक्षीण. पाठ दिया है ।

(ख) वद्धालापा

मल्लि. व चरणतीर्थ वद्धालापा एवं सुमति. व सारो. बद्धापानं पाठ देते हुए कहा है-

मल्लि.-वद्धालापाः संभावितसंलापाः (पृ. ६२)

चरणतीर्थ-बद्धालापाः वद्धाः संप्रवेशिताः साधिताः रागाणां आलापाः यैस्ते (पृ. ८०)

सुमति.-वद्धेति बद्धं रचितमापानं पानगोष्ठी यत्र तत्र बद्धापानम् । (पृ. १७२)

सारो.-वद्धापानं रचितपानगोष्ठीकम् । (पृ. ८९)

(१०)

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयेर्भूषणानां विकल्पम् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ।।

सुमति., मल्लि., सारो., सरस्वती व चरणतीर्थ ने यह श्लोक दिया है ।

(क) किसलयै .

मल्लि. व चरणतीर्थ ने किसलयै. एवं सुमति. व सारो. ने किशयलै. पाठ दिया है ।

(११)

स्निग्धाः सख्यः क्षणमपि दिवा तां न मोक्ष्यन्ति
तन्वी मेकप्रख्या भवति हि जगत्यङ्गनानां प्रवृत्तिः ।
स त्वं रात्रौ जलद शयनासन्नवातायनस्थः
कान्ता सुप्ते सति परिजने वीतनिद्रामुपेयाः ।।

कृष्णदास विद्यावागीश व कविरत्न ने इस श्लोक की व्याख्या दी है ।[१] मकरन्द मिश्र ने केवल श्लोक दिया है, टीका नहीं दी ।[२] चरणतीर्थ की टीका के अन्त में दिए गए प्रक्षिप्त श्लोकों में भी इसकी गणना है ।

मेघदूत के श्लोक सं. ८६ में उपरोक्त श्लोक का भाव पूर्णतया परिलक्षित हो जाता है। उसे दृष्टिगत कर यह श्लोक केवल पुनरावृत्ति मात्र ही कहा जा सकता है । अतः यह किसी प्रकार मेघदूत के मूल श्लोकों में ग्राह्य नहीं है ।

(क) मेकप्रख्या

चरणतीर्थ ने मेकप्रख्या एवं कविरत्न व कृष्णदास ने मेकप्रेक्ष्या पाठ दिया है ।

(ख) जगत्यङ्गनानां

चरणतीर्थ ने यह पाठ एवं कविरत्न व कृष्ण ने जगत्युत्तमानां पाठ दिया है ।

(१२)

अन्वेष्टव्यामवनिशयने संनिकीर्णैकपार्श्वां
तत्पर्यन्तप्रगलितलवैश्छिन्नहारैरिवास्त्रैः ।
भूयो भूयः कठिनविषमां सारयन्तीं कपोला-
दामोक्तव्यामयमितनखेनैकवेणीं करेण ।।

मकरन्दमित्र ने इस श्लोक को दिया है ।[३] चरणतीर्थ की टीका के अन्त में भी प्रक्षिप्त श्लोक रूप में इसकी व्याख्या की गई है ।[४] मेघदूत के ८५ व ८७

१. ed. J.B. Cahudhry, p. 137-138.
२. वही (भूमिका भाग), पृ. ४९
३. ed. J.B. Chaudhry (Intro), p. 49.
४. चरणतीर्थ टीका – पृ. १३४

श्लोक में उपरोक्त श्लोक का भाव दृष्टिगत होता है। अतः यह श्लोक केवल पुनरावृत्ति मात्र ही कहा जा सकता है।

(क) तत्पर्यन्त.

चरणतीर्थ ने तत्पर्यक पाठ दिया है।

(१३)

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चबाणः क्षिणोति ।
धर्मान्तेऽस्मिन्विगणय कथं वासराणि व्रजेयु
र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि ।।

सुमति., सारो., कल्याण., कविरत्न, कृष्णदास, भरत., कृष्ण व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को ग्रहण किया है।

(क) धारासिक्तस्थलसुरमिण.

इसकी व्याख्या टीकाओं में इस प्रकार दी गई है-

सुमति.-धारेति धारया सिक्तानि सिंचितानि तद्वत्सुरभितस्तस्य। (पृ. १९७)

सारो.-धारया सिक्तमार्द्रीकृतं यत् स्थलं तत् धारासिक्तस्थलं धारासिक्तस्थलवत् सुरभि सुगन्धि। (पृ. ११९)

भरत.-धाराभिः सिक्तमुक्षितं, यत् स्थलं तद्वत् सुरभिणः सुगन्धिनो...ननु धारावृष्टो सुरभित्वं नास्ति बिन्द्वल्पवर्षे हि तद्भवति कथं धारेत्युक्तम्? उच्यते, अल्पर्षणार्थं सिक्तग्रहम्, अन्यथा धारापातेति कृतं स्यात्, धाराभिरसिक्तम् अल्पसिक्तम्, अल्पार्थे नञ् इति व्याख्येयम्। नयनसलिलस्मरणाद्धि धाराग्रहणम्। (पृ. ७८)

चरणतीर्थ-धारया मदिरधारया सिक्तं यत् स्थलं पृथ्वीस्थलं तद्वत् अथवा जलधारया छिद्रवज्झारेण सिक्तं ग्रीष्मतापेन संतप्तं यत्पृथ्वीस्थलं तद्वत् सुरभिणः सुगन्धस्य (पृ. ११६)

(ख) क्षिणोति

सुमति., व सारो. ने क्षणोति एवं भरत., कृष्ण व चरणतीर्थ ने क्षिणोति पाठ दिया है।

(ग) विगणय

सारो., भरत. कृष्ण. व चरणतीर्थ ने यह पाठ दिया है। पर सुमति.ने विगमय पाठ देते हुए व्याख्या में विगणय विचारय (पृ. १९७) ही कहा है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि लिपि में प्रमादवश विगमय पाठ दे दिया गया है।

(घ) प्रवितत

सुमति., सारो., भरत., कृष्ण. व चरणतीर्थ ने यहां प्रविरल पाठ दिया है। भरत. ने व्याख्या में दोनों ही पाठों को स्पष्ट करते हुए लिखा है-ननु वर्षमेघो व्यापक एव भवति न तु विरलः कथं प्रविरलेत्युक्तम्? उच्यते, एवम्भूतस्य दिनस्य दुःसहत्वाद् यदेवं भवति तदेति बोध्यम्। विरलं विरलतादिकं संसक्तं विरलं यस्येति कर्मप्रधानेन

समासः । किं वा क्वचिद्दिक्षु सभ्यग् व्यापकत्वेनासक्तः क्वचिद् प्रविरल इति । प्रविररलेत्यत्र प्रविततेति पाठे आदौ दिक्संसक्तः पश्चात् प्रवितत इतस्ततो गतः (पृ. ७८)

(ड) घनव्यस्त

सारो., भरत. व चरणतीर्थ ने यह पाठ दिया है । सुमति. ने भी श्लोक में यही पाठ दिया है । पर व्याख्या में लिखा है – व्यक्तः विक्षिप्तः (पृ. १९७) । यहां पर भी लिपि प्रमादता ही व्यक्त होती है क्योकि व्यक्तः का विक्षिप्त अर्थ कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता । कृष्ण. ने घनाव्यक्त पाठ देते हुए कहा है–घनास्तैरव्यक्तः (पृ.५२)।

(१४)

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः ।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ।।

चारि., सुमति., मल्लि., सारो., सना., सरस्वती, कल्याण. व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है ।

(क) ते

चारि., सुमति., व चरणतीर्थ ने तां पाठ एवं मल्लि व सारो. ने ते पाठ दिया है ।

(ख) कूटान्निवृत्तः

चारि., सुमति., मल्लि., सारो. ने यह पाठ एवं चरणतीर्थ ने श्रृंगान्निवृत्तः पाठ दिया है ।

(१५)

इत्याख्याते सुरपतिसखः शैलकुल्यापुरीषु
स्थित्वा स्थित्वा धनपतिपुरीं वासरैः कैश्चिदाप ।
मत्वागारं कनकरुचिरं लक्षणैः पूर्वमुक्तै
स्तस्योत्सङ्गे क्षितितलगतां तां च दीनां ददर्श ।।

केवल चरणतीर्थ की टीका के अन्त में प्रक्षिप्त श्लोक के रूप में इसकी व्याख्या की गई है । [१]

(क) मत्वागारं

चरणतीर्थ की टीका में गत्वागारं पाठ मिलता है ।

(१६)

तस्मादद्रेर्निगदतपथः शीघ्रमेत्यालकायां
यक्षागारं विगलितनिभं दृष्टचिन्हैर्विदित्वा ।

१. चरणतीर्थ टीका – पृ. १३२

यत्संदिष्टं प्रणयमधुरं गुह्यकेन प्रयत्ना
त्तद्रोहिन्याः सकलमवदत्कामरुपी पयोदः ।।

सुमति. व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है।

(क) निगदितपथः

सुमति.ने निगदितवचः एवं चरणतीर्थ ने निगदिततया पाठ दिया है।

(ख) विगलितनिभं

सुमति. ने विगलितविभं एवं चरणतीर्थ ने विगलित शुचा पाठ देते हुए इस प्रकार व्याख्या की है-

सुमति.-ने इसे यक्षागारम् का विशेषण मानते हुए कहा है-

कथभूतं यक्षागारम्? विगलितविभं निःश्रीकम् (पृ. २०८)

चरणतीर्थ ने इसे गुह्यकेन का विशेषण माना है-विगलितशुचा सन्देशप्रेषणोत्थानानन्देन मेघप्रयाणेन च विगलितः निवृत्तः शोको यस्यासौ तेन, विगलितशुचा गतशोकेन गुह्यकेन (पृ. १२८)

(ख) दृष्टचिह्नैः

सुमति. ने दृष्टिचिह्नै एवं चरणतीर्थ ने पूर्वचिन्है पाठ दिया है। सुमति. के शव्दो में-दृष्टिचिह्नैः उक्तचिह्नैः ...दृष्टीति दृष्टिभिश्च चिह्नैश्च दृष्टिचिह्नैः । (पृ. २०८-९)

(१७)

तत्सन्देशं जलधरवरो दिव्यवाचा चचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरवो रक्षितुं रक्षवध्वाः ।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः सापितस्थो स्वभर्तुः
केषां न स्यादिभिमतफला प्रार्थनाह्युत्तमेषु ।।

चारि., सुमति., सारो., सरस्वती व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है।

(क) दिव्यवाचा चचक्षे

चारि. व सुमति., ने दिव्यवाचाचचक्षे को समस्त रूप में दिया है एवं सारो. व चरणतीर्थ ने दिव्यवाचा चचक्षे कहा है।

(ख) जनहितरवो

चारि., सुमति., सारो. व चरणतीर्थ ने जनहितरतो पाठ दिया है।

(ग) सापि

चारि. व सारो., ने सापि एवं सुमति. व चरणतीर्थ ने साऽपि कहा है।

(१८)

श्रुत्वा वार्त्तां जलदकथितां तां धनेशोऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयः संविधायास्तकोपः ।
संयोज्येतौ विगलितशुचौ दंपती हृष्टचितौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ।।

चारि., सुमति., सारो., सरस्वती व चरणतीर्थ ने इसे दिया है।

(क) सुखं

चारि., सुमति. व चरणतीर्थ ने सुखं एव सारो. ने सुखान् कहा है।

(ख) भोजयामास

सुमति. ने प्रापयामास एवं चारि., सारो. व चरण ने भोजयामास कहा है।

(१९)

इत्थंभूतं सुचरितपदं मेघदूताभिधानं
कामक्रीडाविरहितजने विप्रयोगे विनोदः।
मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः कवीनां
नत्वार्यायाश्चरणकमलं कालिदासश्चकार ।।

सुमति., कल्याण. व चरणतीर्थ ने इस श्लोक को दिया है-

(क) सुचरितपदं

चरणतीर्थ ने उपरोक्त पाठ एवं सुमति. ने सुचरितमतं कहा है।

(ख) विप्रयोगे

सुमति. ने विप्रयोगे एवं चरणतीर्थ ने दुःखयुक्ते कहा है।

(ग) मेघस्यास्मिन्नतिनिपुणता बुद्धिभावः

यहां सुमति. ने मेघश्चास्मिन्नति निपुणता बुद्धिभावे पाठ एवं चरणतीर्थ ने कामं चास्मिन् मतिनिपुणतानन्यभावः कहा है।

(घ) नत्वार्याया.

सुमति. ने यही पाठ एवं चरणतीर्थ ने नत्वाऽऽर्याया. पाठ दिया है।

उपसंहार

टीक्यते गम्यते ग्रन्थार्थोऽनया से स्पष्ट है कि किसी भी शास्त्र, ग्रन्थ अथवा काव्य के पूर्ण अर्थावबोध के लिए टीकाएं अत्यन्त उपादेय हैं। टीका गुरुणां गुरु कथन अक्षरशः सत्य है, गुरु भी अपने सन्देश का निवारण टीकाओं द्वारा ही करते हैं। मेघदूत के टीकाकारों ने कोष ग्रन्थो व व्याकरणिक सूत्रों को उद्धृत करते हुए काव्य के गूढार्थ को स्पष्ट किया है। अत्यन्त सरल शैली में लिखी गई स्थिर की व्याख्या में व्याकरणिक दृष्टि से शब्दो का स्पष्टीकरण व अलंकारों की छटा का प्राधान्य है। वल्लभटीका संक्षिप्त होते हुए भी अपनी प्रांजल एवं सारगर्भित भाषा से विद्वज्जनों का पूर्णतया अनुरंजन करती है। दक्षि. की टीका का पाठ-भेद की दृष्टि से प्रमुख वैशिष्टय है। सबसे भिन्न पाठ देते हुए उसकी महत्ता को टीकाकार ने अत्य सुचारू रूप से सिद्ध करने का प्रयास किया है। चारि. टीका कई स्थलों पर दक्षि. की टीका से समानता लिये हुए है। सरल व संक्षिप्त होते हुए भी यह टीका भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से पूर्णतया सशक्त है। पूर्ण. ने विस्तृत व्याख्या पद्धति को अपनाया है। भाषा दुरुह, है। एवं दीर्घसमासों के परिवेश में कई स्थलों पर अर्थावबोध में क्लिष्टता आ गई है तथापि कोष, ग्रन्थो, व्याकरणिक सूत्रों व अलंकार सम्बन्धी उद्धरणों की दृष्टि से टीका स्वयं में अत्यन्त समृद्ध है। सुगम भाषान्वित मल्लि. की टीका में अपने से पूर्ववर्ती टीकाकारों के मतों का उल्लेख यत्र-तत्र किया गया है। दोषा वाच्या गुरोरपि को दृष्टिगत कर टीकाकार ने उन मतों का खण्डन किया है जिसे उसकी प्रतिभा एवं विमर्श सम्पन्न बुद्धि उचित नहीं समझती। सना. एवं शाश्वत ने भी संक्षिप्त व सरल भाषा द्वारा मेघदूत के भावार्थ का प्रकाशन किया है। सारोद्धारिणी टीका स्थिर. की व्याख्या शैली की अनुकरणकर्त्री कही जा सकती है। सुमति. ने प्रश्नोत्तर शैली को अपनाते हुए अत्यन्त सुगम भाषा में व्याख्या दी है। इन्होने अनेक प्रक्षिप्त श्लोकों को भी व्याख्या से अलंकृत किया है। भरत टीका विस्तृत व्याख्या पद्धति को लिए हुए है पर व्याख्या में भावों की नवीनता परिलक्षित नहीं होती। टीकाकार ने अधिकांश स्थलों पर पूर्ववर्ती टीकाकारों के मतों को ही केचित् के द्वारा व्यक्त कर दिया है। फिर भी भरत की व्याख्या भावाभिव्यक्ति का उत्कृष्ट साधन है। कृष्ण. ने यद्यपि विस्तृत व्याख्या नहीं दी फिर भी अधिकांश स्थलों पर भरत से समानता किये हुए हैं। टीका का प्रमुख वैशिष्टय एक शब्द के अनेक अर्थ दे जाना है-ऐसे स्थलों पर टीकाकार ने इस बात का ध्यान नहीं रखा है कि प्रसंगानुकूल कौन-सा अर्थ अभीष्ट है। चरणतीर्थ की टीका में केवल भाव-प्रकाशन को ध्यान में रखा गया है।

इसीलिए शव्दार्थ के स्पष्टीकरण के लिए लोकभाषा में प्रयुक्त शव्दो का यत्र-तत्र प्रयोग दृष्टिगत होता है।

अर्थ की दृष्टि से टीकाओं का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कवि द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शव्द अपने कलेवर में अर्थ की किस गहनता, विशदता, सुचारुता व पूर्णता को लिए हुए है, उसका अवलोकन टीकाओं के अध्ययन बिना नहीं हो सकता। उदाहरणणार्थ केचित् शव्द के विषय में ये सम्भावनाएं टीकाओं के सूक्ष्म-अध्ययन का ही परिणाम है-

(क) क एवं चित् द्वारा जीवेश्वर की एकता का प्रतिपादन किया गया है।
(ख) मंगलवाची क द्वारा काव्य का प्रारम्भ हुआ है।
(ग) खण्डकाव्य होने के कारण कश्चित् से काव्य का प्रारम्भ है।
(घ) अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः के आधार पर कश्चित् से मेघदूत का प्रारम्भ हुआ है।
(ड) शापग्रस्त होने के कारण नायक के नाम का निर्देश नहीं हुआ।
(च) स्वामीद्रोही होने के कारण यक्ष का नाम नहीं लिया गया।
(छ) कश्चित् ही यक्ष का नाम है।
(ज) काव्य के कल्पित होने के कारण कश्चित् कहा गया है।

सरसनिचुलात् (मेघ. १४) के सन्दर्भ में ये धारणाएं व्याख्याओं द्वारा ही बोद्धगम्य हैं-

(क) इसके द्वारा कवि ने वर्षा ऋतु का बोध कराया है।
(ख) वृक्षपल्लवितो अग्रत यात्रा में शुभ कहा गया है। मेघ भी यात्री है ऐसे सरसनिचुल वृक्ष का मेघ द्वारा दर्शन कार्य सिद्धि का सूचक है।
(ग) यह वृक्ष उपनदियों में उत्पन्न होते हैं। यक्ष को उस जलमय प्रान्त तक ही मेघ का साथ देना चाहिए कहा गया है-

नदी तीरे गवां गोष्ठे क्षीरवृक्षे जलाश्रये।
आरामेषु च कूपादाविष्टबन्धून् विसर्जयेत्॥

(घ) निचुल एक कवि का नाम है।

इसी प्रकार तरुकिलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति (मेघ. १०३) के सन्दर्भ में यह कल्पनाएं-

(१) तरुकिसलयों पर देवताओं का निवास होने के कारण उन पर ही देवों के नयन जलविन्दुओं के पतन का वर्णन है।
(२) रात्रि के उत्तरार्द्ध में वनभूमि पर पड़ती हुई ओस की बूंदें ऐसी प्रतीत हो रही हैं मानो वन-प्राणियों को दुःखी देखकर देवता अश्रुमोचन कर रहे हैं।
(३) भूमि पर देवताओं का अश्रुपात अमंगलकारी है कहा गया है -

महात्मगुरुदेवानामश्रुपातः क्षितौ यदि।
देशभंगो महादुःखं मरणं च भवेद् ध्रुवम्॥

अतः यक्ष की मरणाशंका के निवारण के लिए देवताओं का अश्रुपात पृथ्वी

पर न दिखाकर तरुकिसलयों पर दर्शाया है - टीकाकारों की सूक्ष्मेक्षिका की परिचायक हैं। साररूपेण अर्थ की दृष्टि से टीकाओं के अध्ययन द्वारा अनेक नवीन भावों का अवलोकन हुआ है।

पाठ-भेद की दृष्टि से टीकाएं स्वंय में अनेक विशिष्टताओं को संजोये हुए हैं। टीकाकारों ने अर्थ, लिंग, वचन, कारक व समास आदि को ध्यान में रखते हुए एक स्थल पर ही भिन्न-भिन्न पाठ दिए हैं। उदाहरणार्थ प्रत्यासन्ने नभसि को देखते हुए जहां कुछ व्याख्याकारों ने प्रशमदिवसे पाठ अपनाया है वहां मासानेतान् गमय चतुरो के आधार पर अन्य टीकाकार प्रथम दिवसे पाठ ग्रहण कर प्रथम के प्रवर,आषाढ़ी अमावस्या, आषाढ़ी पूर्णिमा, शुक्ल प्रतिपदा आदि (मेघ. ३) अनेक अर्थ दे जाते हैं। इसी प्रकार केतकाधानहेतोः पाठ देते हुए टीकाकारों ने लिखा है कि यहां कवि पुष्पो की वर्षा काल में उत्पत्ति दर्शाकर पुष्परूप बाण से यक्ष पर प्रहार कर रहा है। एक तो वर्षाकाल और उस पर सुगन्धयुक्त पुष्पो का दर्शन विरही यक्ष के लिए गण्डस्योपरिं पिण्डकः ही है। दक्षि. ने यहां कौतुकाधान हेतोः पाठ देते हुए लिखा है-कौतुकं कामविषयौत्सुक्यम् कौतुकार्पणहेतोरित्यर्थः कौतुकं विषयाभोगे हस्ते सूत्रे कुतूहले कामे ख्याते मङ्गले च इति यादवः केतकाधानहेतोरिति पाठे केतकानां गर्भाथानहेतोरित्यर्थ किल भवेत्। इदमत्यन्तश्लाध्यविशेषणं न स्यादिति बोधव्यम्। कौतुकाथानहेतोरिति विशेषणं मनोरथस्थितं मेघस्वागतादिकार्य विस्मृत्य पखशो बभूवेत्यर्थस्यकारणत्वेनोक्तम्। यहां अर्थ की दृष्टि से पाठ-भेद दिया गया है।

वचन की दृष्टि से कुछ टीकाकारों ने अवन्ती को पुरी अथवा देश का वाचक कह अवन्तीम् (मेघ ३०) को एकवचनान्त ग्रहण किया है जबकि अन्य ने जनपदों का वाचक मान अवन्तीन् बहुवचनान्त रूप में दिया है।

लिंग को दृष्टिगत कर दक्षि. ने अलके बालकुन्दानुवेधो (मेघ. ६५) पाठ दिया है। कुछेक ने यहां अलकं बालकुन्दानुविद्धम् अन्य ने अलके बालकुन्दानुविद्धन् व पूर्ण. ने अलका बालकुन्दानुविद्धा पाठ अपनाया है।

विभक्ति की दृष्टि से कुछ टीकाकार गृहानुत्तरेण (मेघ को ७२) में उत्तरेण को एनप् प्रत्ययान्त कह गृहान् को द्वितीयान्त मानते हैं अन्य टीकाकार उत्तरेण में एनप् प्रत्यय मानते हुए इसे तृतीयान्त कह गृहात् में पंचमी मानते हैं। इस प्रकार टीकाकारों ने अनेक रूपों में पाठ-भेद का दिग्दर्शन कराया है।

कवि ने पूर्वमेघ में अनेक भौगोलिक स्थलों का वर्णन किया है। टीकाकारों एवं आधुनिक अन्वेषणकर्त्ताओं ने उन स्थलों का किस रूप में निर्धारण किया है? इसका विवेचन पंचम अध्याय में है।

श्लोक संख्या भी टीकाओं में भिन्न-भिन्न पाई जाती है न्यूनतम ११० व अधिकतम १३० श्लोक दृष्टिगत होते हैं जबकि मूल रूप में १११ श्लोक निर्धारित किये गये हैं। अतः उन प्रक्षिप्त श्लोकों का भी टीकाओं द्वारा विवेचन किया गया है।

सारांशतः अर्थ व पाठ की दृष्टि से टीकाएं अत्यन्त विशदता, विविधता व पूर्णता को संजोये हुए हैं। यदि टीकाएं न होतीं तो विद्धानों के मन्थन से निकाले गये रत्नों में हम वंचित रह जाते। उपलब्धियां अनेक हैं, इस शोध-प्रबन्ध में उनका दिग्दर्शन ही सम्भव हो सका है।

परिशिष्ट

(१) टीकाकारों द्वारा स्वीकृत श्लोकसंख्यानुक्रम-सुची

	स्थिरदेव	वल्लभदेव	दक्षिणावर्तनाथ	चारित्रवर्द्धन	शाश्वत	मल्लिनाथ	पूर्णसरस्वती	सारोद्धारिणी	सनातनगोस्वामी	सुमतिविजय	भरतमल्लिक	कृष्णपति	चरणतीर्थ महाराज
१-कश्चित्कान्ता	१	१	१	१	१	१	१	पूर्वमेघ प्रकाशित नहीं है।	१	१	१	१	१
२-तस्मिन्नद्रौ	२	२	२	२	२	२	२		२	२	२	२	२
३-तस्य स्थित्वा	३	३	३	३	३	३	३		३	३	३	३	३
४-प्रत्यासन्ने नभसि	४	४	४	४	४	४	४		४	४	४	४	४
५-धूमज्योतिः	५	५	५	५	५	५	५		५	५	५	५	५
६-जातं वंशे	६	६	६	६	६	६	६		६	६	६	६	६
७-संतप्तानां	७	७	७	७	७	७	७		७	७	७	७	७
८-त्वामारूढ़ं	८	८	८	८	८	८	८		८	८	८	८	८
९-आपृच्छस्व	९	९	१२	१२	१२	१२	१२		१२	१३	१२	१२	१२
१०-मन्दं मन्दं	१०	१०	९	९	९	९	९		९	९	९	९	९
११-तां चावश्यं	११	११	१०	११	१०	१०	१०		१०	१०	१०	१०	१०
१२-कर्तुं यच्च	१२	१२	११	१०	११	११	११		११	१२	११	११	११
१३-मार्ग तावत्	१३	१३	१३	१३	१३	१३	१३		१३	११	१३	१३	१३
१४-अद्रेःश्रृङ्गं	१४	१४	१४	१४	१४	१४	१४		१४	१४	१४	१४	१४
१५-रत्नच्छायाव्यतिकर		१५	१५	१५	१५	१५	१५		१५	१५	१५	१५	१५
१६-त्वय्यातं	१६	१६	१६	१६	१६	१६	१६		१६	१६	१६	१६	१६
१७-त्वामासार.	१७	१७	१७	१७	१७	१७	१७		१७	१७	१८	१७	१७
१८-छन्नोपान्तः	१८	१८	१८	१८	१९	१८	१८		१८	१९	१९	१९	१९
१९-स्थित्वा तस्मिन्	१९	१९	१९	२०	२०	१९	१९		२०	२०	२०	२०	२०
२०-तस्यास्तिक्तै०	२०	२०	२०	२१	२१	२०	२०		२१	२१	२१	२१	२१
२१-नीपं दृष्टवा	२१	२१	२१	२२	२२	२१	२१		२२	२२	२२	२२	२२
२२-उत्पश्यामि	२२	२२	२२	२४	२४	२३	२२		२४	२४	२४	२३	२४
२३-पाडुच्छायो.	२३	२३	२३	२५	२५	२४	२३		२५	२५	२५	२४	२५

	स्थिरदेव	वल्लभदेव	दक्षिणावर्तनाथ	चारित्रवर्द्धन	शाश्वत	मल्लिनाथ	पूर्णसरस्वती	सारोद्धारिणी	सनातनगोस्वामी	सुमतिविजय	भरतमल्लिक	कृष्णपति	चरणतीर्थ महाराज
२४-तेषां दिक्षु	२४	२४	२४	२६	२६	२५	२४	पूर्वमेघ प्रकाशित नहीं है	२६	२६	२६	२५	२६
२५-नीचैराख्यं	२५	२५	२५	२७	२७	२६	२५		२७	२७	२७	२६	२७
२६-विश्रान्तः सन्व्रज	२६	२६	२६	२८	२८	२७	२६		२८	२८	२८	२७	२८
२७-वक्रः पन्था	२७	२७	२७	२९	२९	२८	२७		२९	२९	२९	२८	२९
२८-वीचिक्षोभ.	२८	२८	२८	३०	३०	२९	२८		३०	३०	३०	२९	३०
२९-वेणीभूतप्रतनु.	२९	२९	२९	३१	३१	३०	२९		३१	३१	३१	३०	३१
३०-प्राप्यावन्ती	३०	३०	३०	३२	३२	३१	३०		३२	३२	३२	३१	३२
३१-दीर्घीकुर्वन्	३१	३१	३१	३३	३३	३२	३१		३३	३५	३३	३२	३३
३२-जालोद्गीर्णैः	३२	३२	३२	३७	३४	३६	३२		३४	३६	३४	३३	३६
३३-भर्तुः कण्ठच्छवि.	३३	३३	३३	३८	३५	३७	३३		३५	३७	३५	३४	३७
३४-अप्यन्यस्मिन्	३४	३४	३४	३९	३६	३८	३४		३६	३८	३६	३५	३८
३५-पादन्यासक्वणित.	३५	३५	३५	४०	३७	३९	३५		३७	३९	३७	३६	३९
३६-पश्चादुच्चै.	३६	३६	३६	४१	३८	४०	३६		३८	४०	३८	३७	४०
३७-गच्छन्तीनां	३७	३७	३७	४२	३९	४१	३७		३९	४१	३९	३८	४१
३८-तां कस्याचिद्	३८	३८	३८	४३	४०	४२	३८		४०	४२	४०	३९	४२
३९-तस्मिन्काले	३९	३९	३९	४४	४१	४३	३९		४१	४३	४१	४०	४३
४०-गम्भीरायाः	४०	४०	४०	४५	४२	४४	४०		४२	४४	४२	४१	४४
४१-तस्याःकिचिंत्	४१	४१	४१	४६	४३	४५	४१		४३	४५	४३	४२	४५
४२-त्वन्निष्यन्दो.	४२	४२	४२	४७	४४	४६	४२		४४	४६	४४	४४	४६
४३-तत्र स्कन्दं	४३	४३	४३	४८	४५	४७	४३		४५	४७	४५	४५	४७
४४-ज्योतिर्लेखा.	४४	४४	४४	४९	४६	४८	४४		४६	४८	४६	४३	४८
४५-आराध्यैवं	४५	४५	४५	५०	४७	४९	४५		४७	४९	४७	४६	४९
४६-त्वय्यादातुं	४६	४६	४६	५१	४८	५०	४६		४८	५०	४८	४७	५०
४७-तामुतीर्य	४७	४७	४७	५२	४९	५१	४७		४९	५१	४९	४८	५१
४८-ब्रह्मावर्त	४८	४८	४८	५३	५०	५२	४८		५०	५२	५०	४९	५२
४९-हित्वा हालाम्	४९	४९	४९	५४	५१	५३	४९		५१	५३	५१	५०	५३
५०-तस्माद्गच्छे.	५०	५०	५०	५५	५२	५४	५०		५२	५४	५२	५१	५४
५१-तस्याः पातुं	५१	५१	५१	५६	५३	५५	५१		५३	५५	५३	५२	५५
५२-आसीनानां	५२	५२	५२	५७	५४	५६	५२		५४	५६	५४	५३	५६
५३-तं चेद्वायौ	५३	५३	५३	५८	५५	५७	५३		५५	५७	५५	५४	५७

	स्थिरदेव	वल्लभदेव	दक्षिणावर्तनाः	चारित्रवर्द्धन	शाश्वत	मल्लिनाथ	पूर्णसरस्वती	सारोद्धारिणी	सनातनगोस्वामी	सुमतिविजय	भरतमल्लिक	कृष्णपति	चरणतीर्थ महाराज
५४-ये त्वां मुक्तध्वनि.	५४	५४	५४	५९	५६	५८	५४	पूर्वमेघ प्रकाशित नहीं	५६	५८	५६	५५	५८
५५-तत्र व्यक्तं	५५	५५	५५	६०	५७	५९	५५		५७	५९	५७	५६	५९
५६-शव्दायन्ते	५६	५६	५६	६१	५८	६०	५६		५८	६०	५८	५७	६०
५७-प्रालोयाद्रे.	५७	५७	५७	६२	५९	६१	५७		५९	६१	५९	५८	६१
५८-गत्वा चोर्ध्वं	५८	५८	५८	६३	६०	६२	५८		६०	६२	६०	५९	६२
५९-उत्पश्यामि	५९	५९	५९	६४	६१	६३	५९		६१	६३	६१	६०	६३
६०-हित्वा नीलं	६०	६०	६०	६५	६२	६४	६०		६२	६५	६२	६१	६४
६१-तत्रावश्यं	६१	६१	६१	६६	६३	६५	६१		६३	६४	६३	६२	६५
६२-हेमाम्भोजप्रसवि	६२	६२	६२	६७	६४	६६	६२		६४	६६	६४	६३	६६
६३-तस्योत्सङ्गे	६३	६३	६३	६८	६५	६७	६३		६५	६७	६५	६४	६७
६४-विद्युत्वन्तं	६४	६४	६४	६९	उत्तरमेघ प्रकाशित नहीं	६८	६४	६८	उत्तरमेघ प्रकाशित नहीं	६८	६६	६५	६८
६५-हस्ते लीला.	६५	६५	६५	७०		६९	६५	७४		७०	६७	६६	७४
६६-यस्यां यक्षाः	६६	६६	६६	७२		७२	६६	७१		७४	६८	६७	७१
६७-यत्रस्त्रीणां	६७	६७	६९	७६		७६	६९	७९		७३	७३	७०	७९
६८-नेत्रा नीताः	६८	६८	६८	७५		७५	६८	७७		७९	७१	X	७७
६९-नीवीवन्धो.	६९	६९	६७	७४		७४	६७	७३		७६	७०	६९	७३
७०-गत्युत्कम्पा.	७०	७०		७७		७८		७२		७५	६९	६८	७२
७१-मत्वा देवं	७१	७१	७०	७८		७९	७०	८०		८१	७३	७१	८०
७२-तत्रागारं	७२	७२	७१	७९		८१	७१	८२		८२	७४	७२	८२
७३-वापी चास्मिन्	७३	७३	७२	८०		८२	७२	८३		८३	७५	७३	८३
७४-यस्यास्तीरे	७४	७४	७३	८१		८३	७३	८४		८४	७६	७४	८४
७५-रक्ताशोक.	७५	७५	७४	८२		८४	७४	८५		८५	७७	७५	८५
७६-तन्मध्ये च	७६	७६	७५	८३		८५	७५	८६		८६	७८	७६	८६
७७-एभिः साधो	७७	७७	७६	८४		८६	७६	८७		८७	७९	७७	८७
७८-गत्वा सद्यः	७८	७८	७७	८५		८७	७७	८८		८८	८०	७८	८८
७९-तन्वी श्यामा	७९	७९	७८	८६		८८	७८	८९		८९	८१	७९	८९
८०-तां जानीयाः	८०	८०	७९	८७		८९	७९	९०		९०	८२	८०	९०
८१-नूनं तस्याः	८१	८१	८०	८८		९०	८०	९१		९१	८३	८१	९१
८२-आलोके ते	८२	८२	८१	८९		९१	८१	९२		९२	८४	८२	९२
८३-उत्सङ्गे वा	८३	८३	८२	९०		९२	८२	९३		९३	८५	८३	८३
८४-शेषान्मासान्	८४	८४	८३	९१		९३	८३	९४		९४	८६	८४	९४

	स्थिरदेव	वल्लभदेव	दक्षिणावर्तनाथ	चारित्रवर्द्धन	शाश्वत	मल्लिनाथ	पूर्णसरस्वती	सारोद्धारिणी	सनातनगोस्वामी	सुमतिविजय	भरतमल्लिक	कृष्णपति	चरणतीर्थ महाराज
८५-आद्ये बद्धा	८५	८५	८७	९६		९८	८७	९५		९८	९०	८८	९८
८६-सव्यापारमहनि	९०	८६	८४	९२		९४	८४	१००		९५	८७	८५	९५
८७-आधिक्षामां	८६	८७	८५	९३		९५	८५	९६		९६	८८	८६	९६
८८.निःश्वासेना.	८७	८८	८६	९५		९७	८६	९७		९७	८९	८७	९७
८९-पादानिन्दो	८८	८९	८८	९४		९६	८८	९८		९९	९१	८९	९९
९०-जाने सख्या.	८९	९०	९०	९८		१००	९०	९९		१०१	९३	९१	१०१
९१-सा संन्यस्ता.	९१	९१	८९	९७		९९	८९	१०१		१००	९२	९०	१००
९२-रुद्धापाङ्ग.	९२	९२	९१	९९		१०१	९१	१०२		१०२	९४	९२	१०२
९३-वामो वास्याः	९३	९३	९२	१००		१०२	९२	१०३		१०३	९५	९३	१०३
९४-तस्मिन् काले	९४	९४	९३	१०१		१०३	९३	१०४		१०४	९६	९४	१०४
९५-तामुत्थाप्य	९५	९५	९४	१०२		१०४	९४	१०५		१०५	९७	९५	१०५
९६-भर्तुर्मित्रं	९६	९६	९५	१०३		१०५	९५	१०६		१०६	९८	९६	१०६
९७-इत्याख्याते	९७	९७	९६	१०४		१०६	९६	१०७		X	९९	९७	१०७
९८-तामायुष्मान्	९८	९८	९७	१०५	उत्तरमेघ प्रकाशित नहीं है।	१०७	९७	१०८	उत्तरमेघ प्रकाशित नहीं	१०७	१००	९८	१०८
९९-अङ्गेनाङ्गं	९९	९९	९८	१०६		१०८	९८	१०९		१०८	१०१	९९	१०९
१००-शव्दाख्येयं	१००	१००	९९	१०७		१०९	९९	११०		१०९	१०२	१००	११०
१०१-श्यामास्वङ्गं	१०१	१०१	१००	१०८		११०	१००	१११		११०	१०३	१०१	१११
१०२-त्वामालिख्य	१०२	१०२	१०१	१०९		१११	१०१	११३		११२	१०५	१०३	११३
९९-अङ्गेनाङ्गं	९९	९९	९८	१०६		१०८	९८	१०९		१०८	१०१	९९	१०९
१००-शव्दाख्येयं	१००	१००	९९	१०७		१०९	९९	११०		१०९	१०२	१००	११०
१०१-श्यामास्वङ्गं	१०१	१०१	१००	१०८		११०	१००	१११		११०	१०३	१०१	१११
१०२-त्वामालिख्य	१०२	१०२	१०१	१०९		१११	१०१	११३		११२	१०५	१०३	११३
१०३-मामाकाश.	१०३	१०३	१०२	११०		११२	१०२	११४		११३	१०६	१०४	११४
१०४-भित्वा सद्यः	१०४	१०४	१०३	१११		११३	१०३	११५		११४	१०७	१०५	११५
१०५-संक्षिप्येरन्	१०५	१०५	१०४	११२		११४	१०४	११६		११५	१०८	१०६	११६
१०६-नन्वात्मानं	१०६	१०६	१०५	११३		११५	१०५	११७		११६	१०९	१०७	११७
१०७-शापान्तो मे	१०७	१०७	१०६	११४		११६	१०६	११८		११७	११०	१०८	११८
१०८-भूयश्चाह	१०८	१०८	१०७	११५		११७	१०७	११९		११८	१११	१०९	११९
१०९-एतस्मान्मा	१०९	१०९	१०८	११६		११८	१०८	१२०		११९	११२	११०	१२०
११०-कच्चित्सौम्य	११०	११०	१०९	११८		१२०	१०९	१२२		१२१	११३	१११	१२२
१११-एतत्कृत्वा	१११	१११	११०	११९		१२१	११०	१२३		१२२	११४	११२	११२

पक्षिप्त-श्लोक

	स्थिरदेव	वल्लभदेव	दक्षिणावर्तनाथ	चारित्रवर्द्धन	शाश्वत	मल्लिनाथ	पूर्णसरस्वती	सारोद्धारिणी	सनातनगोस्वामी	सुमतिविजय	भरतमल्लिक	कृष्णपति	चरणतीर्थ महाराज
१-अध्वक्लान्तं				१९	१८				१९	१८	१७	१८	१८
२-अम्भोविन्दु.				२३	२३	२२			२३	२३	२३		२३
३-हारांस्तारां.				३४		३३				३३			३४
४-प्रद्योतस्य				३५		३४				३४			३५
५-पत्रश्यामा				३६		३५		६९			६९		६९
६-यत्रोन्मत.				७१		७०		७५			७७		७५
७-आनन्दोत्थं				७३		७१		७०			७१		७०
८-मन्दाकिन्याः						७३		७८			७८		७८
९-अक्षय्यान्तर्भवन.						७७		७६			८०		७६
						८०		८१			७२		८१
१०-वासश्चित्रं													पृ १३३
११-स्निग्धाः सख्यः													पृ १३४
१२-अन्वेष्टव्याम्									११२		१११	१०४	१०२
१३-धारासिक्त.									१२१		१२०		१२१
१४-आश्वास्यैवं				११७		११९							
१५-इत्याख्याते										१२५			१२४
१६-तस्मादद्रे.									१२४	१२३			१२५
१७-तत्संदेशं				१२०					१२५	१२४			१२६
१८-श्रुत्वा वार्त्ता				१२१						१२६			१२७
१९-इत्थंभूतं				१२२									

(२) अर्थ-भेद की दृष्टि से चयन किये गये शब्दो की सूची

पूर्वमेघ

श्लोक संख्या	पाद संख्या	पृष्ठ संख्या	शब्द
१	१	४४	कश्चित्
		४६	स्वाधिकारप्रमतः
	२	४६	अस्तंगमितमहिमा
		४७	वर्षभोग्येण
	४	४८	स्निग्धच्छायातरुषु
२	२	४९	कनकवलयभ्रशरिक्तप्रकोष्ठः
	४	५०	वप्रकीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं
३	१	५२	पुरः
	२	५२	अन्तर्बाष्पः
		५३	राजराजस्य
		५३	दध्यौ
६	१	५५	पुष्परावर्तकानां
	४	५६	याच्ञामोघावरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा
७	४	५७	वाह्योद्यान
८	१	५८	उद्‌गृहीतालकान्ताः
	२	५९	प्रत्ययादाश्वसत्यः
१०	४	६०	बलाकाः
११	३	६१	आशावन्धः
१२	१-४	६४	कर्तुयच्च...सहायाः
१४	३	६४	सरसनिचुलात्
	४	६६	दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान्।
१५	१	६८	पुरस्तात्
	२	६९	वल्मीकाग्रात्
	४	७०	गोपवेशस्य विष्णोः
१६	४	७१	पश्चात्
१८	३	७१	अमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
२१	४	७२	सारङ्गाः
२३	१	७३	केतकैः सूचिभिन्नैः
	२	७४	चैत्याः

श्लोक संख्या	पाद संख्या	पृष्ठ संख्या	शब्द
	३	७६	वनान्ताः
३०	१	७६	उदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्
३४	३	७७	संध्याबलिपटहतां
३५	२	७८	रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः
३६	४	८०	शान्तोद्वेगः
३७	४	८१	तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो
४०	२	८१	छायात्मापि
	३	८३	धैर्यात्
४३	४	८४	अत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्हितेजः
४५	३–४	८४	सुरभितनयालम्भजां...कीर्तिम् ।
५०	२	८५	जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।
५४	४	८६	निष्फलारम्भयत्नाः
५७	२	८६	भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।
६०	३	८७	भङ्गीभक्त्या
६१	३	८८	धर्मलब्धस्य
६२	२	८९	क्षणमुखपटप्रीतिम्
६५	३	९०	चूडापाशे
	४	९१	त्वदुपगमजं यत्र नीपं
७४	३	९१	चेतसा कातरेण
	४	९२	प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततिहतं त्वां तमेव स्मरामि ।
७७	२	९३	द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ
	४	९४	सूर्यापाये
७९	१	९४	श्यामा
८०	३	९५	बालां
८२	१	९६	निपतति पुरा
८५	१	९७	शिखादाम हित्वा
	४	९८	एकवेणीं करेण
८८	२	९८	शुद्धस्नानात्
९४	२	९९	याममात्रं
९५	२	१००	जालकैमालतीनां
९६	४	१००	मानिनीं
९६	१	१०१	अविधवे
	३	१०१	पथि श्राम्यतां

श्लोक संख्या	पाद संख्या	पृष्ठ संख्या	शब्द
१००	१	१०१	शब्दाख्येयं
१०१	१	१०२	श्यामासु
१०२	१-४	१०३	त्वामालिख्य...कृतान्तः ।
१०३	४	१०४	तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ।
१०५	२	१०५	सर्वावस्थासु
१०९	२	१०५	कौलीनात्
		१०६	असितनयने
१११	१	१०६	अनुचितप्रार्थनावर्त्मनो

(३) पाठ-भेद की दृष्टि से चयन किये गये शब्दो की सूची

पूर्वमेघ

श्लोक सं.	पाद सं.	पृष्ठ सं.	शब्द
२	३	१०८	प्रथम दिवसे
३	१	११२	कौतकाथानहेतोः
४	१	११४	प्रत्यासन्ने नमसि
		११५	दयिताजीवितालम्बनार्थी
५	४	११६	प्रणयकृपयाः
१०	२	११७	चातकस्तेसगन्धः
	३	११९	गर्भाधानक्षणपरिचयात्
११	३	१२०	प्रायशोह्यङ्गनानां
१२	१	१२१	उच्छिलीन्ध्रातपत्रां
१४	२	१२२	दृष्टोत्साहः
१६	४	१२२	किंचित्पश्चात् व्रज लघुगतिभूर्य एवोत्तरेण ।
१८	२	१२४	स्निग्धवेणीसवर्णे
२१	३	१२५	जग्धवारण्येषु
२५	१	१२७	विश्रामहेतोः
२९	१	१२८	वेणीभूतप्रतनुसलिता तामतीतस्य सिन्धुः
३०	१	१२९	प्राप्यावन्तीन्
३४	२	१३०	यावदत्येति भानुः
३७	४	१३२	मा च भूः
४१	४	१३२	विवृतजघनां
४४	२	१३३	कुवलयदलप्रापि
	३	१३५	पावकेस्तं मयूरं
४९	३	१३६	अधिगममपां
४९	४	१३६	त्वमपि भविता
५४	१	१३७	ये त्वा मुक्तध्वनिमसहनाः
	३	१३८	करकावृष्टिहासावकीर्णान्
५५	३	१४०	ऊर्ध्वमुद्धूतपापाः
५८	४	१४१	प्रतिदिशमिव
६०	२	१४१	विहरेत्
	४	१४२	सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु
६१	१	१४२	वलयकुलिशोद्घटनोद्गीर्णतोयं

श्लोक सं.	पाद सं.	पृष्ठ सं.	शब्द
	४	१४३	भाययेस्ताः
६२	३-४	१४४	धुन्वन्कल्प...नगेन्द्रम् ।
			उत्तरमेघ
६५	१	१४५	बालकुन्दानुविद्धम्
	२	१४७	आननश्रीः
६६	१	१४७	सितमणिमयानि
	२	१४८	ज्योतिश्छायाकुसुमरचना
	३	१४९	रतिफलं
६७	१	१४९	प्रियतभुजालिङ्गनोच्छवासितानां
	२	१५०	तन्तुजालावलम्बाः
	३	१५०	चन्द्रपादैर्निशीथे
६८	२	१५१	नवजलकणैर्दोषम्
६९	१	१५१	यक्षाङ्गनानां
७०	२	१५२	वलृप्तच्छेथेः
	३	१५३	मुक्तालग्नस्तनपरिमलैः
७२	१	१५४	गृहानुत्तरेणास्मदीयं
७३	४	१५५	न ध्यास्यन्ति
७४	२	१५६	कनककदलीवेष्टन प्रेक्षणीयः
७६	३	१५६	तालैः शिञ्जद्वलयसुभगैः
७९	१-	१५८	शिखरदशना
८०	३-४	१५९	गोढोत्कण्ठागुरुषु...वान्यरूपाम् ।
८२	४	१६२	निभृते
८४	१	१६३	विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
	२	१६४	देहलीदत्तपुष्पैः
	३	१६५	आस्वादयन्ती
	४	१६५	विरहेष्वङ्गनानां
८६	३	१६५	अलं
	४	१६६	अवनिशयनासन्नवातायनस्थः
८७	१	१६७	सन्निकीर्णैकपार्श्वाम्
	३	१६८	मत्संयोगः कथमुनमेत्स्वप्नजोऽपीति निद्राम्
८८	३	१६९	क्षणमित्र
	४	१७०	विरहशयनेष्वस्त्रुभिः
८७-८८	१-८	१७०	आधिक्षामां...यापयन्तीम् ।
९३	१	१७१	वामो वास्याः

श्लोक सं.	पाद सं.	पृष्ठ सं.	शब्द
	४	१७१	सरसकदलीस्तम्भगौरः
९५	३	१७२	विद्युद्गर्भे निहितनयनां
	४	१७४	धीरस्तनितवचनैः
९८	१	१७५	आयुष्मन्
		१७६	मम च वचनादात्मनाचोपकर्तुं
	४	१७७	पूर्वाशास्यं
९९	१	१७८	तनु च तनुना
	३	१७८	उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना
	४	१७९	संकल्पैस्ते
१००	१	१८०	यदपि किल ते
	३	१८०	लोचनाभ्यामदृश्यः
१०१	४	१८१	भीरू
१०६	१	१८२	नन्वात्मानं
१०७	२	१८४	चतुरो
	३	१८४	विरहगुणितं
१०८	१	१८५	भूयश्चाह त्वमसि
१०९	३	१८६	स्नेहानाहुः किमपि विरह.
११०	२	१८८	प्रत्याख्यातुं न खलु भवतो

(४) सामान्य पाठ-भेद-सूची

संकेत-सूची

स्थि.	स्थिरदेव	पू.	पूर्णसरस्वती
व.	वल्लभदेव	सु.	सुमतिविजय
द.	दक्षिणावर्तनाथ	सा.	सारोद्धारिणी
चा.	चारिवर्द्धन	भ.	भरतमल्लिक
स.	सनातनगोस्वामी	कृ.	कृष्णपति
शा.	शाश्वत	च.	चरणतीर्थ महाराज
म.	मल्लिनाथ		

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
१	१	स्वाधिकार.	स्थि.व.चा.सा.शा.पू.सु.भ.कृ.
		स्वाधिकारात्	द.म.च.
	२	भोग्येन	व.च.
		भोग्येण	स्थि.द. चा. स. शा. पू.म. सु. भ. कृ.
२	३	पशमदिवसे	व. शा.
		प्रथमदिवसे	स्थि. द. चा. स. म. पू. सु. भ. कृ. च.
३	१	केतकाधानहेतोः	स्थि. व. स. शा. पू. सु. भ. कृ. च.
		कौतुलकाधानहेतोः	द. चा. म.
४	१	नभसि	स्थि. व. चा. स. शा. पू. म. सु. भ. कृ. च.
		मनसि	द.
	१	लम्बनार्थी	व. पू.म. कृ.
		लम्बनार्था	स्थि. द. चा. स. शा. भ.
		लम्बनार्थ	सु. च.
	३	कुटच	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. कृ. च.
		कुटज	द.
	२	सन्देशार्थाः	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		सन्देशार्थः	द. (सन्देशाश्च इति केचित् पठन्ति)
	२	प्रापणीयाः	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		प्रापणीयः	द.
	४	प्रकृतिकृपणा	चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		प्रणयकृपणा.	स्थि. व. द. पू.
६	१	पुष्करा.	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		पुष्कला.	द. पू.
	४	मोघा	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		वन्ध्या	व.
८	२	श्वसत्यः	स्थि. द. स. पू. म. भ. कृ.
		श्वसन्त्यः	व. चा. सु. च.
	४	प्यहमिव	स्थि. व. द. चा. स. शा. सु. भ. कृ. च.
		प्ययमिव	पू.
९	३	भवता	स्थि. व. द. चा. पू.
		भवतो	म. स. सु. भ. कृ. च.
१०	२	चातकस्तोयगृघ्नुः	व.
		चातकस्ते सगर्वः	स्थि. चा. स. शा. सु. भ. च.
		चातकस्ते सगन्धः	द. पू. म. कृ.
		चातकस्ते सदर्पः	स.
	३	स्थिरपरिचया	व.
		क्षमपरिचयात्	द. पू.
		क्षमपरिचयं	स. शा. भ.
		क्षणपरिचयात्	स्थि. चा. म. सु. कृ. च.
	४	सुभगं	स्थि. व. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		सुभगः	द.
		सुभगाः	पू.
११	३	कुसुमसदृशप्राणम-प्यङ्गनानां	द. पू.
		कुसुमसदृशं प्रायशोह्यङ्गनानां	स्थि. व. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
	४	सद्यःपात.	स्थि. व. द. पू.
		सद्यःपाति	चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
१२	१	मुच्छिलन्ध्रातपत्रां	स्थि. सु.
		मुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यं	व.
		मुच्छिलीन्ध्रातपत्रां	चा. स. शा. भ. कृ.
		मुत्सिलीन्ध्रामवन्ध्यां	द.
		मुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां	म. पू.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		मुच्छिलिन्ध्रातपत्रां	च.
१३	१	तावच्छृणु	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		मतः शृणु	द.
	१	णानुकूलं	व.
		णानुरूपं	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
	२	श्रोत्रपेयं	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		श्राव्यवन्धम्	द. पू.
	४	चोपयुज्य	स्थि. व. स. भ. कृ.
		चोपभुज्य	द. चा. पू. म. सु. च.
१४	१	हरति	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		वहति	द.
	२	दृष्टोत्साह.	स्थि. व. द. पू. म. सू. च.
		दृष्टोच्छ्राय.	चा. स. भ. कृ.
	४	वलेपान्	स्थि. द. चा. स. शा. पू. म. सु. भ. कृ. च.
		वलेहान्	व.
१५	२	धनुःखण्ड.	स्थि. द. चा. स. पू. म. सु. भ. कृ. च.
		धनुष्खण्ड.	व. शा.
	३	कान्तिमापत्स्यते	स्थि. व. द. चा. शा. म. पू. सु. भ. च.
		कान्तिमालप्स्यते	स. कृ.
	४	गोपवेशस्य	व. स. शा. भ. कृ. च.
		गोपवेषस्य	स्थि. द. चा. म. पू. सु.
१६	१	भ्रूविकारानभिज्ञैः	स्थि. चा. स. म. सु. भ. कृ. च.
		भ्रूविलासानभिज्ञैः	व. द. पू.
	३	सुरभि क्षेत्रमारुह्य	व. द. स. म. पू. सु. भ. कृ.
		सुरभिक्षेत्रमारुह्य	स्थि० च०
	४	पश्चात्प्रवलय गतिं	व.
		पश्चात् प्रगुणय गतिं	स्थि.
		पश्चाद्व्रज लघुगति.	म. पू.
		पश्चाद् व्रज लघुगति.	द. चा. स. शा. पू. म. सु. भ. कृ. च.
१७	९	वनोप्लवं	स्थिर. व. चा. स. शा. पू. म. सु. भ. म. कृ. च.
		दवोपप्लवं	द.
	४	तथोच्चैः	स्थि. व. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		तथोच्चः	द. पू.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
१८	२	स्निग्धवेणीसवर्णे	स्थि. व. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		सर्पवेणीसवर्णे	द. पू.
	२	तोयोत्सर्गद्रुत.	व. द. पू. स. म. भ.
		तोयोत्सर्गात् द्रूत.	स्थि. चा. शा. सु. कृ. च.
	३	विशीर्णा	व. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		विकीर्णा	स्थि.
२०	२	जम्बूकुञ्ज	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		जम्बूषण्ड	व.
२१	१	दृष्टवा	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		दष्टवा	पू.
	३	दग्धा	स्थि.व. चा. स. पू. सु. भ. कृ. च.
		जग्ध्वा	द. म.
२२	३	सजलनयनैः	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		सनयनजलैः	व.
	४	प्रत्युद्यातः	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. पू. भ. कृ. च.
		प्रत्युद्याते	सु.
	४	कथमपि	स्थि. व. द. चा. सा. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		कथमिव	पू.
२३	२	नीडारम्भै	स. भ. कृ.
		नीडारम्भे.	स्थि. व. द.चा. म. पू. सु. च.
	३	परिणतफलश्याम.	स्थि. द. चा. म. पू. सु. च.
		फलपरिणतिश्याम.	व. स. भ.
		परिणतिफलश्याम.	कृ.
२४	२	फलमतिमहत्	स. पू. भ.
		फलमविकलं	स्थि. व. द. चा. म. सु. कृ. च.
	२	लव्धा	स्थि. व. द. म. पू. सु. कृ.
		लब्ध्वा	चा. स. भ. च.
	३	स्वादुयतत्	स्थि. व. द. म. पू. सु.
		स्वादुयत्र	चा. च.
		स्वादयुक्तं	भ.
		स्वादु यस्मात्	कृ.
	४	चलोर्मि	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		चलोर्म्याः	पू.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
२५	२	मिव प्रौढ़पुष्पैः	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		मिवाप्रौढ़पुष्पैः	पूं.
२६	१	वननदी	व. द. चा. म. पू. भ. कृ.
		नगनदी	स. सु.
		नवनदी	स्थि. शा. च.
		नदनदी	(मल्लि.-नदनदीतिपाठे पुमान् स्त्रिया इत्येकशेषो दुर्वारः) ।
	१	तीरजातानि सिञ्चन्	स्थि. व. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च .
		तीरजानां निषिञ्चन्	द. पू.
२७	१	पन्था यदपि भवतः	स्थि. व. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		पन्थास्तव भवतु	च द. पू.
	१	उत्तराशां	स्थि. व. द. चा. स. शा. पू. म. सु. भ. कृ.
		उत्तरस्यां	च.
	३	स्फुरित	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. च.
		स्फुरण	स. शा. भ. कृ.
	४	तोऽसि	स्थि. व. चा. स. शा.म. पू. सु. भ. कृ. च.
		तःस्याः	द.
२८	१	स्तनित	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		स्वनित	पू.
	३	भ्यन्तरं	चा. स. सु. भ. कृ. च.
		भ्यन्तरः	स्थि. व. द. शा. म. पू.
२९	१	सलिलां तामतीतस्य सिन्धुं	व.
		सलिला तामतीतस्य सिन्धु	स्थि. चा. स. शा.पू. सु. भ. च.
		सलिला सात्वतीतस्य सिन्धुः	द.
		सलिला सावतीतस्य सिन्धुः	म. कृ.
	२	पाण्डुच्छायां	व.
		पाण्डुच्छाया	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
	२	शीर्णपर्णैः	स. शा. भ. कृ.
		जीर्णपर्णैः	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. च.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
	३	व्यञ्जयन्तीं	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
३०	१	प्राप्यावन्तीम्	स. शा. भ. कृ.
		प्राप्यावन्तीन्	व. स्थि. द. चा. म. पू. सु. च.
	१	वृद्धां	स.शा. भ.
		वृद्धान्	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. कृ. च.
	२	मनुसर	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		मुपसर	पू.
	४	हृत.	स्थि. द. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		कृत.	पू.
३१	३	यत्र	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. पू. सु. कृ. च.
		तत्र	भ.
	४	सिप्रा	स्थि.व. द. भ. च.
		शिप्रा	चा. म. पू. सु. स. शा. कृ.
३२	१	धूमैः	व. सु.
		धूपैः	स्थि. द. चा. शा.म. पू. भ. कृ. च.
	२	नृत्तोपहारः	व. द.
		नृत्योपहारः	स्थि. चा. शा. पू. म. सु. भ. कृ. च.
	३	ध्वखिन्नान्तरात्मा	स्थि. व. चा. स. शा. पू. सु. भ. च.
		ध्वखेदं नयेथाः	द. म. कृ.
	४	नीत्वा रात्रिं	व.
		नीत्वा खेदं	स्थि. सु. च.
		खेदं नीत्वा	चा. पू.
		मुक्त्वा खेदं	शा.
		पश्यन् लक्ष्मीं	द.
		लक्ष्मीं पश्यन्	म.
		त्वक्त्वा खेदं	भ. कृ.
३३	१	दृश्यमानः	व.
		वीक्ष्यमाणाः	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु.भ. कृ. च.
	२	चण्डेश्वरस्य	व. द. स. शा. पू. भ. कृ.
		चण्डीश्वरस्य	स्थि. चा. म. सु. च.
	४	विरत.	पू. स. भ.
	स	भिरत.	द. शा.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		निरत.	स्थि. व. चा. म. सु. कृ. च.
३४	२	दम्येति	स्थि. व. स. शा. सु. भ. कृ.
		दत्येति	द. चा. पू. म. च.
३५	१	पादन्यासैः	चा.भ. कृ.
		पादन्यास.	स्थि.व. द. स. ना. म. पू. सु. च.
	४	क्ष्यन्ति	व. द. स. शा. पू. भ. कृ.
		क्ष्यन्ते	स्थि. चा. म. सु. च.
३६	२	सान्ध्यं	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. पू. सु. कृ. च.
		सायं	भ०
	२	जवा	स. शा. भ. कृ.
		जपा	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. च.
	३	नृत्या	स्थि. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		नृत्ता	व. द.
३७	३	सौदामन्या	द. चा. स. पू. म. भ.
		सौदामिन्या	स्थि. व. शा. सु. कृ. च.
	३	स्निग्धया	स्थि. व. द. चा. श. म. पु. सु. म. कृ. च.
		च्छायया	स०
	४	मुखरो	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		विमुखो	द.
	४	मा स्म	स्थि. व. चा. स. म. पू. सु. कृ. च.
		मा च	द. स. शा. भ.
३८	१	वडभौ	स. शा. भ.
		वलभौ	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. कृ. च.
३९	३	कमलवदनात्	व. द. चा. स. शा. म. पू. भ. कृ. च.
		कमलनयनात्	स्थि. सु.
४०	३	तस्मातस्याः	व.
		तस्मादस्याः	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
४१	२	हृत्वा	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. च.
		नीत्वा	द. कृ.
	४	पुलिनजघनां	स्थि. व. स. शा. भ.
		विपुलजघनां	चा. सु. च.
		विवृतजघनां	द. म. पू. कृ.
४२	१	पुण्यः	व. स. शा. भ.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		रम्यः	स्थि. द. चा. म. पू. सु. कृ. च.
	४	वायुः	स्थि. व. द. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		वातः	चा. स. पू.
	४	दुम्बराणाम्	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. पू. सु. कृ. च
		डुम्बराणाम्	भ.
४३	२	पुष्पासारैः	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. सु. भ. कृ. च.
		पुष्पैः साधु	पू.
४४	२	प्रीत्या	व.
		प्रेम्णा	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
	२	दल.	स्थि. द. चा. स. म. पू. सु. भ. कृ. च
		पद.	व.
	२	प्रापि	स्थि. व. स. म. सु. भ. कृ.
		स्पर्धि	च.
		क्षेपि	द. चा. पू.
	३	प्याययेस्तं	स. भ. कृ.
		पावकेस्तं	स्थि. व. द. चा. पू. म. शा. सु. च.
४५	१	ध्यैवं	व.
		ध्यैनं	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
	१	शरवणभवं	द. चा. स. म. पू. भ. कृ. च.
		शरवणभुजं	व. शा. सु.
		प्रथमकथितं	स्थि.
४६	३	दूरमावर्ज्य	स्थि. व. चा. सु. कृ. च.
		नूनमावर्ज्य	द. म. पू. भ.
४७	२	कृष्णसार	स्थि. स. सु. भ.
		कृष्णशार	व. द. चा. म. पू. शा. कृ. च.
	३	श्रीजुषा	भ.
		श्रीमुषा	स्थि. व. द. चा. स. शा. म. पू. सु. कृ. च.
४८	१	मधश्छायया	स्थि. व. चा. शा. पू. सु. भ. कृ.
		मधच्छायया	द. म. च.
		म्यषिञ्चन्मुखानि	व.
		म्यवर्पन्मुखानि	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. कृ. च .
		म्यसिञ्चन्मुखानि	भ.
४९	२	बन्धुप्रीत्या	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		बन्धुस्नेहात्	द.
	३	मधिगम	शा. भ.
		मभिगम	स्थि. व. द. स. म. पू. सु. कृ. च.
	३	सौम्य	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. भ. कृ. च.
		सोम्य	व.
	४	शुद्धस्त्व.	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		स्वच्छस्तव.	व.
	४	त्वगपि	स्थि. व. चा. स. शा. सु. भ. कृ. च.
		त्वगसि	द. म. पू.
५१	१	पूर्वार्ध	स्थि. व. स. सु. च.
		पश्चार्ध	द. चा. पू. म. भ. कृ.
	३	छायया	रा स्थि. व. चा. सु. च.
	३	छाययाऽसौ	पू. भ.
		छाययासौ	द. स. म. कृ.
	४	नोपगत	स्थि. द. चा. स. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		नोपनत	व.
	४	सङ्गमेना.	स्थि. स. भ. च.
		सङ्गमेवा.	व. द. चा. म. पू. सु. कृ.
५२	४	शोभां रम्या	व.
		शोभां शुभ्रां	भ.स.
		शोभां शुभ्र	स्थि. चा. म. पू. सु. कृ. च.
		शुभ्रा शोभां	द.
५३	१	संघट्ट	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. कृ. च.
		संघर्ष	भ.
५४	१	ये त्वां मुक्तध्वनि-मसहनाः	स्थि. व. रा. कृ.
		ये संरम्भोत्पतनरभसा	चा. पू. सु. शा. च.
		ये सारंभोत्पतनरभसाः	द. ग.
	१	स्वाङ्ग	स्थि. द. चा. स. शा. भ. पू. सु. भ. कृ. च.
		काय.	व.
	२	दर्पोत्सेकादुपरि	स्थि. व. स. श. भ. कृ.
		मुक्ताध्वानं सपदि	द. चा. म. पू. च.
		मुक्ताध्वानं सपदि	सु.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
	२	लङ्घयिष्यन्त्यलङ्घ्यम्	स्थि. व. स. भ. कृ.
		लङ्घयेयुभर्वन्तम्	द. चा. म. पू. सु. च.
	३	वृष्टिहासा.	स्थि. व. स. शा. सु. भ. कृ. च.
		वृष्टिपाता.	द. चा. म. पू.
	४	केवा	स्थि. व. द. चा. शा. म. सु. भ. कृ.
		केषां	पू. च.
५५	२	रुपहितबलिं	स. भ. कृ. च.
		रुपहृतबलिं	स्थि. व. चा. पू.
		रुपचितबलिं	द. म.
		रुपहुतबलिं	सु.
	३	दूरमु.	स. भ. कृ.
		दूर्ध्वभु.	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. च.
	४	कल्पन्तेऽस्य	स्थि. व. स. भ. कृ.
		कल्पिष्यन्ते	द. म. पू.
		संकल्पन्ते	चा. सु. च.
५६	२	संरक्ता.	स्थि. व. स. शा. पू. सु. भ. च.
		संसक्ता.	द. चा. म. कृ.
	३	निर्ह्लादी ते	स्थि. व. द. स. पू. सु. भ. च.
		निर्ह्लादस्ते	चा. म. शा. कृ.
	३	मुरज	स्थि. व. चा. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		मुरव	द.
	३	कन्दरेषु	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		कन्दरासु	व.
	४	तत्र भावी समग्रः	स्थि. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		तत्र भावी समस्तः	व.
		नृत्यतस्तत्रपूर्णः	द.
५७	३	मनुसरे	स्थि. द. चा. स. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		मभिसरे	व.
	४	नियमनाभ्यु.	स्थि. व. चा. स. म. सु. भ. कृ. च.
		विमथनाभ्यु.	द. पू.
५८	४	प्रतिदिशमिव	स्थि. चा. स. शा. सु. भ. च.
		प्रतिनिशमिव	व.
		प्रतिदिनमिव	द. म. पू. कृ.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
५९	२	द्विरददशन	स्थि. व. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ.
		द्विरदरदन	द. पू. च.
	३	शोभामद्रेः	स्थि. द. चा. स. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		लीलाभद्रेः	व. शा.
६०	१	हित्वा नीलं	स्थि. व.
		हित्वा तस्मिन्	द. चा. स. शा. म. पू. भ.
		तस्मिन् हित्वा	सु. कृ. च.
	२	विचरेत्	स्थि. स. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		विरहेत्	व. द. चा.
	३	र्जलौघः	स्थि. द. चा. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		र्जलोऽस्याः	व.
	४	कुरु	व. द. चा. म. पू. सु. च.
		व्रज	स्थि. स. शा. भ. कृ.
	४	पदसुखस्पर्शमारोहणेषु	स. शा. भ. कृ.
		सुखपदस्पर्शमारोहणेषु	व.
		मणितटारोहणायाग्रयायी	द. पू. म.
		मणितटारोहणायाग्रयायी	स्थि. सु.
६१	१	जनितसलिलोद्गारमन्तः प्रवेशात्	व.
		वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं	द. चा. म. पू. कृ.
		कुलिशवलयोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं	स्थि. सु. च.
		वलयकुलिशोद्घट्टनोदीर्णतोयं	भ.
	४	भपियेस्ताः	स्थि. सु.
		र्भाययेस्ताः	व. द. चा. स. म. पू. भ. कृ.
		र्भीपयेस्ताः	च.
६२	२	कामात्	व. द. स. पू. भ.
		कामं	स्थि. चा. म. सु. कृ. च.
	२	मैरावतस्य	स्थि. द. चा. स. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		मैरावणस्य	व.
	३	धुन्वन्वातैःसजलपृषतैः कल्पवृक्षांशुकानि	व. चा. स. शा. भ. कृ.
		धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्शुकानि स्ववातैः	स्थि. पू.
		धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्शुकानीव वातैः	द. म. सु.
	४	छायाभिन्नः स्फटिकविशदं	स्थि. व. चा. कृ.
		छायाभिन्नस्फटिकविशदं	भ. स. शा.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		नानाचेष्टैर्जलदललितै.	द. म. पू. च.
	४	निर्विशेस्तं नगेन्द्रम्	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		निर्विशेः पर्वतं तम्	व.
६३	१	दुकूलां	स्थि. द. चा. स. शा. म. पू. सु. भ. कृ. च.
		दुगूलां	व.
	३	र्विमानै.	स्थि. द. चा. स. शा. पू. सु. भ. कृ. च.
		र्विमाना	व. म.
६४	२	मुरजाः	स्थि. व. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		मुखाः	द. पू.
	२	गम्भीर	स्थि. व. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		पर्जन्य	द. पू.
६५	१	मलकं	स्थि. व. सा. सु. भ. कृ. च.
		मलके	द. चा. म.
		मलका	पू.
	१	बालकुन्दानुवेधो	द.
		बालकुन्दानुविद्धा	पू.
		बालकुन्दानुविद्धं	स्थि. व. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		बालकुन्दानुविद्धः	चा.
	२	लोध्र	द. चा. म. पू. भ. कृ.
		रोध्र	स्थि. व. सा. सु. च.
	२	माननश्रीः	स्थि. व. चा. पू. सु. च.
		मानने श्रीः	द. म. सा. भ. कृ.
६६	१	सितमणिमया.	स्थि. व. द. चा. म. सा. भ. कृ. च.
		शितमणिमया.	सु.
	२	रचना.	स्थि. व. चा. सु. भ. कृ. च.
		रचिता.	द. म. सा.
		खचिता.	पू.
	३	रतिफलं	स्थि. व. द. चा. म. पू. सु. कृ. च.
		रतिरसं	भ.
६७	१	भुजालिङ्गनोच्छ्वासिताना.	स्थि. व. सा. सु.
		भुजालिङ्गितोच्छ्वासिताना.	कृ. च.
		भुजोच्छ्वासिताङ्गिताना.	द. चा. म. पू. भ.
	३	दैश्चोतिताधन्द्रपादे.	व.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		दैःप्रेरिताश्चन्द्रपादैः	सा. च.
		दैश्चोदिताश्चन्द्रपादै.	भ. कृ.
		दैश्चन्दपादैर्निशीथे	स्थि. द. चा. म. पू. सु.
६८	२	स्वजलकणिकादोष.	सु. भ. च.
		नवजलकणैर्दोष.	व. पू.
		सलिलकणिकादोष.	स्थि. द. चा. म. सा.
	३	स्त्वादृशा	स्थि. व. द. चा. पू. सु. भ. च.
		स्त्वादृशो	म.
	३	यत्रजालै.	स्थि. व. चा. भ. च.
		यन्त्रजालै.	द. पू. सु.
		जालमार्गैः	म. सा.
	४	निपुणा	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		निपुणं	व.
६९	१	च्छ्वसित	स्थि द. चा. म. स. सु. भ. कृ. च.
		च्छ्वसन.	व. पू.
	१	बिम्बाधाराणां	द. म. पू. भ. कृ.
		यक्षाङ्गनानां	स्थि. व. चा. सा. सु. च.
	२.	वासः कामा.	व. चा. भ. कृ.
		क्षौमं रागा.	स्थि. द. म. पू. सा. च.
		क्षोमं रागा.	सु.
	३	मुखगतान्	भ.
		मुखमपि	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
	४	प्रेरणाचूर्ण.	द. चा. म. पू. सु. भ. कृ.
		प्रेरणश्चूर्ण.	व. स्थि. सा.
		प्रेरितश्चूर्ण.	सु. च.
७०	२	बलृप्तच्छेद्यैः	व. चा. भ.
		वलृप्तच्छेदैः	(भ.-वलृप्तच्छेदेरिति क्वचित् पाठः)
		पत्रच्छेदैः	म. कृ. च.
		पत्रच्छेद्यैः	स्थि. सा. सु.
	२	कमलैः	स्थि. व. चा. म. सा. सु. कृ. च.
		नलिनैः	भ.
	२	विभ्रंशिभि.	स्थि. व. म. भ. कृ.
		विस्त्रंसिभि.	चा. सा. च.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		विसंसिभि.	सु.
७१	३	सभ्रूभङ्ग.	स्थि. व. द. म. पू. सा. भ. कृ.
		सभ्रूभङ्गं	चा.
		सभ्रूभंगं	सु. च.
	३	लक्ष्ये.	स्थि. व. द. चा. म. सा. भ. कृ. च.
		लक्षे	पू.
		लक्ष्यै.	सु.
७२	१	गृहानुत्तरे.	व. द. चा. म. पू. भ.
		गृहादुत्तरे.	स्थि. सा. सु. कृ. च.
	२	सुरपति.	स्थि. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		तदमर.	व.
		त्वदमर.	द. पू.
	३	यस्योद्याने	स्थि. चा. पू. सु. भ. कृ. च.
		यस्योपान्ते	व. द. भ. सा.
७३	२	स्यूता	व.
		छन्ना	स्थि. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		स्फीताः	पू.
		स्फीता	द.
	२	कमलमुकुलैः	व. द. पू. भ.
		विकचकमलैः	स्थि. चा. म. सा. सु. कृ. च.
	२	स्निग्ध.	स्थि. व. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		दीर्घ	द. पू.
	२	वैदूर्य	द. चा. म. भ. कृ.
		वैडूर्य	स्थि. व. पू. सा. सु. च.
	४	न ध्यास्यन्ति	स्थि. व. पू. सा. भ. च.
		नाध्यास्यन्ति	द. चा. म. सु. कृ.
७४	१	यस्या	व. द.
		तस्या	स्थि. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
	१	रचित	स्थि. म. सा. भ. कृ. च.
		निचित	व.
		विहित	द. चा. पू.
	२	वेष्टन	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. भ. कृ. च.
		वेष्टित	सु.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
७५	२	प्रत्यासन्नौ	स्थि. व. द. चा. म. सा. सु. च.
		प्रत्यासन्नः	भ.
		प्रत्यासन्नौ	कृ.
	४	दोहल	द. पू.
		दोहद	स्थि. व. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
७६	२	बद्धा	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		नद्धा	व.
	३	शिञ्जद्वलय	व. पू. सा. भ.
		सिञ्जद्वलय	स्थि. च.
		शिञ्जावलय	द. चा. म. कृ.
		सिंजद्धलय	सु.
७७	१	र्लक्षणीयं	व.
		र्लक्षयेथा	स्थि. द. म. पू. सा. भ. च.
		र्लक्षयेथाः	चा. सु. कृ.
	३	मन्दच्छायं	भ.
		क्षामच्छायं	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
७८	१	शीघ्रसंपात.	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. च.
		तत्परित्राण.	भ.कृ.
७९	१	शिखर.	स्थि. व. चा. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		शिखरि.	द. म.
		अशिखर.	सा.
	१	धरौष्ठी	व. भ.
		धरोष्ठी	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
	२	हरिणी	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		हरिण.	व.
	२	प्रेक्षणा	स्थि. पू. म. सु. भ. कृ.
		प्रेक्षणी	व.
		प्रेक्षिणी	द.चा.
		प्रेक्षिता	च.
	४	राद्यैव	भ.
		राद्येव	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
८०	१	जानीयाः	स्थि. व. द. पू. सा. सु. भ. च.
		जानीथाः	चा. म. कृ.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
	३	गाढ़ोत्कण्ठागुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां	व.
		गाढ़ोत्कण्ठागुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला	द. पू.
		गाढ़ोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां	स्थि. चा . म. सा. सु. भ. कृ. च.
	४	जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्	स्थि. व. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		जातामन्ये शिशिरमथिता पद्मिनी वान्यरूपा	द. पू.
८१	१	बहूनां	व.
		प्रियाया	स्थि. द. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
	२	धरौष्ठम्	व. भ. कृ.
		धरोष्ठम्	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. च.
	३	हस्तन्यस्तं	स्थि. व. द. म. पू. सा. सु. भ. च.
		हस्तेन्यस्तं	चा. कृ.
	४	त्वदनुसरण	स्थि. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		त्वदुपसरण	व.
		त्वदुपगमन	द.
८२	२	विरहतनुता	भ.
		विरहतनु वा	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
	३	सारिकां	स्थि. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		शारिकां	व. द. पू.
	४	निभृते	व. भ.
		रसिके	स्थि. चा. म. सा. सु. कृ. च.
		गिरिके	द.
		सुभगे	पू.
८३	१	सोभ्य	व.
		सौभ्य	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
	३	तन्त्रीमार्द्रा	स्थि. द. चा. म. सा. सु. च.
		तन्त्रीरार्द्रा	व. पू. भ. कृ.
	४	स्वयमपि	स्थि. व. द. म. सा. सु. भ. कृ.
		स्वयमपि	चा. पू.
८४	१	गमन.	स्थि. व. चा. सा. सु. भ. च.
		विरह.	द. म. पू. कृ.
	१	स्थापितस्या.	स्थि. द. चा. म. पू. सा सु. भ. कृ. च.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		प्रस्तुतस्या.	व.
	२	दत्त.	व. म.
		मुक्त.	स्थि. द. चा. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
	३	संयोगं वा	स्थि. व. सा. सु. भ. कृ. च.
		संभोगं वा	चा. म.
		मत्संयोगं	द. पू.
	३	मासादयन्ती	भ. कृ. च.
		मास्वादयन्ती	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा.
	४	ह्यङ्गनानां	भ.
		ष्वङ्गनानां	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु.
८५	१	शिखादाम	स्थि. व. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		शिरोदाम	द. चा.
	२	या मयोद्वेष्टनीया	द. चा. भ. कृ.
		या मयोन्मोचनीया	व.
		तां मयोद्वेष्टनीयां	म. पू. सा. सु.
		सा मयोद्वेष्टनीया	स्थि. च.
	४	मेकवेणीं	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		देकवेणीं	व.
८६	१	पीडयेन्मद्वियोगः	स्थि. द. चा. सु. भ. कृ. च.
		पीडयेद्विप्रयोगः	म. पू. सा.
		खेदयेद्विप्रयोगः	व.
	३	मलं	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. च.
		मतः	व. कृ.
	४	शयनासन्न	स्थि. व. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		शयनां सद्ध.	द.
		शयनां सौध.	चा. भ.
८७	१	सन्निकीर्णैक	व. भ. कृ.
		संनिषण्णैक	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. च.
	३	क्षणमिव	स्थि. चा. सु. भ. कृ. च.
		क्षण इव	व. द. म. पू. सा.
	४	र्विरहजनितैरश्रु.	स्थि. चा. सा. म. कृ. च.
		र्विरहशयनेष्वश्रु.	व.
		र्विरहपतितैरश्रु	सु.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		विरहमहतीमश्रु.	द. म. पू.
८८	२	गण्डलम्बम्	व. द. म. पू. भ. कृ.
		गण्डलम्बि	स्थि. सा. सु. च.
	३	मत्संयोगः	स्थि. व. द. चा. पू. सा. सु. कृ. च.
		मत्संभोगः	म. भ.
	३	कथमपि भवेत्	चा. भ. कृ.
		कथमुपनमेत्	व. द. पू. म.
		सुखमुपनयेत्	स्थि. सा. सु. च.
८९	३	चक्षुःखेदात्	स्थि. व. द. चा. म. सा. भ. कृ.
		खेदाच्चक्षुः	पू. सु. च.
	३	सलिल.	द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		सजल.	स्थि. व.
	३	दयन्तीं	व. चा. द. म. सु. भ. कृ.
		दयन्ती	स्थि. सा. च.
		दयित्वा	पू.
९१	१	पेलवं	स्थि. व. द. चा. पू. भ. कृ.
		पेशलं	म. सा. सु. च.
९२	३	शङ्केमृगाक्ष्या	व. चा. पू. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		शङ्के मृगाक्ष्याः	स्थि.
		वामंमृगाक्ष्या	द.
	४	मीनक्षोभाकुलकुवलय	व. भ. कृ.
		मीनक्षोभाश्चलकुवलय	स्थि. चा. म. पू. सु. सा. च.
		मन्येमीनोच्चलकुवलय	द.
९२	१	वामश्चास्याः	द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		वामो वास्याः	स्थि. व.
	४	सरसकदली	स्थि. व. द. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		कनककदली	चा.
	४	स्तम्ब	भ.
		स्तम्भ	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
९४	१	दयिता लब्धनिद्रा यदि स्या.	व.
		यदि सा लब्धनिद्रा सुखास्या.	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
	२	तत्रासीनः	स्थि. चा. सु. भ. कृ. च.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		दन्वास्यैनां	व. द. पू. म.
	२	सहेथाः	भ. कृ.
		सहस्व	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. च.
९५	३	विद्युत्कम्पस्तिमितनयनां	भ. कृ.
		विद्युद्गर्भ स्तिमितनयनां	सु.
		विद्युद्गर्भे स्तिमितनयनां	चा.
		विद्युद्गर्भे निहितनयनां	व.
		विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां	स्थि. द. म. पू. सा. च.
	४	धीरध्वनित.	भ.
		धीरस्तनित.	व. पू. सु. च.
		धीरःस्तनित.	स्थि. म. सा. कृ.
		धीरैः स्तनित.	द. चा.
९६	२	शान्मनसि निहितादागतं	व. द. पू. भ.
		शान्मनसि निहितैरागतं	कृ.
		शैर्मनसि निहितैरागतं	चा. सु. च.
		शैर्हृदयनिहितैरागतं	म. सा.
		शाद्हृदयनिहितात्प्राप्तं	वा स्थि.
९७	१	पवनतनये	भ. कृ.
		पवनतनयं	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. च.
	२	सम्भाव्य	व. द. म. पू. सा. भ. कृ.
		संभाष्य	स्थि. च.
	२	चैव	स्थि. व. द. चा. म. पू. भ. कृ. च.
		चैवम्	सा.
	३	सोम्य	व.
		सौम्य	स्थि. द. चा.. म. पू. सा. भ. कृ. च.
	४	कान्तोदन्तः	स्थि. व. द. चा. म. सा. भ. कृ. च.
		कान्तोपान्तात्	पू.
	४	दुपगतः	म. भ.
		दुपनतः	व. द. कृ.
		दुपगमः	पू.
		दुपहृतः	स्थि. चा. सा. च.
९८	१	तामायुष्मान्	व.
		तामायुष्मन्	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
	१	मम च वचनादात्मनश्चोप.	द. चा. म. पू. भ. कृ.
		मम च वचनादात्मना चोप.	स्थि. व. सा. च.
		वचनरचनात्मनश्चोप. सु.	
	२	ब्रूया एवं	द. चा. म. पू. भ. कृ.
		ब्रूयादेवं	स्थि. व. सु. सा. च.
	३	त्वांवियुक्तां	पू. भ.
		त्वां वियुक्तः	स्थि. व. द. चा. म. सा. सु. कृ. च.
	४	भूतानां हि क्षयिषु करणेष्वाद्यमाश्वास्यमेतत् भ. कृ.	
		पूर्वाशास्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव	व. द. पू. सा.
		पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव	स्थि. चा. म. सु. च.
९९	१	सुतनु	भ. कृ.
		प्रतनु	चा. म. सा. सु. च.
		तनु च	स्थि. व. द. पू.
	२	णाश्रुद्रुत.	चा. म. भ. कृ.
		णास्त्रद्रुत.	द. पू.
		णास्त्रद्रव.	स्थि. व. सा.
		णाश्रुद्रव.	सु.च.
	३	दीर्घोच्छवासं	भ.
		उष्णोच्छ्वासं	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
	४	सङ्कल्पैस्ते वि.	व. पू. भ.
		सङ्कल्पस्तैर्वि.	स्थि. द. चा. म. सा. सु. कृ. च.
१००.	१	लोचनाभ्यामगम्यः	भ. कृ.
		लोचनानामगम्य	व.
		लोचनाभ्यामदृष्ट.	द. पू.
		लोचनाभ्यामदृश्य	चा. म. सु. सा. च.
		लोचनानामदृश्य	स्थि.
१०१	१	हरिणी	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		हरिण	व.
	१	प्रेक्षिते	व. स्थि. चा. सा. सु. भ. कृ. च.
		प्रेक्षणे	द. पू. म.
	१	पातं	व. द. चा. म. पू. भ. कृ.
		पातान्	स्थि. सा. सु. च.
	२	गण्डच्छायां	व. भ.

श्लोक सं	पाद सं.	पाठ	टीकाकार
		वक्रच्छायां	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
	४	कस्थं	स्थि. व. द. चा. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		कस्मिन्	भ.
	४	चण्डि	द. चा. म. पू. भ. कृ.
		भीरु	स्थि. व. सा. सु. च.
१०२	३	रालुप्यते	स्थि. द. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		रालिप्यते	व. पू.
	२	मया	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		सति	व.
	४	ष्वश्रु	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		ष्वस्त्रु	व.
१०४	४	पूर्वस्पृष्टं	व. पू.
		पूर्वस्पृष्टं	स्थि. द. च. म. सा. सु. भ. कृ. च.
१०५	१	संक्षिप्येरन्	व.
		संक्षिप्येत	द. चा. म. पू. भ. कृ. च.
		संक्षिप्यन्ते	स्थि. सा. सु.
	१	क्षण इव	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. भ. कृ.
		क्षणमिव	सु. च.
	१	यामा त्रि.	द. म. पू. भ. कृ. च.
		यामास्त्रि.	स्थि. व. सा. सु.
	४	गाढ़ोष्माभिः	स्थि. व. द. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		गाढ़ोष्णाभिः	पू.
१०६	१	नन्वात्मानं	स्थि. व. चा. म. भ. कृ.
		इत्यात्मानं	सु. सा. च.
		नत्वात्मानं	द. पू.
	१	नैवावलम्बे	स्थि. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		ना नावलम्बे	व. द. पू.
	२	सुतरां	स्थि. व. चा. पू. सु. भ. कृ. च.
		नितरां	द. म. सा.
	३	कस्यात्यन्तं	व. स्थि. द. चा. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		कस्यैकान्तं	म.
१०७	२	मासानेतान्	चा. भ. कृ.
		मासानन्यान्	व. द. पू.
		शेषान् मासान्	स्थि. म. सा. सु. च.
	३	गुणितं	स्थि.व. पू. सा. सु. भ.
		गणितं	द. चा. म. च.
		जनितं	कृ.
१०८	१	भूयश्चाह	स्थि. व. द. चा. म. भू. सा. सु.
		भूयश्चापि	भ. कृ.

श्लोक सं	पाद सं	पाठ	टीकाकार
		भूयश्चाहं	च.
	१	त्वमसि	द. पू. भ. कृ.
		त्वमपि	स्थि. व. चा. म. सा. सु. च.
	२	सत्वरं	चा. सा. सु. भ. कृ. च.
		सस्वनं	व.
		सस्वरं.	स्थि. द. म. पू.
	३	पृच्छतश्च	स्थि. व. द. चा. म. सा. सु. भ. कृ. च.
		पृच्छते च	पू.
१०९	३	विरहे	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. च.
		विरह.	व. भ. कृ.
	३	व्यापदस्ते	भ. कृ.
		ह्रासिनस्ते	स्थि. व. द. पू.
		ध्वंसिनस्ते	चा. म. सा. सु. च.
	३	ह्यभोग्या	भ. कृ.
		त्वभोगा.	म. सा. च.
		ह्यभोगा.	स्थि. व. द. चा. पू. सु.
	४	दृष्टे	भ.
		दिष्टे	व. स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.
११०	१	सौम्य	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु. भ. कृ. च.
		सोम्य	व.
	२	प्रत्यादेशान्न	द. म. पू. भ. कृ.
		प्रत्याख्यातुं न	स्थि. व. च. सा. सु. च.
	२	धीरतां	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. भ. कृ. च.
		ऽधीरतां	सु.
	२	तर्कयामि	व. भ. कृ. च.
		कल्पयामि	स्थि. द. चा. म. पू. सा. सु.
१११	१	प्रियसमुचितं	भ. कृ.
		प्रियमनुचितं	म.
		प्रियमनुचित	स्थि. व. द. सा. पू. सा. सु. च.
	१	प्रार्थनावर्त्मनो	स्थि. व. द. चा. पू. सा. सु. च.
		प्रार्थनादात्मनो	म.
		प्रार्थनाचेतसो	भ.
		प्रार्थनं चेतसो	कृ.
	३	जलद विचर	म. पू. सा. भ. कृ.
		विचर जलद	स्थि. व. द. सु. च.
	४	भूदेव	भ.
		भूदेवं	स्थि. व. द. चा. म. पू. सा. सु. कृ. च.

ग्रन्थानुक्रमणिका

आधार-ग्रन्थ

मेघदूतम् – कालिदास

– स्थिरदेव कृत बालप्रबोधिनी टीका, सम्पा.-वी.जी.परांजपे (अंग्रेजी में), पूना,

– बल्लभदेव कृत पञ्जिका टीका, सम्पा. ई. हुल्श (अंग्रेजी में) रायल एशियाटिक सोसाइटी, १९११

– दक्षिणावर्त्तनाथ कृत प्रदीप टीका, सम्पा.-त. गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज, १९१९

– चारित्रवर्धन कृत चारित्रवर्द्धिनी टीका सम्पा.-पं.श्री ब्रह्मशंकर शास्त्री, वाराणसी, १९६८

– शाश्वत कृत कवि प्रिया टीका (पूर्वार्द्ध) सम्पा.-रोमा चौधरी एवं जतीन्द्र बिमल चौधरी

– Journal of the Prachyavani Vol. X part II, Calcutta, 1953

– मल्लिनाथ कृत संजीवनी टीका सम्पा.-गोपाल रघुनाथ नन्दर्गीकर (अंग्रेजी में), दिल्ली, १९७९

– पूर्णसरस्वती कृत विद्युल्लताटीका, सम्पा.-आर.वी. कृष्णमाचारियर (अंग्रेजी में), वाणी विलास प्रेस, श्रीरगंम् १९२६

– सारोद्धारिणी टीका (उत्तरार्द्ध) सम्पा.-क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय, संस्कृत साहित्य परिषद्, प्रति १५-१६, १९३२- ३४ खि.

– सनातनशर्मा कृत तात्पर्य्यदीपिका टीका (पूर्वार्द्ध) सम्पा.-रोमा चौधरी एवं जतीन्द्र बिमल चौधरी

– Journal of the Pracyavani, Vol. X, part II. Calcutta, 1953.

– सुमतिविजय कृत सुगमान्वया टीका, सम्पा. वाल्टर हार्डिंग मोरेर (अंग्रेजी में), डेक्कन कालेज, पूना, १९६५

– भरतमल्लिक कृत सुबोधा टीका सम्पा.-जतीन्द्र बिमल चौधरी (अंग्रेजी में) कलकत्ता, १९५१

– कृष्णपति कृत मेघदूत टीका सम्पा.-गोपिका मोहन भट्टाचार्य (अंग्रेजी में) कुरुक्षेत्र युनिवर्सिटी, कुरुक्षेत्र, १९७४
– श्री चरणतीर्थ महाराज कृत कात्यायनी टीका वाराणसी, १९७६

सहायक-ग्रन्थ

अभिज्ञानशाकुन्तलम् – कालिदास, सम्पा. डॉ.कृष्ण त्रिपाठी, कानपुर, १९७४
अष्टाध्यायी (भाग-१-२) – पाणिनी सम्पा. शिरीषचन्द्र वसु, देहली, द्वितीय संस्करण, सं. १९६२
अष्टाध्यायी – पाणिनी, सम्पा. श्री. युधिष्ठिर, जवाहर नगर, दिल्ली
आदिपुराण में प्रतिपादित भारत – नेमिचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, १९६८
उत्तरमेघ – सम्पा. लाल रमायदुपाल सिंह, इलाहाबाद, १९६५
ऋक् संहिता – सम्पा. रामगोविन्द द्विवेदी, सुस्तानगंज भागलपुर, प्रथम सं. २००० वि.
ऐतरेय ब्राह्मण – काशीनाथ विनायक आप्टे, आनन्दाश्रम, पूना
कथासरित्सागर – बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना,
कालिदास – चन्द्रबली पाण्डेय, वाराणसी, २०११ वि.
कालिदास – डॉ. वासुदेव विष्णु. मिराशी, बम्बई, तृ. सं. १९६७
कालिदास और उनका युग – भगवतशरण उपाध्याय, काशी प्र.स.
कालिदास और उनकी काव्यकला – वागीश्वर विद्यालंकार, दिल्ली, प्र.सं. १९६३
कालिदास का भारत – भगवतशरण उपाध्याय, काशी, १९५५
कालिदास काव्ये शव्दपरिपाकः – डॉ. नित्यानन्द शर्मा, दिल्ली, १९७७
कालिदास की कला और संस्कृति – डॉ. देवीदत्त शर्मा, मेरठ, १९७०
कालिदास की कृतियों में भोगोलिक स्थलों का प्रत्याभिज्ञान – कैलाशनाथ द्विवेदी, कानपुर, प्र.सं. १९६९
कालिदास की लालित्य योजना – हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिल्ली, १९७०
कालिदास के पक्षी – श्री हरिदत्त वेदालंकार, हरिद्वार, १९६४

कालिदास ग्रन्थावली – अनु. एवं सम्पा. श्री राम त्रिपाठी शास्त्री, इलाहाबाद
कालिदास ग्रन्थावली – सम्पा. पं. सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ़ सं. २०१९ वि.
कालिदास दर्शन – शिवप्रसाद भारद्वाज, दिल्ली, १९७५
कालिदास नमामि – भगवतशरण उपाध्याय, दिल्ली, १९६६
काव्यादर्श – दण्डी, व्या० धर्मेन्द्र कुमार गुप्त, दिल्ली, प्र.सं. १९७३
काव्यादर्श – दण्डी, सम्पा. पं. बटुकनाथ शर्मा तथा पं. बलदेव उपाध्याय, वाराणसी,
काव्यप्रकाश – मम्पट, सम्पा. डॉ. नगेन्द्र, वाराणसी, १९६०
काव्यमाला – सम्पा. पं. दुर्गाप्रसाद एवं काशीनाथ पाण्डुरंग परब, बम्बई
कूर्मपुराण – वैंक्टेश्वर प्रेस, बम्बई, प्र.सं.
चाणक्यविजयम् – ले. श्री विश्वेश्वर विद्याभूषण काव्यतीर्थ, प्रकाशक श्री ध्यानेश नारायण चक्रवर्ती, रविन्द्र भारती यूनिवर्सिटी, कलकत्ता, १९६७ (रूपक मंजरी ग्रन्थमाला १)
ध्वन्यालोक – आनन्दपर्वत, व्या. आचार्य जगन्नाथ पाठक, वाराणसी, सं. १९६५
पद्मपुराण – सम्पा. महादेव चिमणाजी आप्टे, पूना, १८९३
बृहत्संहिता – बनारस, प्र.सं.
मत्स्यपुराण – हरिनारायण आप्टे, पूना, सं. १९०७ ई.
मनुस्मृति – बनारस, प्र.सं.
महाकवि कालिदास – रमाशंकर तिवारी, वाराणसी, १९७१
महाभारत – गीता प्रैस, गोरखपुर, द्वि.सं.
मार्कण्डेय पुराण – सम्पा. पंचानन तर्करत्न, कलकत्ता, सं. १८१२ वि.
मार्कण्डेय पुराण – सांस्कृतिक अध्ययन–डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, १९६१
मालतीमाधवम् – भवभूति, व्या. श्री शेषराज शर्मा शास्त्री, काव्यतीर्थ, चौ.सं.सी. बनारस, १९५४
मृच्छकटिकम् – शूद्रक, जयकृष्णदास हरिदास, बनारस, १९५४
मृच्छकटिकम् – शूद्रक, टीकाकार डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, दिल्ली
मेघदूतम् – सम्पा. अमरनाथ शुल्क, साहित्य संस्थान, इलाहाबाद, १९७९
मेघदूत – अंग्रेजी अनु. डॉ. रांगेय राघव, हिन्दी अनु. रामावतार त्यागी, दिल्ली, १९७६
मेघदूत – सम्पा. डॉ. रामकृष्ण आचार्य, आगरा, तृ.सं. १९७७

मेघदूतम् - डॉ. रामेश्वर प्रसाद मिश्र, सतना, म.प्र.
मेघदूतम् - सम्पा. श्री शेषराज शर्मा रेग्मी, वाराणसी, द्वि.सं. १९७१ ई.
मेघदूत - अनु. सत्यकाम विद्यालंकार, दिल्ली, १९६०
मेघदूतम् - सम्पा. संसारचन्द्र मोहनदेव पन्त, बनारस, १९५१
मेघदूतम् - (पूर्वमेघ) सम्पा. साधुराम दिल्ली, प्र.सं. १९५२
मेघदूत-एक अध्ययन - डा. वासुदेव शरण अग्रवाल, दिल्ली, द्वि.सं. १९७१
मेघदूत-एक अनुचिन्तन - श्री रंजनसूरिदेव, पटना, १९६०
मेघदूत-एक पुरानी कहानी - डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, बम्बई, १९५७
मेघदूत महिमा - प्रो बी.पी. भास्कर शास्त्री, नई दिल्ली
मेघदूत विमर्श - रामदहिन मिश्र
रघुवंशम् - कालिदास, सम्पा. पं. श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौ. सं. पुस्तकालय, बनारस, १९५३
रामचरितमानस - तुलसीदास, आठवां सं., वि . सं. २०१२
राष्ट्रकवि कालिदास - सीताराम सहगल, दिल्ली, सं. १९६१
वायुपुराण - हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम, पूना, १९०५
वाल्मीकि रामायण - नाग प्रकाशक दिल्ली
विष्णुपुराण - नाग प्रकाशक दिल्ली
वृतरत्नाकर - जालन्धर, २०१३ वि.
व्यक्तिविवेक - महिमभट्ट, रेवा प्रसाद द्विवेदी, १२१, प्र.सं. १९६४
शतपथ ब्राह्मण - वंशीधर अवस्थी, अच्युत ग्रन्थमाला, काशी, सं. १९९७ वि.
श्रीमद्भागवत - गीताप्रेस गोरखपुर, तृ.सं.
संस्कृत कवि दर्शन - भोलाशकंर व्यास, वाराणसी, वि.सं. २०१२
संस्कृत के सन्देश काव्य मेघदूत और उसकी परम्परा का एक अध्ययन - डॉ. रामकुमार, अजमेर कालेज, संस्कृत विभाग, १९६३
संस्कृत-शोधप्रक्रिया एवं वैदिक अध्ययन - डॉ. कृष्णलाल, प्रका. विभुवैभवम् सरस्वती विहार, दिल्ली. प्र.सं. १९७८
सरस्वती कण्ठाभरण - भोजराज, कलकत्ता, द्वि. सं. १८९४ ई.
साहित्यदर्पण - विश्वनाथ (श्री शालग्राम शास्त्री कृत विमला व्याख्या सहित) दिल्ली, षष्ठ सं. १९७०
सुवृत तिलकम् - क्षेमेन्द्र उस्मानिया विश्वविद्यालय,

संस्कृत परिषद् हैदराबाद, १९६१

स्कन्दपुराण - बम्बई प्र.सं

हिन्दी मेघदूत-विमर्श - कन्हैय्यालाल पोद्दार, इलाहाबाद, १९५८

Birth Place of Kalidas - Laxmidhar Kalla, Delhi University, Publications, No. 1, 1956.

Fresh Light on Kalidas's Meghduta - Vaman Krishna Paranjpe, Kalidas Sanshodhan Mandal, Poona, 1960

Geographical Aspect of Kalidasa's Works - B.C. Law, The Indian Research Institute, Calcutta, 1954.

History of Sanskrit Poetics - S.K. De, Calcutta, 1960.

History of Sanskrit Poetics - P.V. Kane, Bombay, 1951.

India in Kalidas - B.S. Upadhyaya, Allahabad, 1954.

Kalidas - R.D. Karmarkar, Karnatak University, Dharwar, 1971

Kalidas-A Study - G.C. Jhala, Bombay, 1949.

Kalidasa's Meghdutam - ed. Saradarajan Roy, Kumudrenjan Ray, Calcutta, 4 th Ed., 1958.

Kalidasa's Meghaduṭa or the Cloud Messenger - Ed. K.B. Pathak, Poona, 2nd ed. 1916.

Meghduta - ed. Lal Mohan Vidyanidhi, Hugli, 1894.

Meghtuda - ed. Vasant Ramchandra Nerurkar, Bombay, 2nd ed., 1935.

Meghduta of Kalidas - ed. R.D. Karmarkar, Poona, 1938.

Meghduta Studies - Dr. S.P. Narang, Nag Publishers, Delhi, 1979.

Raghuvansa - G.R. Nandargikar, 3ed ed.

The Meghduta of Kalidas - ed. M.R. Kale, Delhi, Reprint, 1979.

The Meghadut of Kalidas - ed. S.K. De, Sahitya Akademi, New Delhi, 2nd ed., 1970.

The Meghduta or Cloud Messenger - ed. H.H. Wilson, Varanasi, 4th ed., 1979.

The Meghduta or Cloud Messenger - Ed. Krishna Shastri Bhatawadekara, Bombay, 1986.

पत्रिकाएं

परिषद् पत्रिका - अंक ३, अक्टू. १९६४, वाल्यूम ५२ शक् १८८३

भारती पत्रिका - वालायूम ४, १९६०-६१

भारतीय विद्या - वाल्यूम ३, मई १९४२

विक्रम स्मृति ग्रन्थ - संवत् २००१

विशाल भारत - वाल्यूम २५,१०४०

वीणा - वाल्यूम १०, दिसम्बर १९३६

सागरिका - सम्वत् २०२२-२४

Adyar Library Bulletin - Feb. 1945

Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute Vol. XIII, XIV.

Calcutta Oriental Journal - I, III.

Indian Antquary - Vol. XXXVII.

Indian Historical Quartely - 25, 1949.

Jain Granthavali - 1909.

Journal of Indian History - Vol.41, 1963, Vol. 42, 1964.

Journal of the M.S. Univ. of Baroda, Vol. VIII, March,1959

Modern Review - Oct. 1915.

Nagpur University Journal, Vol. IX.

Our Heritage - Vol. III, Part I, 1955, Vol. 6, 1958.

Poona Orientalist, Vol. 1, 9.

Proceedings, Asiatic Society of Bengal, 1901-02.

Proceedings & Transactions, All India Oriental Conference, 1943, 1972.
Sahyadri, (Marathi Journal), vol. X, No.4.
Summary of Papers, All India Oriental Conference, 1943, 1961, 1972.
The Vikram - From IV to XI.

कोष एवं निबन्ध-ग्रन्थ

अनेकार्थ संग्रह – हेमचन्द्र, वाराणसी, १९६९
अमरकोश – अमरसिंह (रामाश्रमी व्याख्या सहित), वाराणसी, १९७०
कालिदास कोषः – डॉ. हीरालाल शुल्क, इलाहाबाद, २११००१
वाचस्पत्यम् कोषः – श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य, वाराणसी, १९६२
संस्कृत-शव्दार्थ-कौस्तुभ- द्वारकाप्रसाद शर्मा एवं तारणीश झा, इलाहाबाद, १९६७
संस्कृत हिन्दी कोष – वामन शिवराम आप्टे नाग प्रकाशक, दिल्ली
A.N. Jha Felicitation Volume-III, 1969
C. Kunhan Raja Presentation Volume, 1946
Catalogus Catalogorum-T. Aufrecht, Vol. I, II III, Franz Steiner Verlag Gambaden, 1962.
Kalidasa Bibliography- S.P. Narang, New Delhi, 1976.
Kalidasa Kosa - Suresh Chandra Banerjee, Varanasi, 1968.
Kuppuswami Sastri Commemoration Volume - Presidency College, Madras.
P.K. Gode - Commemoration Volume, Poona, 1969.
RASB - Catalogue of Sanskrit MSS. VI, 1931
Sanskrit - English Dictionaty - M. Monier Williansm Oxford Universty Press, 1956.
Sanskrit - English Dictuonary - V.S. Apte, 1965.
S.K. Belvalkar - Falicitation Volume -ed. Dr.S. Radhakrishnan, 1957.
The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India - Nandlal Dey, New Delhi, 1971.